ISSN 2454-7131
Online

अनुसृजन

(अनुवाद अध्ययन विभाग की त्रैमासिक द्विभाषी ई-पत्रिका)

जनवरी-जून, 2017 (संयुक्तांक)
अंक - 5

अनुवाद अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

ज्ञान शान्ति मैत्री

अनुसृजन

अनुवाद अध्ययन विभाग की त्रैमासिक द्विभाषी ई पत्रिका

अंक -5, जनवरी-जून, 2017 (संयुक्तांक)

संरक्षक

प्रो. गिरीश्वर मिश्र, कुलपति

मार्गदर्शक

प्रो. देवराज

परामर्शदाता

डॉ. सी. अन्नपूर्णा

संपादक

डॉ. राम प्रकाश यादव

प्रकाशन सहयोग

विजय करन

मुखपृष्ठ

राजेश आगरकर

टंकण सहयोग

अपर्णा माने, पन्नालाल धुर्वे

प्रकाशक: अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

(प्रकाशित सामग्री से संपादक/ प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं।)

न्याय क्षेत्र: वर्धा

E-Mail: rampy79@gmail.com, aanusrujan@gmail.com

संपादकीय

‘अनुसृजन’ का पांचवां अंक पाठकों को समर्पित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। अनुसृजन की इस यात्रा में अनुवाद और साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने सहभागिता की है और इस यात्रा को रोचक, आनंददायक और ज्ञानवर्धक बनाया है। ममता कालिया, डॉ. उषा सिन्हा, प्रो० बी० वै० ललिताम्बा, प्रो० कृष्ण कुमार गोस्वामी, डॉ. राम गोपाल सिंह, प्रो० एम० वेंकटेश्वर, डॉ. टी० जी० प्रभाशंकर प्रेमी, प्रो० शैलेन्द्र कुमार शर्मा, प्रो० लक्ष्मी राज शर्मा, डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. शांति नायर, डॉ. जगदीश शर्मा, डॉ. हरीश कुमार सेठी, डॉ. पी.के जयलक्ष्मी, डॉ. राम प्रकाश यादव के साथ-साथ त्रिनिदाद और टोबैगो से भारतीय मूल की सुमति करीम ने इस अंक को समृद्ध बनाया है।

यह समय सूचना व संचार तंत्र को माध्यम बना भ्रम व संदेह पैदा कर सामाजिक समरसता को बिगाड़ने व अनुचित लाभ लेने का समय है। यह विरोधाभास ही है कि वैश्वीकरण के इस युग में भी सभ्यताओं और संस्कृतियों के बीच की यह खाई और गहरी होती जा रही है। आभासी दुनिया का मानव समाज पर यह नियंत्रण अभूतपूर्व है। व्यक्ति की निजता और स्वतंत्रता संकट में है। तकनीकी और संचार प्रौद्योगिकी के विकास के साथ प्रत्येक व्यक्ति और उसकी गतिविधियों पर पूंजीवादी शक्तियों की दृष्टि है। वे एक ही साथ समूह की और व्यक्ति की प्रतिक्रिया निर्धारित करने के उपकरणों से लैस हैं, जहाँ व्यक्ति जाने-अनजाने उनकी इच्छा पूर्ति का माध्यम बनता जा रहा है। इससे उत्पन्न संकटों से निवारण के मार्ग की खोज करनी होगी। रचनाकारों और अनुवादकों को सजगता और सतर्कतापूर्वक अपनी भूमिका का निर्वाह करना होगा।

मैं डॉ. सी. अन्नपूर्णा, पूर्व विभागाध्यक्ष, अनुवाद अध्ययन विभाग का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ कि ‘अनुसृजन’ को पुनर्प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण दायित्व उन्होंने मुझे प्रदान किया। अभी उनका चयन हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर हुआ है, इस हेतु भी उन्हें हार्दिक बधाई।

मैं इस पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी सदस्यों का आभार व्यक्त करता हूँ। पाठकों के सुझावों एवं प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. राम प्रकाश यादव

अनुक्रमणिका

भाषाओं की सांस्कृतिक विशिष्टता और अनुवाद	प्रो० उषा सिन्हा	05
रूपांतरण और अनुवाद	प्रो० कृष्ण कुमार गोस्वामी	11
राष्ट्रीय एकता और अनुवाद	डॉ० पूरनचंद टंडन	29
अनुवाद में पत्रिका प्रबन्धन की भूमिका	डॉ० राम गोपाल सिंह	43
अर्थ ग्रहण की विभिन्न अवधारणाएं और उनकी मीमांसा	डॉ० जगदीश शर्मा	47
वेब मीडिया के विस्तार में विश्वभाषा हिंदी की भूमिका	प्रो० शैलेन्द्रकुमार शर्मा	53
अनुवाद में लिप्यंतरण का ध्वनि पक्ष	प्रो० बी० वै० ललिताम्बा	69
भारतीय संस्कृति के उत्थान में कर्नाटक का योगदान	डॉ० टी जी प्रभाशंकर ‘प्रेमी’	76
हिंदी के विकास में कोशों की भूमिका और महत्व	डॉ० हरीश कुमार सेठी	82
वासिरेड्डी सीतादेवी की कहानियों में नारी	डा० पी०के० जयलक्ष्मी	92
भारत में उत्तर-दक्षिण संपर्क का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और हिंदी- मलयालम साहित्यिक अनुवाद परम्परा	डॉ० राम प्रकाश यादव	94
अपराजेय कथाशिल्पी शरतचंद्र और देवदास	डॉ० एम० वेंकटेश्वर	100
ईश्वर की पुकार (कहानीकार: सितारा)	अनुवादक : शान्ति नायर	121
The seminar	Mamta Kalia	125
Life is not all success	Prof. Laxmi Raj Sharma	134
FROM A FARAWAY LAND-INDIA	Sumatee Karim	135
लोकसंस्कृति के सन्दर्भ में प्रो.पूरनचंद टण्डन का साक्षात्कार	गरिमा त्रिपाठी	137
केंद्रीय हिंदी समिति के नए सदस्य	डॉ. राम प्रकाश यादव	146

भाषाओं की सांस्कृतिक विशिष्टता और अनुवाद

प्रो० उषा सिन्हा

अनुवाद दो भिन्न भाषाओं के मध्य होने वाली ऐसी भाषिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत स्रोत भाषा के कथ्य अथवा मूल पाठ को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। स्रोत भाषा-पाठ या मूल-पाठ के जिस अर्थ का अनूदित पाठ में अतंरण या प्रतिस्थापन किया जाता है, वह अर्थ ही अनुवाद का संदेश कहलाता है। अनुवाद मूल भाषा पाठ के जिस अर्थ को लक्ष्य भाषा में अंतरित करता है उसका क्षेत्र व्यापक होता है। यह अर्थ केवल संरचना के अर्थ तक सीमित नहीं होता अपितु इसके क्षेत्र में संरचनार्थ संदर्भार्थ तथा सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों से संबंधित सभी क्षेत्र अर्थ आ जाते है। दूसरे शब्दों में अनुवाद के माध्यम से भाषिक अंतरण केवल एक भाषिक संरचना से दूसरी भाषिक संरचना का न होकर भाषा से संबद्ध संस्कृति का भी होता है। क्योंकि भाषा, समाज और संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। प्रत्येक भाषा संस्कृति की वाहक होती है। किसी समाज की संस्कृति वहां की भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होती है। संस्कृति का संबंध एक ओर मनुष्य के लौकिक अभ्युदय से है तो दूसरी ओर मनुष्य के चिंतन-मनन, तत्व चर्चा, धर्म, नीति और दर्शन जैसे आत्मतत्वों की पहचान भी संस्कृति की परिधि में ही आती है। संस्कृति के अंतर्गत उस समाज की समग्र धारणाएं, आकाक्षाएं, राजनैतिक-व्यवस्था, धार्मिक-विधान, दार्शनिक-चिंतन, कलात्मक-सृजन, यांत्रिक-व्यवस्था, विधिगत-नियम और भाषा संस्कृति के अविभाज्य घटक हैं। भाषा में सांस्कृतिक विशिष्टता सामाजिक मान्यताओं और भावों की अनुभूति पर आधारित होती है। भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कारणों से भी भाषा में विशिष्टता आती है। प्रत्येक भाषा सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकता के अनुसार अपने में पूर्ण होती है। भाषा के द्वारा केवल स्थूल अर्थ ही संप्रेषित नहीं होते अपितु संपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश का संप्रेषण होता है। भारतीय संस्कृति से अपरिचित व्यक्ति के लिए 'चंदा मामा दूर के', ' जादू का उड़न खटोला' का मर्म समझना, होलिका दहन, धुलेंडी, अबीर-गुलाल, गुझिया, रंग-मलना के अर्थ को समझना सहज नहीं है। इसी तरह दूर्वा, अक्षत, नैवेद्य, मंडप, तिलक, आरती को भलीभांति समझना भी सहज नहीं है। मंगलसूत्र टूटना, दिया बुझना, सिंदूर मिटना, गंगाधाम जाना विशिष्ट सांस्कृतिक अर्थ बोधक शब्द हैं। इसी संदर्भ में भाषाविज्ञान में एक नवीन अध्ययन शाखा 'सांस्कृतिक भाषाविज्ञान' (Cultural Linguistics) उद्भूत हुई है।

इस प्रकार भाषा अपने बोलने वालों की जीवन-पद्धति, आचार-विचार और व्यवहार को संप्रेषित करने का माध्यम होती है, दोनो एक दूसरे से अभिन्न हैं। यही कारण है कि जब कोई कथ्य या Text स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अंतरित/अनूदित होता है तो उसका भाषांतरण के साथ-साथ सांस्कृतिक अंतरण भी होता है। वह अपनी भाषा-संस्कृति से निकलकर एक नई भाषा संस्कृति में प्रविष्ट होती है। यथा- शेक्सपियर के नाटक को यदि

हिंदी में अनूदित किया जाता है तो वह यूरोप की संस्कृति से भारतीय संस्कृति में अंतरित हो जाता है। उसके पात्रों के कथन और कार्य हिंदी भाषा की संवेदना के माध्यम से प्रकट होते हैं और हिंदी भाषी को संप्रेषित होता है। इसी प्रकार अंग्रेजी भाषियों की संस्कृति अनुवाद के माध्यम से भारत में हिंदी भाषियों के मध्य अवतरित होती है। इसी प्रकार अनुवाद भाषा का नहीं संस्कृतियों का भी होता है। अनुवाद, सांस्कृतिक आदान प्रदान का माध्यम बनता है, सांस्कृतिक सेतु का काम करता है। इसलिए कहा गया है कि अनुवाद मूलतः सांस्कृतिक कर्म भी है। प्राचीन समय से यह आदान प्रदान होता रहा है। भारतीय साहित्य, दर्शन व गाणित आदि का अनुवाद चीनी, जापानी, सिंहली, जर्मन, फ्रांसीसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में होता रहा है। फलतः पूर्वी बौद्धिक संपदा और पश्चिमी ज्ञान का आदान-प्रदान हुआ। अनुवाद के द्वारा सांस्कृतिक आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया आज भी गतिशील है। व्यक्तिगत स्तर पर अनेक अनुवाद हो रहे हैं। साथ ही यूनेस्कों और राष्ट्रीय अनुवाद मिशन की भूमिका भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

अनुवाद सांस्कृतिक आदान-प्रदान का मध्यम है लेकिन अनुवादक के समक्ष कई प्रकार की चुनौतियां भी उपस्थित होती है। क्योंकि प्रत्येक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं के कारण अनूदित रचनाओं के साथ नई अवधारणाओं, नई विधाओं, अभिव्यक्ति की नवीन भंगिमाओं एवं मौलिक प्रयोगों का एक पूरा संसार स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में आ जाता है। ऐसे अनुवाद एक संस्कृति पर दूसरी संस्कृति के रचनात्मक प्रभाव के वाहक होते हैं। इसीलिए लक्ष्य भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ज्ञान अनुवादक के लिए आवश्यक है। यथा भारतीय संस्कृति में नवसंवत्सर, उगादी, गुड़ी पड़वा, पोहिला बैसाख, विशुकानी, नवरेह आदि को विदेशी नहीं समझ सकते क्योकि वे केवल Happy New Year ही जानते है। इसी प्रकार अमेरिका में 'हैलोवीन' और 'थैंक्स गिविंग' बडे उल्लास से मनाए जाने वाले पर्व हैं किंतु इनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ को समझने पर इनके वास्तविक महत्व को ग्रहण किया जा सकता है।

अस्तु अनुवाद करते समय विभिन्न संदर्भो में विभिन्न पद्धतियों का आश्रय लेना आवश्यक होता है। कभी शब्द उधार लेकर लिप्यंतरित (Transliteration) करके, शब्दानुवाद (word to word Translation) करके, व्याख्या (Interpretation/Explanation) करके, शब्द विशेष के लिए स्थानापन्न करके (Substitute) और कभी समानार्थी (Equivalent) द्वारा संपन्न किया जाता है। साथ ही कभी कुछ छोड़ा और कभी कुछ जोड़ा भी जा सकता है।

स्रोत भाषा की ऐसी शब्दावाली जिसके लिए लक्ष्य भाषा में शब्द न होने की स्थिति में लिप्यंतरण की आवश्यकता पड़ती है। यथा- भारतीय चिंतन में परमसत्ता के लिए प्रयुक्त ब्रह्म, ईश्वर, अविनाशी, अंतर्यामी, निराकार में निहित सूक्ष्म अंतर अंग्रेजी में स्पष्ट करने के लिए समानार्थी शब्द नहीं मिलेगें। अंग्रेजी में प्रयुक्त 'God' से स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'निर्वाण' और 'मोक्ष' के समानार्थी नहीं मिल सकते। भारतीय संस्कृति

में अनेक पर्वों, त्योहारों, रीति-रिवाजों एवं अनुष्ठानों की द्योतक सांस्कृतिक शब्दावली हिंदी में भी प्रचुर मात्रा में व्यवहृत होती है। ऐसी सांस्कृतिक शब्दावली की समानार्थी शब्दावाली अंग्रेजी में सहज उपलब्ध नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में लिप्यंतरण ही उपयुक्त होता है।

अनुवाद में बहुधा ऐसी स्थिति भी उपस्थित होती है जब किसी संस्कृति विशेष का कोई विशिष्ट तत्व दूसरी संस्कृति में नहीं होता अथवा आंशिक रुप से परस्परव्यापी हों वहां अनुवादक को प्रतिस्थापन का अश्रय लेना पड़ता है। बहुधा अनुवाद करते समय शाब्दिक या कोशधर्मी अनुवाद भी होता है। लेकिन कभी कभी अनुवाद की भाषा उन्हें आत्मसात नहीं कर पाती। यथा हिंदी भाषा में मिलते समय अभिवादन हेतु 'नमस्कार', 'प्रणाम' और विदा लेते समय 'राम-राम कहने' की परंपरा है। अंग्रेजी संस्कृति में Good morning, good afternoon, good evening, good night हैं साथ ही 'बाय-बाय, टा-टा' प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि हिंदी में सुप्रभात, शुभरात्रि- शाब्दिक अनुवाद (word to word Translation) किए गए हैं लेकिन भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा की सांस्कृतिक विशिष्टता के अनुरुप नहीं हैं। इसी प्रकार 'पब' और 'क्लब' का अनुवाद न करके उन्हें यथावत प्रस्तुत करना उपयुक्त है क्योंकि इनसे जो बिम्ब बनता है या स्थान का अर्थबोध होता है उसका सांस्कृतिक संदर्भ भी यूरोपीय संस्कृति है।

बहुधा अनुवादक व्याख्या (explanation या Interpretation) की सहायता से कथ्य को समग्रता में पाठक तक संप्रषित करता है। यथा हिंदी में प्रयुक्त हवन, आचमन स्पष्ट करना उपयुक्त होता है। व्याख्या पाद टिप्पणी रुप में दी जा सकती है। इसी प्रकार सौभाग्यवती, सौभाग्यसूचक चिह्न बिंदी, पायल, बिछुए आदि का अनुवाद नहीं हो सकता। यद्यपि 'सौभाग्यवती' के लिए Fortunate woman, lucky woman कहा जा सकता है किंतु भिन्न अनुभूति होती है। इसी प्रकार 'आयुष्मान' और 'चिंरजीव' के लिए भी व्याख्या वांछनीय है।

अनुवाद में अर्थ और भाव दोनों का समन्वय आवश्यक है। सांस्कृतिक अर्थछवियों के अनुवाद में एकांगी नियम लागू नहीं हो सकता हैं क्योकि सांस्कृतिक संकल्पनाएं भिन्न होती हैं यथा- अंग्रेजी में 'dating' भारतीय परंपरा में नहीं है। यह संकल्पना ही नहीं है इसीलिए हिंदी में पर्याय भी नहीं हैं। अतः इसे इसी रुप में लेकर व्याख्या द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में 'मांग में सिंदूर डालना' केवल एक क्रिया नहीं है। इसका सामाजिक सांस्कृतिक महत्व है, विवाहित स्त्री की पहचान है। अतः अंग्रेजी अनुवाद करते समय पाद टिप्पणी-'Red mark denotes that the women is married' अपरिहार्य है। अनुवादक के लिए भाषा संरचना की विभिन्नता से अधिक सांस्कृतिक विभिन्नता तुलनात्मक दृष्टि से समस्या उत्पन्न करती है।

भाषाओं की सांस्कृतिक विशिष्टता के संदर्भ में मुहावरों (Idioms) और लोकोक्तियों (Proverbs) की चर्चा भी महत्वपूर्ण है। इनका संबंध प्रत्येक भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, लोक-जीवन, पौराणिक मान्यताओं एवं

दार्शनिक विचारधारा से रहता है। मुहावरे, लोकोक्तियां और लोक जीवन में व्यवहृत पदबंध (Phrase) प्रायः सभी भाषाओं में प्रयुक्त होते है। ये भाषा के प्राण होते हैं और संस्कृतिक के अंग होते है। इन्हें संस्कृति से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। इसीलिए लक्ष्य में अनुवाद के संदर्भ में मुहावरों तथा लोकोक्तियों की समस्या भी एक प्रकार से सांस्कृतिक शब्दावली की समस्या है। अतः लक्ष्य भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, लाक्षणिक प्रयोगों की सम्यक जानकारी और संस्कृति का अच्छा अध्ययन भी आवश्यक है। साथ ही अनुवाद हेतु सतर्कता एवं अभ्यास भी आवश्यक है। ध्यातव्य है कि मुहावरों, लोकोक्तियों के अनुवाद में भाषिक इकाइयों का अंतरण ही नहीं होता अपितु संपूर्ण अर्थ का अंतरण होता है। अंग्रेजी और हिंदी के मुहावरों एवं लोकोक्तियों के संदर्भ में प्रायः स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति को संपूर्ण रुप से नई अभिव्यक्ति के रुप में लक्ष्य भाषा में रखा जाता है। यथा-

To pay back in the same coin-जैसे तो तैसा

Killing two birds with one stone -एक पंथ दो काज

नाच न आवे आंगन टेढ़ा- A bad workman quarrels with his tools

जी जान से- By tooth and nail

मुहावरों और लोकोक्तियुक्त कथ्य का अनुवाद करते समय निम्न तथ्य महत्वपूर्ण हैं-

(1) अर्थ ग्रहण- मुहावरे और लोकोक्ति चूंकि लाक्षणिक अर्थ के वाहक होते हैं अतः स्रोत भाषा में उनके अर्थ को भली भांति समझना जानना आवश्यक है।

(2) समकक्ष प्रयोग (equivalent) की तलाश- समतुल्य मुहावरे विशेष रुप से अंग्रेजी-हिंदी में दृष्टिगत होते हैं यथा-

चेहरा उतरना- Along face
अंधेरे में रखना- To keep in dark
चमड़ी मोटी होना- To have a thick skin
To throw dust in eyes- आँखों में धूल झोंकना
To pull some one's leg- टांग खीचना
To dig one's own grave-अपनी कब्र खोदना

अर्थ के आधार पर भी समतुल्य मुहावरे प्राप्त होते हैं-

हाथ पांव फूल जाना- To get panicky

दाँतों तले उंगली दबाना- To stand amazed

हिंदी में कतिपय मुहावरे विशिष्ट हैं यथा- झण्डा गाड़ना (To achieve victory), डंका बजना (To achieve fame)। कतिपय मुहावरों के निर्माण में धर्म और संस्कृति से संबद्ध तत्वों का योगदान दृष्टिगत होता है। यथा- आसन डिगना, गंगा नहाना, श्रीगणेश करना, जहन्नुम में जाना। अंग्रेजी में भी इस प्रकार के मुहावरे प्रयुक्त होते हैं यथा- TO be tempted, To accomplish a difficult job, TO make a move, To be dammed, हिंदी-अंग्रेजी दोनों में कतिपय ऐसे मुहावरे भी हैं जो पदबंधीय हैं और इनके मध्य भी सामजिक सांस्कृतिक तथा अन्य भेद हैं यथा-

दाल में काला होना- Fishy affair

बेपेंदी का लोटा- A rolling stone

काठ का उल्लु /गोबर गणेश- An absolute blockhead

प्रायः भाषाओं में प्रयुक्त लोकोक्तियों में भी सांस्कृतिक विशिष्टता दृष्टिगत होती है। अंग्रेजी हिंदी में अनेक समतुल्य लोकोक्तियाँ दृष्टिगत होती है। अंग्रेजी- हिंदी में अनेक समतुल्य लोकोक्तियां मिलती हैं-

मुँह में राम बगल में छुरी- To sail under false colours

अधजल गगरी छलकत जाए- A little pot is soon hot

अंग्रेजी की अनेक लोकोक्तियां हिंदी में यथारुप अनूदित हुई हैं-

simple living and high thinking- सादा जीवन उच्च विचार

As you sow, so must you reap- जैसा बोओगे वैसा काटोगे

कतिपय लोकोक्तियां हिंदी की प्रकृति के अनुरुप हैं-

To make a mess of- गुड़ गोबर कर देना

Where there is a will there is a way- जहाँ चाह वहाँ राह

Diamond cuts diamonds- लोहे को लोहा काटता है

अंग्रेजी-हिंदी की असमान लोकोक्तियों का शब्दानुवाद किया गया है-

अति सर्वत्र वर्जयेत- Excess of everything is bad

बूंद-बूंद से भरे सरोवर- Each drop fills the pitcher

थोथा चना बाजे घना- Empty vessels makes much noise

अंग्रेजी -हिंदी की अनेक लोकोक्तियाँ दृष्टांतों के आधार पर समतुल्य हैं। इस प्रकार की लोकोक्तियों में हिंदी में इस प्रकार के प्रयोगों का चयन हुआ है जिनका संबंध साहित्य की किसी प्रचलित पंक्ति या सांस्कृतिक, मिथकीय पात्र से जुड़ता है। वस्तुतः इस प्रकार के अनुवाद को दृष्टांत नहीं प्रचलित उक्ति के आधार पर समतुल्य अनुवाद स्वीकार करना उपयुक्त प्रतीत होता है। यथा-

समरथ को नहिं दोस गुसाई- Rich men have no faults

हिम्मते मरदां मददे खुदा- God helps those who helps themselves

जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय- God tempers the wind.

इस प्रकार अंग्रेजी और हिंदी भाषाएँ सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्तर पर नितांत भिन्न हैं। अतः मुहावरों कहावतें के अनुवाद में शब्दानुवाद न करके उनमें निहित भाव या अर्थ को ग्रहण करके लक्ष्य भाषा में अनुवाद करना उपयुक्त है। साथ ही लक्ष्य भाषा में उपलब्ध उस भाव या अर्थ को व्यंजित करने वाले मुहावरों व लोकोक्तियों का चयन करना भी वांछनीय है।

अस्तु भाषाओं की सांस्कृतिक विशिष्टताओं के कारण अनुवादक को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है किंतु अनुवाद में सामाजिक सांस्कृतिक विशिष्टताओं का पुनःसृजन होता है। अनुवाद संस्कृतियों के मध्य संवाद एवं आदान-प्रदान को सुलभ भी बनाता है।

(लेखक सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं लखनऊ विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान विभाग की पूर्व अध्यक्ष हैं।)

रूपांतरण और अनुवाद

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

रूपांतरण शब्द रूप और अंतरण के योग से बना है जिसका अर्थ है किसी विधा या रूप को किसी अन्य विधा या रूप में परिवर्तित करना। यह शब्द अंग्रेजी शब्द adaptation का हिंदी पर्याय है जिसे कुछ विद्वानों ने अनुकूलन, रूपांतर, समायोजन आदि भी कहा है। इस शब्द का प्रयोग कई विषयों या विधाओं या माध्यमों के संदर्भ में होता है। वनस्पतिशास्त्र में रूपांतरण का अर्थ है किसी अलग वातावरण या स्थिति में पेड़-पौधों का विकास करना। समाजशास्त्र में विद्यमान सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप व्यवहार में क्रमिक परिवर्तन लाना रूपांतरण कहलाता है। आजकल इसका अधिकतर प्रयोग सर्जनात्मक संदर्भ में हो रहा है। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि विधा को किसी अन्य विधा अर्थात् नाटक, कहानी, उपन्यास आदि में परिवर्तित या रूपांतरित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, साहित्यिक विधाओं के कथ्य या कथावस्तु को फिल्म, थिएटर, वीडियो, धारावाहिक (सीरियल) आदि माध्यमों की संरचना, रूप और प्रकार्य के अनुरूप ढाला जाता है जो उस कथावस्तु को एक नया रूप प्रदान करता है।

अनुवाद में अनुसृजन (Transcreation) और रूपांतरण (adaptation) दो आयाम हैं। इन दोनों आयामों में बहुत ही सूक्ष्म अंतर है। अनुवाद के इन दोनों रूपों में समानता यह है कि ये दोनों ही लक्ष्य भाषा के समाज और संस्कृति के संदर्भ में मूलपाठ या स्रोतभाषा के पाठ की पुनर्रचना या पुनर्गठन करते हैं। पुनर्रचना की प्रक्रिया के अंतर्गत इन दोनों के बीच एक और समानता भी मिलती है जिसमें अनुसृजन एवं रूपांतरण की प्रकृति को समझने और व्याख्या करने के लिए लक्ष्य भाषा के समाज और संस्कृति की प्रकृति और स्वरूप की निर्णायक भूमिका होती है। अनुसृजन और रूपांतरण दोनों के संदर्भ में प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि यह पाठ के संदर्भ से अधिक संस्कृति-सापेक्ष होती है, जिसे ऐतिहासिक संदर्भ के अनुसार पुनर्सृजित और रूपांतरित किया जाता है। इन समानताओं के बावजूद अनुसृजन और रूपांतरण अनेक दृष्टियों से भिन्न है। यह अंतर सामान्यतः स्रोतभाषा पाठ से लक्ष्यभाषा पाठ में परिवर्तन के अंश और प्रकृति पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए, 19वीं तथा प्रारंभिक 20वीं शताब्दी में अंग्रेजी नाटकों, विशेषकर शेक्सपीयर के नाटकों का भारतीय मंचन के लिए रूपांतरण किया गया। इन नाटकों को दर्शकों के समक्ष शेक्सपीयर के नाटकों के रूप में ही प्रस्तुत किया गया, किंतु मंच पर जो सामाजिक या सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत किया गया वह भारतीय था। दूसरे शब्दों में कहें तो पात्रों का स्थानीकरण कर दिया गया। इसके अतिरिक्त रूपांतरण सिनेमा के लिए साहित्यिक पाठ के प्रयोग में सामान्यतः

उपयोग किया जाने वाला साधन है। यहाँ रूपांतरण एक माध्यम से दूसरे माध्यम अर्थात् साहित्यिक से सिनेमा में है। इस प्रक्रिया में 'वर्णन की प्रकृति' में परिवर्तन किए जाते हैं।

स्रोतभाषा पाठ में परिवर्तन की मात्रा रूपांतरण की अपेक्षा अनुसृजन की प्रक्रिया में अधिक होती है। ऐसे भी कई उदाहरण मिलते हैं जिसमें किसी पाठ पर सिनेमा बनाने की जो प्रक्रिया होती है उसमें दोनों के बीच का संबंध ढीला पड़ जाता है। वस्तुत: एक विचार के व्यापक दिशा-निर्देशक के रूप में पाठ विद्यमान होता है तथा सिनेमा में यह विचार एक नए रूप और विषयवस्तु में पूर्ण रूप से ढाला जाता है। यद्यपि ऐसे संदर्भ भी मिलते हैं जहाँ अनुसृजन और रूपांतरण के बीच का अंतर बहुत कम रह गया हो। उदाहरण के लिए, दक्षिण एशिया में जिन महाकाव्यों की रचना हुई है उन्हें युगीन संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। इस दृष्टि से रामकथा परंपरा में रामायण का मूल ढाँचा तो वही मिलता है किंतु चाहे चरित्र-चित्रण का विवरण हो, कहानी की स्थानीयता हो, भाषा हो, वेशभूषा हो या व्यवस्थापन प्रारूप तथा कहानी के अन्य विवरण का हो; ये एक रामायण से दूसरी रामायण में विशेष रूप से भिन्न हो जाते हैं। अगर कहानी का अनुकूलन लक्ष्य भाषा की संस्कृति में किया जाता है तो रूपांतरण की प्रक्रिया में पुनर्सृजन भी होता रहता है।

इस प्रकार रूपांतरण और अनुसृजन में मूल समानताओं और भिन्नताओं का विवेचन करने से रूपांतरण की अवधारणा स्पष्ट हो जाती है। रूपांतरण अथवा अनुकूलन की प्रक्रिया को विभिन्न प्रकार के चरणों से गुजरना पड़ता है। रूपांतरण का प्रथम चरण है रूपांतरित किए जाने वाले पाठ का चयन। पाठ का चयन पाठ की प्रकृति और रूपांतरण के उद्देश्य पर आधारित होता है। यहाँ पाठ की प्रकृति और पाठ का उद्देश्य दोनों अंतर्संबंधित हैं। पाठ की प्रकृति तथा पाठ के चयन के पीछे उद्देश्य का होना आवश्यक है। रूपांतरण का उद्देश्य ही स्रोतभाषा पाठ को लक्ष्यभाषा की संस्कृति से जोड़ना है। लक्ष्यभाषा की संस्कृति मंठ रूपांतरण की आवश्यकता या भूमिका उपर्युक्त बिंदु से निर्धारित होती है। दूसरे चरण में स्रोतभाषा पाठ में किए जाने वाल परिवर्तनों की प्रकृति के साथ अनुकूलन के उद्देश्य भी शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक साहित्यिक पाठ का पटकथा में रूपांतरण किया जाता है तो साहित्यिक पाठ और सिनेमा की विशिष्टताएँ पहचानी जाएँगी और एक प्रकार की विशिष्टताओं का दूसरे प्रकार की विशिष्टताओं में रूपांतरण किया जाएगा। इस संबंध में समयावधि का प्रश्न पैदा होता है क्योंकि उपन्यास के विपरीत फिल्म का एक निश्चित समय (सामान्यतः 30 मिनट से ढाई घंटे तक) होता है जिसके अंतर्गत वर्णन को पूरा करना होता है। तीसरे चरण में रूपांतरण का मूल्यांकन किया जाता है। इस चरण में यह देखा जाता है कि जो परिवर्तन किए गए हैं उनसे स्रोतभाषा के पाठ का अर्थ प्रभावित हुआ है या नहीं और तत्पश्चात् निर्णय लिए जाते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन के आधार पर अंतिम उत्पाद स्वीकार या अस्वीकार होता है। व्यापक रूप से सभी प्रकार के अनुकूलनों में इन तीन चरणों का अनुसरण होता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ये बारीकियाँ विशिष्ट रूपांतरणों के अनुसार अलग-अलग होती हैं।

पाठपरक प्रस्तुति

रूपांतरण के अंतर्गत एक पाठपरक प्रस्तुति भी होती है। जब किसी साहित्यिक पाठ का उद्देश्य मात्र पढ़ना नहीं होता अपितु दर्शकों के समक्ष उसका मंचन या अभिनय करना होता हो तो उसे पाठपरक प्रस्तुति कहा जाता है। पाठपरक प्रस्तुति का क्षेत्र काफी व्यापक है। भारत में सामान्यतः पाए जाने वाले और अभिनीत किए जाने वाले पाठपरक अभिनय के प्रकारों में से एक ऐतिहासिक महाकाव्यों की परंपरा भी रही है। रामायण, महाभारत और श्रीमद् भगवदगीता तीन ऐसे ग्रंथ हैं जो पढ़े ही नहीं जाते अपितु इनका अभिनय भी होता है। समूचे दक्षिण एशिया में महाकाव्यों के इन पाठपरक अभिनयों में यद्यपि कथा का व्यापक ढाँचा उसी तरह समान रहता है किंतु चरित्र-चित्रण, भाषा, स्थानीयता का वर्णन, संगीत की प्रकृति और प्रयोग अथवा सामाजिक व्यवस्था के आधार पर ये एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हो जाते हैं। जैसा कि भारत में ऐतिहासिक रूप से पाठपरक अभिनयों ने लक्ष्य भाषा की संस्कृति और समाज के दिए हुए संदर्भ में कथाओं को रूपांतरित और पुनर्सृजित किया है। स्रोतभाषा में किए गए परिवर्तनों के कुछ माध्यमों को आगे बताया जा रहा है।

'साबिन आलुन' की असमिया कार्बी रामायण में मूल रामायण का स्थानीयकरण छोटी पहाड़ियों के अनुरूप है क्योंकि असम के कार्बी समुदाय के लोग ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिण में कार्बी पहाड़ियों के निवासी रहे हैं। इस रामायण में लोगों के आर्थिक जीवन का मुख्य आधार झूम कृषि या सीढ़ीदार खेती है। सीता झूम खेती में कुशल थी। ये सब वाल्मीकि रामायण की तुलना में भिन्न है। यह उस क्षेत्र की अधिकतर रामायण कथाओं का मूल आदर्श है जो मैदानी और स्थानाधारित कृषि पर आधारित है। सामाजिक-आर्थिक संदर्भ के अतिरिक्त भी कहानी में अन्य कई रूपांतरण दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, विश्वकर्मा के निर्देश पर देवी लक्ष्मी मोर के अंडे का रूप धारण कर लेती है और गड़रियों को मैदान में मिलती है। वे उस अंडे को पुजारी हेम्फू के पास ले जाते हैं जो उसे एक टोकरी में रख देता है। एक दिन वह अंडा फूटता है तथा टोकरी में सीता पाई जाती है। यहाँ वाल्मीकि रामायण के राजा जनक के स्थान पर हेम्फू की संकल्पना रखी गई है। इस रामायण में और भी कई प्रकार के अंतर मिलते हैं। रावण के प्रायः दस सिर माने जाते हैं किंतु इसमें रावण के बारह सिर बताए गए हैं। राम, लक्ष्मण और सीता का निर्वासन स्थानीय श्लोक नारायण नामक पहाड़ी पर होता है। हनुमान कई अवसरों पर दोनों भाइयों की जानबचाते हैं और वे राम को वही हथियार लाकर देते हैं जिससे रावण को मारा जा सके और राम उसी हथियार से रावण को मार देते हैं। रूपांतरण की यही स्थिति हिन्दी में तुलसीकृत 'रामचरितमानस, तमिल में 'कंब रामायण, बंगला में 'कृतिवास रामायण' और तेलुगु में 'रंगनाथ रामायण में भी देखी जा सकती है।

इस विवेचन के आधार पर रूपांतरण की प्रक्रिया में स्रोतभाषा पाठ में किए गए उन परिवर्तनों की सूची बन सकती हैं जिनका विश्लेषण किया जा सकता है। परिवर्तनों को पहचान करते हुए कुछ बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। सबसे पहले स्रोतभाषा का पाठ ऐसा कोई पाठ नहीं है जैसा सामान्यतः समझा जाता है। यह एक मान्य पुस्तक या पांडुलिपि होता है। यहाँ स्रोतभाषा का पाठ रामायण एक परंपरा है जो अनुवाद के इतिहास एवं परंपराओं पर आधारित अलग-अलग पाठों में महाकाव्य के रूप में मिलता है। इस दृष्टि से इनमें जो परिवर्तन किए गए हैं वे भी रूपांतरण की एक परंपरा है। इसका अर्थ हुआ कि परंपराएँ रूपांतरित की जा सकती हैं अथवा उन्हें लक्ष्य भाषा की संस्कृति में ऐतिहासिक रूप से रूपांतरित किया गया है। दूसरा, स्रोतभाषा पाठ की विषयवस्तु या विवरण में परिवर्तन करके रूपांतरण किया जाता है। इस परिवर्तन का उद्देश्य पाठ को कार्बी समुदाय के लिए स्थानीय बनाना है, किंतु विवरण में परिवर्तन के परिणामस्वरूप राम या सीता जैसे चरित्रों की प्रकृति भी रूपांतरित हो जाती है। यहाँ रूपातंरण यह है कि ये चरित्र अब अपने स्रोतभाषा पाठ की प्रकृति से बहुत कम मेल खाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि ये पूर्णतया भिन्न या नए चरित्र हैं? ये चरित्र नए चरित्र नहीं हैं क्योंकि ये स्रोत पाठ से ही व्युत्पन्न हुए हैं और अपने नामों के कारण ये अपना संबंध स्रोतभाषा के पाठ से बनाए रखते हैं। इन्हें रूपांतरित चरित्र कहते हैं। रूपांतरण का किसी-न-किसी प्रकार में स्रोत (पाठ) से संबंध सदा रहता है चाहे वह अप्रत्यक्ष ही क्यों न हो। तीसरा, यहाँ माध्यम का भी रूपांतरण है। असम की घाटियों एवं पहाड़ियों में रामायण परंपरा का मूल आधार लिखित वाल्मीकि रामायण है। माधव कंदली या दुर्गावर रामायण जैसी असम की कुछ और रामायण परंपराएँ भी लिखित ग्रंथ या पांडुलिपियाँ हैं। किंतु कार्बी रामायण मूलत: एक मौखिक रामायण है जो गायन पद्धति के द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। 20वीं शताब्दी में यह रामायण लिखित रूप में आई। किंतु प्रश्न उठता है कि रामायण का रूपांतरण मौखिक माध्यम में क्यों किया गया। इसका उत्तर है कि कार्बी लोग अधिकतर इतिहास को मौखिक भाषा रूपों में संप्रेषित करते रहे हैं। अधिकतर आरंभिक समाजों की भाँति ज्ञान की संचयन पद्धति और संप्रेषण का विकास मौखिक रूप से हुआ और प्रयोग में आया, अर्थात् व्यवस्थित तौर पर मौखिक रूप में परंपराओं एवं रीति-रिवाजों को संरक्षित किया गया। इस प्रकार कार्बी रामायण मौखिक माध्यम में रूपांतरित होने के बावजूद आधुनिक काल में एक व्यवस्थित रूप में सामने आई है।

कार्बी रामायण का पाठपरक रूपांतरण एक पाठ है जो केवल पढ़ा ही नहीं जाता अपितु उसका अभिनय भी किया जाता है। यह पाठपरक रूपांतरण एक आधुनिक उपन्यास या 'किताब' से बहुत अलग है जो अधिकतर लोगों के पढ़ने के लिए प्रकाशित एवं उपलब्ध कराया जाता है। पूर्व आधुनिक दक्षिण एशिया में पाठपरक रूपांतरण संप्रेषण का एक महत्वपूर्ण रूप था। उस समय जब साहित्य और शिक्षा कुछ वर्गों में परिरक्षित थी तब पाठपरक अनुपालन बड़े जनसमुदाय के बीच साहित्य को संप्रेषित करने और यहाँ तक कि संदेश संप्रेषण का भी महत्वपूर्ण माध्यम था, किंतु पाठपरक अनुपालन में यह आवश्यक नहीं कि पाठ केवल लिखित रूप में हो अर्थात् पांडुलिपि हो। सरल शब्दों में कहें तो किसी भी विचार, सूचना या ज्ञान के एक विशिष्ट समूह में गठन का सिद्धांत

वर्णनात्मक संरचना के साथ-साथ स्मृति तथा अंतरण के विशिष्ट नियमों पर आधारित था। यदि कार्बी रामायण पर पुन: विचार करें तो वाल्मीकि रामायण के लिखित रूप में पाठ होने के अपने विशिष्ट नियम की तरह ही कार्बी रामायण की वर्णनात्मक संरचना के भी विशिष्ट नियम थे जो पाठ का मौखिक रूप था। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण का कार्बी रामायण में रूपांतरण विषयवस्तु और विवरण के साथ-साथ वर्णन के नियमों एवं लिखित रूप से मौखिक का भी परिवर्तन था। इस प्रकार पाठपरक अनुपालन में केवल विषयवस्तु का ही नहीं अपितु माध्यम का भी रूपांतरण होता है। इस रूपांतरण में केवल अर्थ का ही परिवर्तन नहीं होता अपितु माध्यम में परिवर्तन के कारण वर्णनात्मक संरचना में भी परिवर्तन होता है। भारत में मैथिल रामायण, रामचरित मानस, साकेत आदि रामायण के अनेक संस्करण प्राप्त होते हैं, उन सभी में लगभग इसी प्रकार के प्रयोग दिखाई देते हैं।

पाठ से पाठ रूपांतरण

पाठ से तात्पर्य लिखित विवरणों तथा पुस्तकों से हैं। पाठ से पाठ रूपांतरण दो प्रकार का होता है - (क) स्रोतभाषा के पाठ का अंतरविधात्मक रूपांतरण, (ख) स्रोतभाषा के पाठ का लक्ष्यभाषा में रूपांतरण। स्रोतभाषा के पाठ का अंतरविधात्मक रूपांतरण से अभिप्राय एक विधा से दूसरी विधा में परिवर्तित करना है अर्थात किसी उपन्यास अथवा कहानी का रूपांतरण नाटक में या पद्य का गद्य में अथवा गद्य का पद्य में। पद्य से गद्य में रूपांतरण करते समय वर्णनात्मक संरचना में जो आवश्यक परिवर्तन होते हैं, उनके विभिन्न आयाम चार्ल्स लैंब और मैरी लैंब कृत शेक्सपीयर के नाटकों (Tales of Shakespear, 1807) के गद्य अनुवाद में देखे जा सकते हैं। 'टेल्स ऑफ शेक्सपीयर' की रचना बच्चों के लिए हुई थी। इस संबंध में दो बातों पर ध्यान देने की अवश्यकता है। अंग्रेजी में निबंध की शैली को उत्तम बनाने का श्रेय चार्ल्स लैंब और उसकी बहन मैरी लैम्ब को दिया जाता है। निबंध शैली की बढ़ती लोकप्रियता 19वीं शताब्दी के यूरोप में गद्य साहित्य की बढ़ती हुई लोकप्रियता से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी, किंतु चार्ल्स लैंब ने यह भी तर्क दिया कि शेक्सपीयर को और भी अच्छी तरह समझना है तो इनके नाटकों की प्रस्तुति को देखने के बजाय उन्हें पढ़ा जाए। पढ़े जाने पर ही उसकी बारीकियों को समझना अधिक सरल होगा। वास्तव में 19वीं शताब्दी में शेक्सपीयर के नाटकों के संबंध में वर्णनात्मक संरचना और वर्णन की जिस तकनीक का रूपांतरण हो रहा था उसके बृहत्तर कारण – पुस्तकों के लिए बाजार का अस्तित्व में आना, गद्य लेखन का बढ़ता हुआ महत्व और गद्य में नाटकों को पढ़ने के लिए इच्छुक पाठक समुदाय की मौजूदगी जैसे ऐतिहासिक परिवर्तन थे। स्रोतभाषा के पाठ का लक्ष्यभाषा में जो रूपांतरण होता है उसे भारतीय महाकाव्य रामायण की रूपांतरण की प्रक्रिया से समझा जा सकता है। सी. राजगोपालाचारी ने जो राम कथा लिखी है वह आधुनिक काल में रामायणों के सबसे प्रसिद्ध रूपांतरणों में से एक है। उन्होंने अंग्रेजी में जो रामायण लिखी वह मूल रामायण का संक्षिप्त संस्करण है। बाद में इसका अनुवाद अन्य कई भारतीय भाषाओं में हुआ। यह

ग्रंथ सबसे पहले वर्ष 1957 में प्रकाशित हुआ था। राजगोपालाचारी की रामायण केवल एक संक्षिप्त अनुवाद ही नहीं अपितु दो तरीकों से रूपांतरण भी है। पहला 19वीं शताब्दी से प्रकाशित होने वाली अन्य कई रामायणों की भाँति यह पांडुलिपि से एक पुस्तक के रूप में रूपांतरित हो चुकी थी। यह पाठ-निर्माण के आधार पर एक रूपांतरण ही है। दूसरा, यद्यपि रामायण के अन्य कई संक्षिप्तानुवाद विद्यमान थे; जैसे-रमेश चंद्र दत्त का अनुवाद (1899) पुस्तक रूप में होने के बावजूद पद्य रूप में था, जबकि राजगोपालाचारी की रामायण गद्य में थी। इसका तात्पर्य यह है कि रामायण के वर्णन के लिए प्रयुक्त वर्णनात्मक संरचना का रूपांतरण हुआ है। राजगोपालाचारी की रामायण के पाठ से पाठ रूपांतरण में केवल विषयवस्तु का ही अंतरण नही हुआ है, अपितु समान रूप से वर्णनात्मक तकनीकों तथा वर्णनात्मक संरचना के साथ-साथ पाठों के उत्पादन की तकनीकों में भी अंतरण हुआ है।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पाठपरक प्रस्तुति के साथ ही साथ पाठ से पाठ रूपांतरण जैसे दोनों ही रूपों में केवल अंतर्वस्तु का परिवर्तन नहीं होता बल्कि वर्णन की तकनीक के साथ-साथ वर्णनात्मक संरचना में भी रूपांतरण होता है। इसके अतिरिक्त एक प्रदत्त ऐतिहासिक संदर्भ में वर्णन की तकनीक तथा वर्णनात्मक संरचना का चयन उस समाज में प्रचलित विचार धारा पर निर्भर करता है जिससे रूपांतरण की और भी तकनीकें हो सकती हैं।

पाठ से मंच रूपांतरण

पाठ से मंच रूपांतरण के भी दो रूप देखे जा सकते हैं - एक, लिखित या मौखिक साहित्यिक विवरण का मंच प्रस्तुति के माध्यम में रूपांतरण। दूसरा, मूल रूप से मंच प्रस्तुति के लिए लिखे गए पहले से विद्यमान नाटक का एक भिन्न सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ में तथा एक भिन्न अर्थ के साथ नाटक रूप में ही रूपांतरण। इन दोनों मामलों में 'पाठ'का अर्थ भिन्न हो जाता है। प्रथम उदाहरण में पाठ मूलतः मंच प्रस्तुति के लिए नहीं है, किंतु द्वितीय उदाहरण में यह मंच प्रस्तुति के लिए निर्मित पहले से विद्यमान पाठ का रूपांतरण भिन्न रूप में है, जिसका मंचन भी किया जा सकता है। यदि किसी लघुकथा का नाटक में रूपांतरण और मंच प्रस्तुति होती है तो इसे प्रथम रूप में लिया जा सकता है। जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चंद्रगुप्त'का मंचन दूसरे रूप का रूपांतरण है। इसी प्रकार 19वीं तथा 20वीं शताब्दियों में भिन्न अर्थों और अंतर्वस्तु के साथ शेक्सपीयर के नाटकों का विभिन्न भारतीय भाषाओं में रूपांतरण और मंचन दूसरे रूप के अंतर्गत आता है।

प्रथम रूप में एक साहित्यिक वर्णन का नाटक और मंच रूपांतरण में साहित्यिक और मंच प्रस्तुति जैसे दो भिन्न माध्यम हैं। इस प्रकार के रूपांतरण में दो नियम काम करते हैं - (क) पाठ-विस्तार बनाम पटकथा-विस्तार और (ख) वर्णन से रंगमंच निर्देशन। पाठ विस्तार या पटकथा विस्तार और वर्णन से रंगमंच निर्देशन से यह

अभिप्राय है कि साहित्यिक कृति कई पृष्ठों की होती है अर्थात कोई भी उपन्यास 200 पृष्ठों का हो सकता है। उस उपन्यास का यह पाठ-विस्तार होगा। किंतु जब इस उपन्यास का मंचन होता है तब पटकथा 200 पृष्ठों की नहीं हो सकती। इसलिए उस नाटक की पटकथा मंच के लिए उपयुक्त समय-विस्तार पर आधारित होती है। सामान्यतः एक पटकथा की लंबाई लगभग 20-25 पृष्ठों की होती है। लंबाई के अतिरिक्त कहानी के वर्णन का प्रश्न भी उठता है। पाठ अर्थात् उपन्यास के वर्णन में साहित्य के उपकरण, साहित्यिक विधाएँ, लेखन के साधन और समकालीन प्रक्रियाओं का प्रयोग होता है। किंतु नाटक के वर्णन में मंच के उपकरण जैसे कि परिधान एवं रूप-सज्जा (मेकअप), प्रकाश, मंच, विशेष प्रभावों के लिए ध्वनिक और तकनीकी साधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी प्रकार रूपांतरण के भाग के रूप में वर्णन की शैली और तकनीक दोनों मूलभूत रूपांतरण से गुजरते हैं। कहानी को कहने या वर्णन करने के लिए वाचक होता है। पाठ में लेखक वाचक होता है जो कहानी का वर्णन तृतीय पुरुष या प्रथम पुरुष के रूप में करता है। जब लेखक अपनी स्वयं की कथा न कहकर किसी अन्य व्यक्ति की कथा का वर्णन करता है तब उसे तृतीय पुरुष वर्णन कहते हैं। जब लेखक अपनी स्वयं की कथा का वर्णन करता है तब उसे प्रथम पुरुष वर्णन कहते हैं। परंतु रंगमंच नाटक में वाचक तीन वर्गों में अर्थात् रंगमंच निर्देशक, नाटककार और वाचक के रूप में विभाजित हो जाता है जो वर्णन के लिए रंगमंच पर उपस्थित रहता है। इसे भारतीय नाट्यशास्त्र में सूत्रधार भी कहते हैं। साहित्यिक पाठ में निर्देशक और नाटककार में अंतर नहीं होता। कई बार सूत्रधार का चयन पाठ से रंगमंच रूपांतरण में एक और आयाम अर्थात् चरित्र-चित्रण का रूप ले लेता है। यहाँ दो प्रश्न उठते हैं; एक, क्या एक सूत्रधार वाचक या पात्र हो सकता है? दूसरा, एक निर्देशक या नाटककार नाटक में चरित्र-चित्रण पर वैसा ही अधिकार रखता है जैसे साहित्यिक पाठ उपन्यास में एक लेखक रखता है। सूत्रधार वाचक के साथ-साथ पात्र भी हो सकता है। निर्देशक पटकथा के चरित्र-चित्रण का अनुसरण कर सकता है या इसकी पुनर्व्याख्या कर सकता है किंतु यह सब पटकथा के बृहत्तर ढाँचे में ही संभव है। अभिनेता निर्देशक द्वारा उपलब्ध कराए गए विवरणों का अनुसरण कर सकता है या स्वयं ही उसका महत्व बढ़ा सकता है किंतु यह केवल नाटक के पूरे ढाँचे में किया जा सकता है। ये भिन्नताएँ अभिनय या निर्देशन के विभिन्न सिद्धांतों पर आधारित हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि पाठ के रंगमंचीय नाटक के रूपांतरण में कई ऐसे तात्विक अंतर हैं जिनके लिए सतर्क होना पड़ता है। ये सभी तत्व पाठ से मंचन में अर्थ परिवर्तन नहीं करते। एक भिन्न माध्यम से पाठ के अर्थ के संप्रेषण के लिए इन तत्वों की आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त पाठ की लंबाई को पटकथा की लंबाई में रूपांतरित करना भी रूपांतरण के अंतर्गत आता है। लेखक या वाचक किसी कथा या उपन्यास का वर्णन 100 से अधिक पृष्ठों में कर सकता है, किंतु पटकथा का विस्तार इतना नहीं हो सकता। एक ऐसी तकनीक भी है जिसमें मंचन के दौरान भी एक कहानी विद्यमान रहती है और इस कहानी का वर्णन मंच पर वाचकों द्वारा किया जाता है। इसलिए 100 पृष्ठों की कहानी का वर्णन भी पैंतालीस मिनट में मौखिक रूप से जा सकता है, किंतु वाचक रंगमंच पर केवल वाचक नहीं होते हैं, अभिनेता भी

कथा के वाचक की भूमिका निभाते हैं। किसी भी कथा में विभिन्न पात्र होते हैं। जब एक दृश्य प्रस्तुत किया जाता है तो उनमें से एक अभिनेता दृश्य का वर्णन करने की भूमिका अदा करता है, जबकि संवाद की भूमिका या अभिनय अन्य अभिनेताओं द्वारा होता है। इस प्रकार ये वाचक वर्णनकर्त्ता की भूमिका अदा करते हैं जो एक साहित्यिक पाठ में लेखक निभाता है। जहाँ तक कथा की प्रस्तुति का संबंध है, मंच के विभिन्न तत्वों; जैसे परिधान और मेकअप, विशेष मंच के विशेष प्रभाव, प्रकाश, ध्वनियाँ, वाइस ऑवर और मंच सज्जा या रूपरेखा को कहानी के भौतिक और शारीरिक आयामों की कल्पना के लिए प्रयोग किया जाता है। एक कथा या उपन्यास में दृश्य समाप्ति नहीं होती। इसी प्रकार के रूपांतरणों में मंच पर सदा एक वाचक मौजूद रहता है, इसलिए दृश्य समाप्ति की स्थिति से पार पाया जा सकता है जिसका नाटकों में प्राय: अनुसरण होता है। परिणामस्वरूप, मंच पूरे समय प्रकाशित रह सकता है और अभिनेता वाचक द्वारा मंचित कथा का अभिनय कर सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगमंच के लिए साहित्यिक पाठ का रूपांतरण कैसे होता है और इस प्रकार के रूपांतरण में किस प्रकार की प्रविधि का प्रयोग होता है। रंगमंच की दृष्टि से इसी प्रविधि के अनुसार श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी'का जो रूपांतरण हुआ, उसे संगीत और अभिनय के सम्मिलन से उत्कृष्ट बना दिया। बाद में इसी का टी.वी. सीरियल भी सफल बना। 'रंगनाथ की वापसी'के नाम से यह भी बताना उचित होगा कि लक्षित समाज और संस्कृति के संदर्भ में नाटक का रूपांतरण किस प्रकार किया जाता है। भारत में इसका सबसे अच्छा उदाहरण शेक्सपीयर के नाटक हैं, जिनका 19वीं और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में विभिन्न रंगमंच समुदायों द्वारा भारतीयकरण किया गया और समूचे देश में उसका मंचन किया गया। वास्तव में शेक्सपीयर अपने नाटकों के कारण महान तो थे ही, साथ ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जो स्थापना हुई उसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सांस्कृतिक रूपों का जो विस्तार हुआ उसके कारण वे अधिक लोकप्रिय हुए। जब उनके नाटकों का भारत में मंचन किया गया तब उन नाटकों का स्थानीय स्थिति और वातावरण के अनुसार रूपांतरण किया गया। शेक्सपीयर के नाटक दि कॉमेडी ऑफ ऐररस'(1869) का विद्यासागर ने 'भ्रांतिविलास'नाम से जो बांग्ला अनुवाद किया वह भारतीयकरण की प्रक्रिया का एक अच्छा उदाहरण है। उन्होंने इसे भारतीय दर्शकों हेतु उपयुक्त बनाने के लिए नाटक के शीर्षक, स्थानों के नामों, जैसे विदेशी तत्वों को बहुत ही सावधानी से हटाया और पश्चिमी रीति-रिवाजों को भारतीय रीतिरिवाजों के साथ बदल दिया। उदाहरण के लिए, ''दि केपन बर्नस: दि पिग फॉल्स दि स्पिट'' प्रसंग को हटा दिया गया, क्योंकि यह हिंदू और मुस्लिम दोनों की भावनाओं के प्रतिकूल होने के कारण आपत्तिजनक था। ''मीट इज कोल्ड'' के स्थान पर आहार सामग्री (भोजन) में रख दिया गया, क्योंकि इसका शब्दानुवाद भिन्न अर्थ की ओर इंगित कर सकता था। 'टेमिंग ऑफ श्रियु'के तमिल अनुवाद में चुंबन और विलासिता के कुछ दृश्य हटाकर उनकी जगह स्थानीय तौर पर खेले जाने वाले कुम्मी व कोलाट्टम जैसे कुछेक घरेलू खेल रख दिए गए। इन दृष्टांतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कैसे भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में रूपांतरित करने पर नाटकों की अंतर्वस्तु को बदला जा सकता है। अब इस पाठ से मंच रूपांतरण के

प्रकारों तथा पूर्व में चर्चित प्रकारों में क्या कोई अंतर है? यहाँ जो प्रयास किया गया है वह पहले की तुलना में माध्यमों के रूपांतरण (साहित्यिक पाठ से मंच), वर्णन की पद्धति (लेखन से मंचन) और वर्णनात्मक संरचना में था। रूपांतरण की प्रक्रिया में उसका अर्थ बिलकुल नहीं बदला गया, किंतु दूसरे वाले रूपांतरण में वर्णन की पद्धति में उतना परिवर्तन नहीं था जितना उसकी अंतर्वस्तु अर्थात् नाटक के अर्थ का था। परिणामस्वरूप, शेक्सपीयर का मूल अंग्रेजी नाटक एक 'पाठ'बन गया जिसका रूपांतरण और मंचन भारतीय संदर्भ में किया गया।

इसी परिप्रेक्ष्य में माध्यम और संस्कृति दोनों स्तरों पर रूपांतरण का एक अन्य उदाहरण दिया जा रहा है। पीटर ब्रुक ने फ्रांसीसी मंच और पर्दे पर महाभारत का जो रूपांतरण प्रस्तुत किया था उसका यह एक सजीव स्पष्टीकरण है। मंच रूपांतरण के लिए पटकथा का लेखन (साथ ही साथ फिल्म के लिए भी) जीन क्लाउड कैरियर ने किया था। रूपांतरणों के निर्माण पर अपनी पुस्तक 'इन सर्च ऑफ दि महाभारत : नोट्स ऑफ ट्रैवल्स इन इंडिया विद पीटर ब्रुक 1982-1983' में कैरियर कहते हैं कि वृहत् महाभारत काव्य को फ्रांसीसी दर्शकों के लिए छः घंटे की समयावधि की एक पटकथा में कैसे रूपांतरित किया गया। इस महाकाव्य को तीन भागों में बाँटा गया। पहले भाग में जुए का खेल (एक घंटे चलने वाला दृश्य) और साथ में जन्म, बाल्यावस्था, प्रतियोगिता, विवाह आदि को प्रदर्शित किया गया। दूसरे भाग में (पांडवों का) वनवास, वन से वापसी, युद्ध की निश्चितता जानते हुए भी कृष्ण द्वारा इसे रोकने का प्रयास और अन्य समानांतर कथाएँ थी। तीन घंटे की समयावधि का तीसरा भाग युद्ध पर केंद्रित था। विभिन्न शिविरों और युद्ध और स्वर्ग के बीच की गतिविधियों की प्रस्तुति से यह भाग बहुत ही कठिन था। चूँकि इस महाकाव्य के केंद्र में धर्म है इसलिए छः घंटे के इस नाटक में फ्रेंच दर्शकों को इसका अर्थ समझाने के लिए एक अतिरिक्त दृश्य का निर्माण करना पड़ा। रूपांतरण का एक अन्य उदाहरण वह दृश्य है जिसमें झील का यक्ष पांडव-बंधु युधिष्ठिर से धर्म पर प्रश्न करता है। स्वयं कैरियर के शब्दों में ''मुझे उस काव्य से अलग प्रश्नों की आवश्यकता थी। मैंने प्लुटार्च को बार-बार पढ़ा, खासतौर पर उस भाग को जिसमें अलेक्जेंडर के जीवन का उल्लेख है, जहाँ वह नव विजय के पश्चात् यूनानी दार्शनिकों से घिरा होता है और उसी समय एक भारतीय साधु उससे मिलने आता है तथा साधु एवं युनानी दार्शनिकों के बीच वाद-विवाद होता है।'' यहाँ यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि इस महाकाव्य के चरित्र पूर विश्व से चुने गए थे; जैसे- द्रोपदी भारतीय थी और भीम अफ्रीकी था। इसके पीछे यह विचार था कि प्रत्येक चरित्र स्वयं में एक मूलभूत और सार्वभौमिक विशेषता रखता हो। इस नाटक के सार्वभौमिक तत्व को ग्रहण करने के लिए कलाकारों का इसके अनुरूप ही चयन करना आवश्यक था। इस प्रकार मंच और स्क्रीन रूपांतरण जैसे दोनों क्षेत्रों में पीटर ब्रुक का महाभारत आज भी क्लासिक माना जाता है। यह मात्र माध्यमों अर्थात् पाठ से मंच का रूपांतरण नहीं था अपितु यह संस्कृति का, भारतीय से फ्रेंच-वैश्विक संदर्भ में भी रूपांतरण था।

पाठ का स्क्रीन या फिल्म रूपांतरण

पाठ से मंच रूपांतरण की अपेक्षा पाठ से स्क्रीन अर्थात् फिल्म रूपांतरण अधिक जटिल और व्यापक है। इसे पर्दे या सिनेमा स्क्रीन रूपांतरण भी कहते हैं। इस रूपांतरण के लिए माध्यम का महत्व अधिक है। इसमें कैमरा एक ऐसा उपकरण है जिससे मंच और स्क्रीन रूपांतरणों में एक बहुत बड़ा अंतर आ जाता है। कैमरे के अतिरिक्त सिनेमा का उत्पादन केंद्र अर्थात् फिल्म स्टूडियो की भी आवश्यकता होती है। इस कारण रंगमंच का स्टूडियो फिल्म स्टूडियो से बिल्कुल अलग होता है।

डिजिटल कैमरे से वीडियों एवं स्थिर दोनों प्रकार के चित्र खींचे जा सकते हैं। यदि सिर्फ चित्र खींचने वाले कैमरे का प्रयोग किया जाए तो इससे विभिन्न कोणों से चित्र खींचे जा सकते हैं, चित्र के आकार बदले जा सकते हैं, अर्थात् छोटे या बड़े किए जा सकते हैं, प्रकाश के स्तर पर नियंत्रण किया जा सकता है, यद्यपि यह सुविधा डिजिटल कैमरे में उपलब्ध है। और यदि विशेष रूप से वीडियो शूट करनी हो तो निर्धारित समय तक ही उसे बनाया जा सकता है जिसकी समायावधि कुछ सेकेंड से लेकर कुछ मिनट तक होती है। इस तरह की सुविधा आज कल कैमरे वाले मोबाइल फोन में भी उपलब्ध है। रंगमंच और पर्दा दोनों पटकथा के द्वारा कार्य करते हैं। यह साहित्यिक पाठ से भिन्न होता है जो वर्णन के साथ-साथ अपना काम भी करता है। जिस पटकथा पर फिल्म फिल्माई जाती है उसे स्क्रीनप्ले कहते हैं। किंतु स्क्रीनप्ले नाटक की पटकथा से भिन्न होता है। वस्तुत: यह स्क्रीनप्ले कैमरे की भूमिका पर आधारित होता है। इसके सरल प्रतिपादन हेतु मोनटेज़ का संपादन, क्लोज़-अप और लॉग-शॉट तीनों को तकनीक के रूप में समझा जा सकता है। कोई भी कैमरा वीडियो फुटेज को निगेटिव या डिजिटल मेमोरी में आलेखित करता है। यह प्रयोग कैमरे के प्रकार और क्षमता पर निर्भर करता है।

कोई भी फिल्म, चाहे वृत्तचित्र हो या फीचर फिल्म, स्क्रीनप्ले के अनुरूप प्रथम से अंतिम दृश्य तक क्रमवार रूप से नहीं फिल्माई जाती। फिल्म के विभिन्न दृश्य समय की उपलब्धता, वित्त की सुसाध्यता एवं संपूर्ण फिल्म कलाकारों और कर्मीदल आदि की सुविधा के आधार पर फिल्माए जाते हैं। एक बार पूरी फिल्म को फिल्माने के पश्चात् निर्देशक या संपादक मोनटेज की तकनीक से दृश्य को क्रमवार रखता है। मोनटेज की प्रक्रिया के दौरान स्क्रीनप्ले में निर्धारित अनुक्रम को बदला भी जा सकता है। फिल्माए गए दृश्यों में से जो दृश्य पूरी फिल्म के अनुरूप महत्वपूर्ण नहीं पाए जाते, उन्हें हटा दिया जाता है। मोनटेज के अलावा क्लोज-अप और लाँग-शॉट का भी प्रयोग होता है। नजदीक से फिल्माए गए दृश्य को लाँग-शॉट कहते हैं। दृश्य को फिल्माने का कोण (ऐंगल) कैमरे की क्षमता तथा संचालन के उपकरण पर निर्भर करता है। इस तरह के संचालन उपकरणों के लिए हम डॉली शॉट और ट्रैकिंग शॉट का भी प्रयोग कर सकते हैं। कैमरे को जब डॉली (या ट्राली) पर संचालित किया जाता है तो वह डॉली शॉट कहलाता है और जब कोई दृश्य स्थिर या चलायमान अवस्था में फिल्माया जाता है तब उसे ट्रैकिंग शॉट कहते हैं। इस तरह की तकनीकों का प्रयोग करने का उद्देश्य बृहत्तर दृश्य प्रभाव उत्पन्न करना है जो

कैमरे के संचालन उपकरणों से संभव होता है। अंग्रेजी सिनेमा जगत के अल्फ्रैंड हिचकॉक और हिंदी सिनेमा जगत के विजय आनंद जैसे फिल्म-निर्माताओं ने लॉग ट्रैकिंग शॉट का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया है। नाट्य कला में ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है, क्योंकि वर्तमान समय में नाट्य कला अभिनय पर आधारित होती है। आई-लाइन शॉट फिल्म निर्माण की एक अन्य तकनीक है। यह एक काल्पनिक कोण है जो दर्शकों में स्क्रीन पर वास्तविकता को देखने का भ्रम पैदा करते हैं। दर्शक नहीं समझ पाता कि वह जिस भ्रम को वास्तविकता के रूप में महसूस कर रहा है वह उस कोण के कारण है। आजकल ये सभी तकनीकें फिल्म-निर्माण के बुनियादी सिद्धांत बन गई हैं। इनमें से अधिकतर का परिष्करण 1930 से 1940 ई. के दौरान हुआ था।

वास्तव में स्क्रीनप्ले और सिनेमा के रूप में जो कुछ उभरा है वह मंच की पटकथा से बिलकुल अलग है। इसके विपरीत यह साहित्यिक वृत्तांतों से भिन्न है। जब किसी साहित्यिक पाठ या वृत्तांत को स्क्रीनप्ले के रूप में रूपांतरित किया जाता है तो जहाँ तक फिल्म वृत्तांत के विकास की तकनीकों का प्रश्न है वह पाठ महत्वपूर्ण बदलाव अनुभव करता है। यह परिवर्तन आवश्यक है ताकि साहित्यिक माध्यम के पाठ का अर्थ सिनेमा के माध्यम द्वारा संप्रेषित किया जा सके। पाठ को स्क्रीनप्ले बनाने में कई महत्वपूर्ण बदलाव होते हैं। सर्वप्रथम पाठ का विस्तार स्क्रीनप्ले में परिवर्तित हो जाता है। इस कारण लगभग 300 पृष्ठों के उपन्यास को लगभग 120 पृष्ठों में रूपांतरित करना पड़ता है ताकि उससे लगभग दो घंटों की फिल्म बनाई जा सके। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए स्क्रीनप्ले-लेखक को उपन्यास को समझना होगा और पाठ के मुख्य मुद्दों की रूपरेखा बनानी होगी। उसके बाद स्क्रीनप्ले-लेखक को यह जोड़ना होगा कि दृश्य और संवाद के प्रभाव को बढ़ाने के लिए पटकथा के किन भागों में नेपथ्य संगीत होगा। यहाँ यह भी ध्यान में रखना उचित होगा कि 1950 और 1960 के दौरान न्यू वेव सिनेमा ने नेपथ्य संगीत का कम प्रयोग करते हुए फिल्म के प्रभावों को बढ़ाने के लिए अदृश्य कथावाचक के स्वर को लोकप्रिय बनाया गया था। इसका उद्देश्य यह था कि दर्शकों को फिल्म देखने में वास्तविकता दिखाई न दे बल्कि पर्दे पर वास्तविकता का वर्णन प्रतीत हो। इस संबंध में उन्होंने आई-लाइन शॉट से मुक्त होने का भी प्रयास किया। चूँकि पाठ के सुदीर्घ वृत्तांत को पटकथा के रूप में ढालना पड़ता था, अतः एक दृश्य में विचार को संप्रेषित करने के लिए अन्य तकनीकों को सम्मिलित करना पड़ता था। इसी कारण क्लोज-अप और लॉग-शॉट जैसी तकनीकें और डॉली जैसे उपकरण अत्यंत सुविधा की दृष्टि से प्रयुक्त हुए। नेपथ्य संगीत व वॉइस-ओवर वर्णन से इसकी पूर्ति की गई। तभी से साहित्यिक पाठ में नित्य परिस्थिति की व्याख्या फिल्म रूप में परिवर्तित हो गई है। इस प्रकार के रूपांतरणों के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं जिनमें कैमरे की भूमिका, मोनटेज, संवाद संगीत की भूमिका और सिनेमा के माध्यम के अन्य तत्व पाठ से स्क्रीन रूपांतरण में महत्वपूर्ण रूप से पाए जाते हैं। ये तत्व डेविड लीन की उत्कृष्ट फिल्मों में पाए जाते हैं। इन फिल्मों में डॉ. जीवागो बोरिसपस्तरनेक के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित 1965 की फिल्म है और ई. एम. फोस्टर के उपन्यास पर आधारित इसी नाम से 1984 की 'ए पैसेज ऑफ

इंडिया'फिल्म है। इसी प्रकार सत्यजीत रे ने विभूति भूषण के उपन्यास 'पाथेर पंचाली' (अर्थात् 'छोटी सड़क का गीत') पर आधारित 1955 में इसी नाम से फिल्म बनाई थी।

यहाँ असमिया नाटक 'सीमांतर प्रहरी'(सीमा का जवान) के अनूदित पाठ का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है कि किस प्रकार पर्दे के लिए पाठ का रूपांतरण होता है। यह नाटक सुविख्यात संगीतज्ञ और रंगमंच कलाकार विष्णु प्रसाद राभा ने लिखा है। विष्णु प्रसाद राभा ने स्वयं इस नाटक का रूपांतरण पटकथा में किया है।

नाटक के प्रारंभिक दृश्य से उद्धरण

''असम का एक सीमांत क्षेत्र। ब्रिटिश काल में यह बालीपारा सीमांत क्षेत्र था। वर्तमान में यह नेफा का एक भाग कोमेंग सीमांत क्षेत्र है। पर्वत श्रेणी की ऊँची चोटियों, उच्च शृंखला और तीव्र पर्वतीय नदी का खूबसूरत किनारा, देवदार के पेड़ों और बुरांश (रोडोडेंड्रम) की सघनता से भरा क्षेत्र हिमाच्छादित चट्टानें। यह सौंदर्य स्वर्ग जैसा प्रतीत होता है।

नीचे की छावनी लोकरा सीमा पर तैनात सैनिकों की है -

प्रातःकाल

बैरक

सभी सैनिक दैनंदिन कार्यों में व्यस्त हैं

एक आवास। यह मोहेन्द्र सूबेदार का आवास है।'' (राभा 434)

(2) नीचे हम स्वयं राभा द्वारा स्क्रीनप्ले रूप में प्रस्तुत उसी प्रारंभिक दृश्य का उदाहरण प्रस्तुत करेंगे:

लॉग-पैन शॉट : पैन : असम का एक सीमांत क्षेत्र। ब्रिटिश काल में यह बालीपारा सीमांत क्षेत्र था, वर्तमान में यह नेफा का एक भाग कामेंग सीमा है। पर्वतश्रेणी की ऊँची चोटियों, उच्छृंखल और तीव्र पर्वतीय नदी का खूबसूरत किनारा सघन बड़े देवदार की पेड़ों और रोडोडेंड्रम् के स्वर्ग जैसा प्रतीत होता है।

मिडशॉट : चोटी पर सैनिक पहरे पर तैनात है। अगला दृश्य बिग क्लोज अप : पहरे पर तैनात सैनिक पूरी वर्दी में, हाथ में बंदूक लिए विश्राम की मुद्रा में तैनात है। उनके पैरों के मध्य खाली जगह से ऊपर का नजारा पैन शॉट द्वारा दिखाया जाता। दिखता है।

लैप डिज़ाल्व : पहाड़ी दृश्य में समा जाती है।

लाँग शॉट - इनर लाइन : पर्वतीय शृंखलाएँ।

पैन : टिल्ट डाउन लाँग शॉट : परेड का मैदान और परेड करते सैनिक (सावधान की ध्वनि)।

कट :

मिड शॉट : रंगरूटों का प्रशिक्षण, सिपाहियों की परेड, बंदूक प्रशिक्षण में सैनिक।

क्लोज मिड शॉट : चौकसी संतरी गश्त लगा रहा है।

लाँग पैन शॉट : अधिकारी निवास क्षेत्र

क्लोज मिड शॉट : फूलों के बगीचे के बीच एक अधिकारी का आवास। आवास के बरामदे से एक कुत्ता भौंकता है। (भौंकने की ध्वनि)''

रूपांतरण में पाठ से पर्दे पर जो पद्धति और तकनीक प्रयुक्त होती है, सत्यजीत रे ने स्क्रीनप्ले के अनुसार प्रेमचंद की 'सद्गति'और 'शतरंज के खिलाड़ी'कहानियों का फिल्मांकन करते हुए उसीका प्रयोग किया है। इससे फिल्म में जीवंतता और रोचकता आ गई है। इसी प्रकार भीष्म साहनी के 'तमस'उपन्यास में भारत विभाजन के जो चित्र फिल्माए गए वे सजीव और मार्मिक चित्र बन पड़े हैं। फणीश्वरनाथ रेणु की 'मारे गए गुलफाम'पर बनी 'तीसरी कसम'फिल्म को संवाद, संगीत, सिनेमा शिल्प और राजकपूर के अभिनय ने उत्कृष्ट और जीवंत बना दिया है। इसके अतिरिक्त पर्दे पर जो रूपांतरण होता है वह भी पाठ से मंच रूपांतरण की भाँति अंतर-सांस्कृतिक हो सकता है। प्रसिद्ध जापानी फिल्म-निर्माता अकीरा कुरोसावा की क्लासिकल फिल्म 'कुमोनोसू-जॉ'या 'थ्रोन ऑफ ब्लड'1957 शेक्सपीयर के नाटक 'मैकबेथ'पर आधारित है, जबकि उनकी 'डॉनजोको'या 'द लोअर डेप्थस'(1957) मैक्सिम गोर्की के समान शीर्षक वाले नाटक 'लोअर डेप्थस'पर आधारित है। शेक्सपीयर का मैकबेथ 17वीं शताब्दी के सामंती यूरोप पर आधारित है। गोर्की का 'लोअर डेप्थ्स'भी 20वीं शताब्दी में रूस में व्याप्त गरीबी और सामाजिक गंदगी पर आधारित है। किंतु कुरोसावा ने दोनों फिल्मों को जापान के तोकुगावा (17वीं से 19वीं शताब्दी) के संदर्भ में फिल्माया। दूसरे शब्दों में, उसका रूपांतरण माध्यम (साहित्य से सिनेमा) और अंतर्वस्तु दोनों में हुआ। कुरोसावा ने कैसे दूसरा रूपांतरण किया? वस्तुत: कुरोसावा ने कथानक और संदेश दो प्रतिष्ठित यूरोपीय नाटकों से ग्रहण किए और उनसे अपनी जापानी फिल्में बनाई। 'थ्रोन ऑफ ब्लड' का कथानक तोकूगावाकालीन जापान से लिया गया है। अतः सेट,   वेश-भूषा, संवाद और पात्रों की नैतिकता को निर्देशित करने वाली मान्यताएँ और संगीत तोकूगावा काल पर आधारित था। फिल्म के पात्रों में समुराई नैतिकता प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। दूसरे शब्दों में, फिल्म मात्र जापानी अभिनेताओं के होने के कारण ही जापानी नहीं थी, बल्कि फिल्म का संदर्भ पूर्ण रूप से तोकूगावा काल के ऐतिहासिक वैशिष्ट्य पर आधारित था। उसी तरह 'द लोअर डेप्थस'भी रूस में अनुभूत गरीबी और गंदगी की जगह जापान के पारिस्थितिक अनुभव के आधार पर बनाई गई हे। इसके अनुरूप फिल्म के जो सेट, परिधान, संवाद, घटनास्थल और दूसरे तत्त्व अभिनेताओं के साथ

जोड़े गए हैं वे भी जापानी थे। इस प्रकार अंतिम परिणाम एक जापानी फिल्म के रूप में सामने आया। एकिरा कुरोसावा की प्रारंभिक क्लासिकल फिल्मों में 1954 की 'सेवन समुराई'फिल्म है जिसने हॉलीवुड शैली के लिए माने जाने वाले पश्चिमी सिनेमा को अत्यधिक प्रभावित किया है। इस फिल्म का प्रभाव विषयवस्तु के अतिरिक्त स्क्रीनप्ले, फिल्म-संपादन, कैमरा-संचालन या सिनेमा-शिल्प की अन्य तकनीकों आदि क्षेत्रों पर भी पड़ा। सिनेमा जगत में इस प्रकार के प्रभाव भी मात्र विषयवस्तु के रूपांतरण नहीं हैं, अपितु पूर्णतया भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में फिल्म बनाने की तकनीकों के रूपांतरण हैं।

रूपांतरण के कई आयाम भी मिलते हैं। आज समूचे विश्व में टेलीविज़न मुख्यत: बच्चों पर केंद्रित चैनल ऐनिमेटिड कार्टूनों से भरे पड़े हैं। भारत में भी पिछले दो दशकों में टेलीविजन चैनलों में ऐनिमेटेड कार्टूनों की बाढ़ सी आ गई है। यहाँ यह ध्यान दिलाना असमीचीन न होगा कि ये यूरोप और अमेरिका की कॉमिक परंपराओं से लिए गए ऐनिमेटेड कार्टून नहीं हैं, बल्कि ये भारतीय परंपराओं से लिए गए हैं। इसी तरह के कई एनिमेशन रामायण और महाभारत जैसे भारतीय महाकाव्यों, पंचतंत्र एवं अन्य भारतीय कथा-परंपराओं से लिए गए हैं।

एनिमेशन गतिमान चित्रों या तीव्र गति से चालित चित्रों का वह रूप है जो गति की दृष्टि के स्थायित्व सिद्धांत के कारण बिंबों को वास्तविक समय में कार्यव्यापार का भ्रम पैदा करता है। इसलिए दर्शकों को परदे पर चित्रों का संग्रह प्रतीत नहीं होता बल्कि चित्रों के माध्यम से निष्पादित कार्यव्यापार के रूप में प्रतीत होता है। इस रूप में वीडियो कैमरे के सिद्धांत के समान ही काम होता है। 19वीं शताब्दी में एनिमेशन की पारंपरिक तकनीक व्यवहार में लाई जाती थी, जिसमें सर्वप्रथम कार्टून या कहानी आदि पाठ के आधार पर गत्ते पर द्विआयामी (2डी) रेखाचित्र फिल्माए जाते थे। फिल्मांकन की इस तकनीक को 'स्टॉमोशन'कहा जाता था। जब फिल्माए गए चित्रों को संपादित कर एक साथ रखा जाता है, तब वे वास्तविक समय में गति का आभास कराते हैं। इस प्रकार की तकनीक की मुख्य समस्याओं में से एक यह थी कि कई बार स्क्रीन पर पात्र बहुआयामी प्रतीत नहीं होते थे, अर्थात् वे अवास्तविक लगते थे। वे बिना आवाज के निर्जीव से दिखाई पड़ते थे। दूसरी कठिनाई यह थी कि कई बार परदे पर चित्रों का संचालन निर्बाध रूप से दिखाई नहीं देता था। ऐसा इसलिए होता था क्योंकि गति का आभास स्थिर वस्तुओं पर प्रयुक्त फिल्मांकन और संपादकीय प्रक्रियाओं पर क्रियान्वित कर उत्पन्न किया जाता था। इस सीमाओं के बावजूद डिज़नी जैसी एनिमेशन संस्थाओं ने विशेष रूप से कार्टून एनिमेशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। एनिमेशन की चर्चा डिजिटल टेक्नोलॉजी के बिना बिलकुल संभव नहीं है। इसने पाठों का विशेषकर कार्टून का एनिमेशन मात्र बच्चों के लिए ही नहीं किया; बल्कि विश्वभर के सभी उम्र के दर्शकों के लिए पाठों का एनिमेशन किया। हॉलीवुड से प्रभावित स्पाइडरमैन सीरीज, द ऐक्समैन सीरीज, द ट्विलाइट सीरीज, लार्ड ऑफ द रिंग सीरीज तथा अति लोकप्रिय ब्रिटिश प्रोडक्श्न हैरी पॉटर सीरीज जैसी फिल्में इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये अत्यधिक सफल फिल्में कार्टूनों के एनिमेशन नहीं है। वस्तुत: द हैरी पॉटर सीरीज

जे.के. रॉलिंग द्वारा रचित इसी नाम के काल्पनिक उपन्यास शृंखला पर आधारित है। इनमें एनिमेशन अलौकिक यथार्थवाद प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिस पर ये फिल्में आधारित हैं। इस तरह की फिल्में डिजिटल टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में प्रगति होने और सिनेमा में इसके अनुप्रयोग के कारण संभव हो सकी हैं। इस तकनीक की लोकप्रियता इसमें भी देखी जा सकती है कि फिल्म-निर्माण में डिजिटल तकनीक के प्रयोग से 'डिस्कवरी'जैसे ज्ञान-आधारित लोकप्रिय चैनल विशेष कार्यक्रम के रूप में दिखाए जाते हैं।

अनुवाद और रूपांतरण में अंतर और संबंध

अनुवाद और रूपांतरण में संरचना और प्रकार्य की दृष्टि से कुछ-न-कुछ अंतर है। कुछ विद्वान रूपांतरण को अनुवाद की श्रेणी में रखते हैं, किंतु सभी रूपांतरण अनुवाद नहीं होते। अर्थ, शैली, संदेश, संदर्भ आदि की दृष्टि से अनुवाद स्रोतभाषा के पूरे कथ्य को अपने भीतर निष्ठापूर्वक समेटे होता है। अनुवाद में स्रोतभाषा के कथ्य में परिवर्तन करने की स्वतंत्रता नहीं होती। यह बात अलग है कि यह पाठक या श्रोता-विशेष को ध्यान में रखकर स्रोतभाषा के पाठ को लक्ष्यभाषा में ईमानदारी से संजोता है।

रूपांतरण स्रोतभाषा के पाठ के विचार या भाव को ग्रहण करता है और पूर्णतया नए ढंग से उसका पुनर्लेखन करता है। इसमें पाठ को नए ढाँचे में ढाला जाता है ताकि वह नए पाठक या श्रोता के भाषिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण के अनुकूल हो और साथ ही उसे आकृष्ट कर सके। वस्तुतः रूपांतरण साहित्यिक और साहित्येतर सामग्री के लिए अधिक होता है और अन्य माध्यम से विशेष अर्थ देकर उसे प्रस्तुत किया जाता है ताकि किसी विशेष संदेश अथवा भाव का संप्रेषण अच्छी प्रकार से हो सके।

स्रोतभाषा के पाठ का रूपांतरण कितना आवश्यक है, इस बात का निर्णय लेने से पहले प्रयोजन, प्रयोग और प्रयोक्ता को ध्यान में रखा जाता है और फिर उस पाठ का चयन किया जाता है। इसमें प्रयोक्ता की संस्कृति और समाज को भी दृष्टि में रखा जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि साहित्यिक विधाओं के रूपांतरण की विशिष्ट भूमिका होती है। साहित्यिक रचनाओं के, विशेषकर कविता के अनुवादपरक रूपांतरण अधिक होते हैं और अनुवाद कम। वास्तव में अन्य संस्कृति के पाठक के लिए वही भाव या विचार लक्ष्यभाषा में अधिकतर संभव नहीं हो पाते जो स्रोतभाषा के पाठ में निहित रहते हैं। काव्य, साहित्य आदि में जो भाव होते हैं वे अधिकांशतः व्यक्तिपरक और समाजपरक होते हैं। उनकी अपनी संस्कृति होती है, अपने परंपराएँ और विश्वास होते हैं, अपने छंद और अलंकार होते हैं। इसलिए एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति में ढालना कठिन और दुष्कर होता है।

अनुवाद में स्थानीकरण की समस्या भी उत्पन्न होती है। यदि अनुवाद में स्रोतभाषा का स्थानीकरण नहीं होता है तो रूपांतरण नहीं होगा, क्योंकि लक्ष्यभाषा में वही कथ्य और संदेश उसी प्रकार से व्यक्त होगा जो

स्रोतभाषा में अंतर्निहित है। अतः स्रोतभाषा के पाठ को लक्ष्यभाषा की संरचना, व्याकरण और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के अनुसार अनुवाद करना अनुवाद नहीं होगा, वरन् वह रूपांतरण के क्षेत्र में आ जाएगा। अनुवाद उस परिप्रेक्ष्य में किया जाए जो लक्ष्यभाषा में सहज, स्वाभाविक और उपयुक्त होने के साथ लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुकूल हो। रूपांतरण में स्रोतभाषा के पाठ का मूलभाव या मूल तत्व तो होगा ही, लेकिन वह लक्ष्यभाषा में परिवर्तित रूप में होगा और अन्य प्रकार से होगा। इस दृष्टि से रूपांतरण एक प्रकार से अनुसृजन और छायानुवाद दोनों है, जिसमें सर्जनात्मकता के साथ-साथ लक्ष्यभाषा का स्थानीकरण भी होत है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी के महान नाटककर शेक्सपियर का Merchant of Venice एक गीति नाट्य है, किंतु भारतेंदु हरिचंद्र ने 'वंशपुर का महाजन'के नाम से इसका जो हिन्दी अनुवाद किया है वह हिन्दी भाषी के लिए एक प्रकार का रूपांतरण है जिसे एक नए रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

स्रोतभाषा के पाठ का लक्ष्यभाषा में रूपांतरण दो प्रकार से होता है-(क) पाठपरक और (ख) श्रव्य-दृश्यपरक।

(क) पाठपरक रूपांतरण स्रोतभाषा के पाठ का लक्ष्यभाषा के पाठ में रूपांतरण है। इसमें रूपांतरण स्रोतभाषा के पाठ को पहले पढ़ता है। फिर उस पाठ का निर्वचन या व्याख्या वह अपनी दृष्टि से करता है ताकि वह पाठ लक्ष्यभाषा के पाठक के प्रति आत्मपरक हो सके। उसके लिए व्यक्तिपरक अनुभूति की अवधारणा की निर्मिति होती है। पाठ का बोधन होने के बाद वह कथावस्तु अथवा कथ्य के मुख्य पात्र को अपने मस्तिष्क में रूपाकार करता है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अनुवाद की अपेक्षा रूपांतरण अधिक जटिल और श्रमसाध्य है, क्योंकि इसमें सर्जनात्मकता और रोचकता लाने के लिए रूपांतरकार को कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुसार उसे थोड़ा-बहुत विचलन भी करना पड़ सकता है। वास्तव में इसमें उसे एक प्रकार का पुनर्लेखन करना पड़ता है और उसे पुनः आकार देने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, एनातोले फ्रेंस की Thais रचना के आधार पर प्रेमचंद द्वारा अनूदित 'अहंकार'रचना एक प्रकार का रूपांतरण है, अनुवाद नहीं। जार्ज इलियट का Silas Marner की हिंदी में अनूदित कृति 'सुखदास'को भी रूपांतरण की श्रेणी में रखा जा सकता है।

(ख) श्रव्य-दृश्यपरक रूपांतरण से अभिप्राय स्रोतभाषा के पाठ के लक्ष्यभाष में टेलीविजन, स्क्रीन अथवा फिल्म माध्यम के रूपांतरण से है। फिल्म या स्क्रीन में किसी कहानी या उपन्यास का रूपांतरण मूर्तिकला की तरह है जिसमें रूपांतरकार मूल कथा में परिवर्तन और संशोधन करते हुए उसमें अधिक सर्जनात्मकता लाता है। यह एक ऐसी संगतराशी है जिसमें अधिक रोचकता और आकर्षण निहित रहता है। इसकी अपनी तकनीक और प्रविधि है जिसमें कैमरे की भूमिका, संवाद-योजना, संगीत और नेपथ्य संगीत, प्रकाश-योजना, वीडियो फुटेज, फिल्म संपादन आदि उसे प्रभावकारी बना देते हैं। रोमन याकोब्सन द्वारा प्रतिपादित अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद का यह

एक रूप है जिसमें पाठ का रूपांतरण भाषिक प्रतीकों से भाषेतर प्रतीकों में होता है। इसमें पाठ पटकथा बन जाता है और जब यह पटकथा फिल्म के रूप में आती है तो यह स्क्रीनप्ले कहलाती है। इसमें कहानी या उपन्यास की कथावस्तु फिल्म में आकर्षण का केंद्र बन जाती है। इसमें फिल्म की लंबाई को भी ध्यान में रखना होता है। इसके अतिरिक्त मुख्य पात्र को पहचान देनी पड़ती है ताकि पटकथा मुख्य पात्र के आसपास घूमती रहे। इस प्रकार लिखित कृति को नए रूप में ढाला (recast) जाता है। इस प्रकार की कई फिल्मों और टी.वी.-सीरियलों को देखा जा सकता है जो लिखित पाठ की संरचना से काफी अलग जा पड़ता है। उदाहरण के लिए, A Flight of Pigeons रचना की हिन्दी फिल्म 'जुनून (1978) एक रूपांतरण ही है जिसमें 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की कथा को बड़े आकर्षक ढंग से फिल्माया गया है। इसी प्रकार The Blue Umbrella उपन्यास का हिन्दी में 'नीली छतरी'(2005) के नाम से जो फिल्मीकरण किया गया है, वह भी एक रूपांतरण है। सुज़ाना के Seven husbands उपन्यास की फिल्म 'सात खून माफ'(2011) प्रदर्शित हुई है। अंग्रेजी साहित्यकार जोसेफ रूडयार्ड क्पिलिंग की प्रसिद्ध बालकृति The Jungle Book है जिसका फिल्मों में किशोरों के लिए रूपांतरण और संक्षिप्तीकरण किया गया। इसका हिन्दी टी.वी. सीरियल 'मौगली'(1994 और 1998) के नाम से प्रदर्शित हुआ। मौगली जंगल में भेड़ियों के बीच पला-पोसा मानव शावक है जो जंगल में पशुओं के बीच अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। The White Seal नामक अंग्रेजी कहानी का सजीव रूपांतरण (1967) सोवियत संघ में किया गया था। इसमें जानवरों के शब्दों और नामों का उच्चारण रूसी ध्वनियों के अनुसार हुआ है। हम सब यह भी जानते हैं कि रामानंद सागर ने जिस 'रामायण'टी.वी. सीरियल का निर्देशन किया था वह काफी लोकप्रिय रहा है। हिन्दी का यह टी.वी. सीरियल संस्कृत भाषा में वाल्मीकी कृत 'रामायण, हिन्दी भाषा में तुलसी कृत 'रामचरित मानस', तमिल में 'कंब रामायण', बंगला में 'कृतिवास रामायण, तेलुगु में 'रंगनाथ रामायण' आदि महाकाव्यों पर आधारित है जिसके दृश्य, संवाद आदि बहुत ही व्यवस्थित, सुनियोजित, आकर्षक और रोचक हैं।

इस प्रकार रूपांतरण अनुवाद का एक महत्वपूर्ण आयाम होते हुए भी अपनी अलग सत्ता रखता है। अनूदित रूपांतरण में अनुवाद का तो योगदान होता ही है, साथ ही सर्जनात्मकता, फिल्म तकनीक के अनुकूल अपेक्षित परिवर्तन, संगीत, यथावश्यक कल्पना शक्ति, रोचकता आदि अनेक आयामों का भी महत्व रहता है। यदि हम अनुवाद को पुनर्रचना अथवा पुनर्सृजन कहे तो रूपांतरण उसका सुंदर और आकर्षक आयाम हैं। व्यापक संदर्भ में रूपांतरण को अगर अनुवाद का एक प्रकार माना जाए तो इसमें अनुसृजन, छायानुवाद, अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद आदि अन्य प्रकारों का भी योगदान रहता है।

इस प्रकार तकनीक और अंतर्वस्तु दोनों पाठ के रूपांतरण के आवश्यक घटक है। जिस माध्यम में एक पाठ का रूपांतरण किया जाता है उसकी अपनी विशिष्ट तकनीक होती है। इसलिए पाठपरक प्रस्तुति, पाठ से पाठ, पाठ से मंच, पाठ से फिल्म या टेलीविज़न आदि के रूपांतरण का संबंध रूपांतरण की विभिन्न तकनीकों पर

आधारित है। इस प्रकार अंतर्वस्तु के रूपांतरण में सामाजिक-सांस्कृतिक अंतर तो होता ही है, साथ ही लक्ष्यभाषा की संस्कृति में स्रोत पाठ के अनुरूप किए गए सामंजस्य के परिणामस्वरूप भी होता है। इसमें तकनीक भी अंतर्वस्तु-रूपांतरणों को संभव बनाने में सहायक भूमिका निभाती है। इसमें स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्य भाषा के पाठ में रूपांतरण करते हुए अनुवाद की भी भूमिका रहती है। अतः व्यापक संदर्भ में कहा जा सकता है कि रूपांतरण अनुवाद का ऐसा प्रकार है जो अनुसृजन, अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद तथा छायानुवाद को किसी-न-किसी सीमा तक अपने भीतर समेटे हुए हैं।

(लेखक भाषाविज्ञान एवं अनुवाद के विशेषज्ञ एवं सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर हैं)

राष्ट्रीय एकता एवं अनुवाद

डॉ० पूरनचंद टंडन

'एकता में बल है'- इस सूक्ति के माध्यम से यह अर्थ अभिव्यक्त होता है कि अगर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एकत्र होकर, संगठित होकर समाज के कल्याण हेतु कोई भी कार्य किया जाए तो वह निःसन्देह सफल होगा। भारत देश है विभिन्नताओं का, यहाँ भाँति-भाँति के खान-पान, वेशभूषा, जाति, भाषा, धर्म, संस्कृतियों, आचारों-विचारों आदि में समन्वय की भावना देखने को मिलती है। यह ऐसा ही है जैसे एक माला के धागे में अनेक रंग-बिरंगे मोतियों को पिरो देना। यह ऐसा ही है जैसे एक गुलदस्ते में रंग-बिरंगें पुष्पों को संजो देना। इस प्रकार भारत में 'अनेकता में एकता' के दर्शन होते हैं। यही एकता इस राष्ट्र की रीढ़ है। किसी भी राष्ट्र की एकता के अन्तर्गत 'भाषा' की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भाषा भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। भाषा के जन्म के साथ ही, 'अनुवाद' का भी जन्म होता है। अनुवाद के माध्यम से व्यक्ति अपनी संस्कृति के अलावा अन्य संस्कृतियों को भी जान सकता है। अनुवाद के माध्यम से ही वह अपनी सभी समासिक जिज्ञासाओं को शांत कर सकता है। राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में अनुवाद की भूमिका को स्पष्ट करने से पहले 'राष्ट्रीय एकता' एवं 'अनुवाद' के अर्थ, स्वरूप तथा महत्व पर भी विचार करना परम आवश्यक है।

'राष्ट्र' शब्द संस्कृत के 'राजृ' (राज्) धातु और 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से बना है, जिसका मूल अर्थ है राज्य, राष्ट्र, देश और साम्राज्य । इसी प्रकार 'राष्ट्रीय' शब्द बना है - 'राष्ट्रें भव इति राष्ट्रीयता। राष्ट्र + घञ् (रष्ट्रिय)' हिन्दी भाषा में 'राष्ट्रीय एकस्य भाव इति एकता' के रूप में हैं।[1] राष्ट्रीय एकता के अभाव में किसी भी राष्ट्र का विकास असंभव है। राष्ट्रीय एकता का मूल आधार सांस्कृतिक एकता को माना जाता है। इसके लिए मनुष्य का साम्प्रदायिक रूप से सहिष्णु होना अतिआवश्यक होता है। 'मानवमूल्य-परक शब्दावली में 'राष्ट्रीय एकता को इस प्रकार परिभाषित किया गया है - समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधना ही किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय-एकता है। आज देश में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विवशता के कारण राष्ट्रीय -एकता प्रभावित हो रही है। यह हमें नही भूलना चाहिए कि एकता जीवन है, फूट मृत्यु। एकता उन्नति है, फूट अवनति तथा एकता बल है और फूट पतन।''[2] इस प्रकार यहाँ एकता को शक्ति, उन्नति एवं जीवन का प्रतीक माना गया है। 'राष्ट्रीय-एकता' जिस देश में होती है, उसे कोई भी अन्य देश जीत नहीं सकता। इसी के माध्यम से देश के चारित्रिक बल का भी पता चलता है। 'राष्ट्रीय एकता का अर्थ एवम् महत्व जानने के पश्चात् अब अनुवाद का अर्थ एवं महत्व जानना भी आवश्यक है।

भाषा के जन्म से ही 'अनुवाद' का जन्म भी जुड़ा है और तभी से इसकी आवश्यकता भी बनी हुई है। यह आज के आधुनिक युग में न केवल प्रासंगिक है अपितु अपरिहार्य भी है। किसी भी समाज और देश का विकास

---

[1] मानवमूल्य-परक शब्दावली का विश्वकोश- संपादक डॉ. धर्मपाल मैनी, पृ 154

[2] मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोश; धर्मपाल मैनी , पृ / 1542

अनुवाद के बिना सम्भव नहीं है। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी एवं बहु सांस्कृतिक देश में अनुवाद परस्पर संवाद की सशक्त भाषा है। यदि यह कहा जाए कि प्रत्येक भारतीय चाहे वह पर्वतीय क्षेत्र में रहता हो अथवा समतल भूमि पर, नगर और शहर में रहता हो या गाँव में, विकसित राज्य का निवासी हो या अविकसित, वह जन्मजात अनुवादक होता है, तो यह गलत न होगा। अनेक जातियों, धर्मों, समुदायों, संस्कृतियों, भाषाओं और बोलियों के इस देश की भौगोलिकता ही अनुवाद की सशक्त आधारशिला रखती है। यदि हम एक-दूसरे से जुड़ना चाहते हैं, बोलना चाहते हैं, परस्पर समझना चाहते हैं, आदान-प्रदान, विचार-विनिमय करना चाहते हैं, और इनसे भी ऊपर एक-दूसरे के साथ एकता की कड़ी में पिराए जाना चाहते हैं तो हमें अनुवाद की शरण में जाना ही होता है।

भारत में बच्चा जब जन्म लेता है तो एक भाषा विरासत में उसे माँ के दूध के साथ प्राप्त होती है। 'मातृभाषा' कहलाने वाली इस भाषा को सीखने-जानने के लिए इस बच्चे को किसी विद्यालय या संस्था में नहीं जाना होता। वह इस भाषा को माँ के हाव-भावों से, आंगिक चेष्टाओं से धीरे-धीरे सीख लेता है। दूसरी भाषा वह बच्चा घर से बाहर निकलकर, पार्क में जाकर, अड़ोस-पड़ोस में जाकर या घर में आने वाले, अतिथियों से संवाद करते-करते सीख लेता है। इसे हम 'सम्पर्क भाषा' (Link Language) कहते हैं। इसके लिए शिक्षक बनता है - 'समाज'। स्कूल-कॉलेज की आवश्यकता इसके शिक्षण - अर्जन में भी - नहीं पड़ती। अतः बच्चा सोचता अपनी भाषा में है और बोलता सामने वाले को ध्यान में रखकर 'सम्पर्क भाषा' में है, जबकि सामने वाला यदि उसे ग्रहण करता है तो 'सम्पर्क भाषा' से अपनी भाषा में अंतरित करके ही ग्रहण करता है। इस प्रकार बंगला भाषी बच्चे का संवाद तमिल भाषी या अन्य किसी भाषा-भाषी से होता है तो इसमें अनुवाद की प्रक्रिया शांत भाव से कार्य करती रहती है। यही प्रक्रिया प्रत्येक भारतीय को एकता के सूत्र में बाँधती है, परस्पर जोड़ती है। हमारे त्योहार,हमारे रीतिरिवाज, हमारी वेशभूषा, आभूषण, संस्कार और आस्था-विश्वास से जुड़े अनुष्ठानों का एक-दूसरी संस्कृति में आदान-प्रदान परस्पर भागीदारी और प्रभावशीलता के मूल में 'अनुवाद' ही काम करता है। यहाँ तक की खान-पान और पकवानों का राष्ट्रीय भ्रमण भी इसी अनुवाद प्रक्रिया से उपकृत है।

यहीं नहीं, संस्कृत एवं हिंदी का समस्त नीतिकाव्य इस बात की दुहाई देता रहा है कि ''पहले तोलो, फिर बोलो''। सोच समझ कर बोलने की 'एक भाषा' है और उसे मौखिक या लिखित में अभिव्यक्त करने की 'दूसरी भाषा'। वक्ता सोचने और बोलने या लिखने के बीच की दूरी अनुवाद की प्रक्रिया से ही पूरी करता है। शब्द चयन, उनका वाक्य-विन्यास में पिरोया जाना, उचित-अनुचित का बोध इसी प्रक्रिया से सम्बद्ध होता है। इसी लिए कबीर ने कहा भी था-

कबिरा जिह्वा बावरी, कह गई सरग पाताल।

आप कही भीतर गई, जूते खात कपाल।।

अनुवाद में भी 'स्रोत भाषा' और 'लक्ष्य भाषा' के बीच अनुवादक को एक सेतु-निर्माण' करना होता है। अनुवाद वस्तुतः राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एकता, धार्मिक एकता, सांस्कृतिक एकता, वैचारिक एकता और इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों एवं अनुशासनों में एकता स्थापित करने वाला बहुआयामी, बहुदिशागामी सेतु हैं। एक ऐसा सेतु जो परस्पर जोड़ता है, आदान-प्रदान के लिए, परस्पर विनिमय के लिए प्रेरित करता है। भेद-भावों को, दूरियों को,

बाधाओं को दूर करता है। निर्बाध आवागमन एवं अभेद विनिमय का मार्ग प्रशास्त करने वाली यह विद्या एवं विद्या हर तरह से उपयोगी है, प्रासंगिक है। 'वैश्वीकरण' के इस युग में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मूलभूत भारतीय दर्शन का सार्थक विस्तार 'अनुवाद' द्वारा ही हो पा रहा है।

आज विभिन्न राज्यों की कलाएँ, कलात्मक सौन्दर्य से सुसज्जित यथार्थ, वस्तुएँ, पर्व-उत्सव, संस्कार, आस्था-विश्वास, टोने-टोटके और मान्यताएँ यदि अखिल भारतीय स्तर पर प्रसार पा रहीं हैं तो उसके भी मूल में अनुवाद ही है। अतः अनुवाद को पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक, वैचारिक, दर्शनिक एवं वैधानिक आदि दृष्टियों से हम, एकता स्थापित करने के सशक्त उपकरण एवं साधन के रूप में देखते और पाते हैं।

'अनुवाद' शब्द बना है – अनु+वाद से। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'वद्' धातु का अर्थ है - बोलना या कहना। 'वद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जुड़ने से यह भाववाचक संज्ञा बन जाता है, जिसके जुड़ने से 'वाद' शब्द का अर्थ होता है 'कहने की क्रिया' या 'कही हुई बात'। 'वाद' से पूर्व अनु उपसर्ग जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द बना है। सामान्यतः 'अनु' उपसर्ग का अर्थ 'पीछे' या 'बाद में' होता है। अतः इसका शाब्दिक अर्थ हुआ - 'किसी कही हुई बात को बाद में या फिर से कहना अर्थात् 'पुनः कहना'।

संस्कृत का यह 'अनुवाद' शब्द हिन्दी में आकर 'भाषानुवाद' कहलाने लगा। भाषानुवाद अर्थात् किसी एक भाषा में कही गई बात को बोलचाल की प्रचलित भाषा में पुनः कहना। इस प्रकार पारिभाषिक रूप में अनुवाद का अर्थ हुआ -'किसी एक भाषा की किसी उक्ति या कथन विशेष के अर्थ को अक्षुण्ण रखते हुए दूसरी भाषा में उसे यथासम्भव यथावत् प्रकट करना या मूल भाषा के शब्दों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के शब्दों में प्रकट करना।' भारतीय दर्शन, मीमांसा, उपनिषद तथा वैदिक साहित्य से 'छाया', 'भाषा', 'टीका', 'व्याख्या', 'भाषानुवाद', 'भाषांतरण, 'तरजुमा' एवम् 'उल्था' आदि अनेक शब्दों की सुदीर्घ यात्रा पूरी करता हुआ यह कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में आकर परिभाषिक शब्द 'अनुवाद' के रूप में स्वीकृत और मान्य हो गया।

हिन्दी में अनुवाद शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'Translation' शब्द के पर्याय रूप में प्रचलित है जो वस्तुतः लैटिन भाषा से आगत है। यह Trans और Lation के योग से बना है। 'Trans' का अर्थ है - 'पार' और 'Lation' लैटिन भाषा से आया है, जहाँ यह ले जाने की क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः 'Translation' का अर्थ हुआ - 'इस पार से उस पार या दूसरे पार ले जाना। अभिप्राय यह है कि एक भाषा के कथ्य को अर्थात् 'स्रोत भाषा' की वस्तु को दूसरी भाषा अर्थात् 'लक्ष्य भाषा' में ले जाना ही 'ट्रांसलेशन' कहलाता है। यहाँ भी दोनों ही शब्द जोड़ने, एकता स्थापित करने के प्रतीकार्थ को ही द्योतित करते हैं। जिस मूल भाषा में बात कही जाती है उसे 'स्रोत भाषा' और जिस भाषा में अनुवाद करना होता है, उसे 'लक्ष्य भाषा' कहा जाता है। इस प्रकार अनुवाद एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में यथासम्भव समतुल्य एवं सममूल्य पुनः सृजित करने की प्रक्रिया है। किसी भी सफल अनुवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि अनुवाद का मतलब है किसी बात को एक से दूसरी भाषा में उतारकर कहना। आवश्यक है कि वह बात दूसरी भाषा वाले के पास पहुँच जाए, बात का भाव सही-सही पहुँचे और बीच में कहीं वह अपना प्रभाव न खोए। जिस मात्रा में यह परिणाम

आता है उसी मात्रा में अनुवाद सफल कहा जाता है।'' इसलिए Translation एक प्रकार से 'स्रोत' और 'लक्ष्य' भाषा के बीच की सभी दूरियों को समाप्त कर एक पुल-निर्माण करता है जो बिना किसी रुकावट के आवगमन का मार्ग प्रशस्त करता है। अभेद-दृष्टि को विकसित करता है। तमाम अंतराल एवं खाइयों को पाट देता है।

आज के दौर में भिन्न-भिन्न भाषा समुदायों के अन्तर्गत एक-दूसरे से सम्पर्क बढ़ने के कारण अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न शब्दों के मध्य अनेक क्षेत्रों (आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि) में अनुवाद के माध्यम से आदान-प्रदान होता है। इस प्रकार से 'अनुवाद' निरंतर अपना कद ऊँचा कर रहा है। आज अनुवाद मनुष्य की विभिन्न संस्कृतियों के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु की भूमिका का निर्वाह कर रहा है। अनुवाद के माध्यम से ही आज 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो रही है। अनुवाद के महत्व के सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र 'बाईबल' के ग्यारहवें अध्याय में लिखित एक कहानी का उल्लेख करते हैं कि - ''जब सृष्टि बनी, तब सारी पृथ्वी पर एक ही भाषा और एक ही बोली थी। जब लोग पूर्व से आगे की ओर बढ़े, तब उन्हें शिनार प्रदेश में एक मैदान मिला और वे वहाँ बसने लगे। उन्होंने आपस में कहा ''आओ, हम ईंट बनाकर उन्हें पका लें।'' वे पत्थर के स्थान पर ईट और गारे के स्थान पर मिट्टी का डामर काम में लाए। फिर उन्होंने कहा '' आओ, हम अपने लिए एक नगर बसाएँ और एक ऐसी मीनार बनाए जिसकी चोटी आसमान तक पहुँच जाए। इस प्रकार हम नाम कमा लें और हमें बँटकर पृथ्वी पर इधर-उधर फैलना न पड़े।''[3].

उस नगर और मीनार को, जो मानव-पुत्र जलपलावन से बचने के लिए बना रहे थे, देखने के लिए स्वंय प्रभु उतर आए। उन्होंने कहा, ''देखो, अब तक वे एक ही जाति के हैं और उन सबकी एक ही भाषा है। यह तो उनके कार्यों का आरम्भ-मात्र है, आगे वे जो कुछ करना चाहेंगे, करते जाएँगे। इसीलिए अब हम नीचे उतरे और वहाँ उनकी भाषा में एक ऐसा संभ्रम पैदा करें जिससे वे एक-दूसरे की भाषा ही न समझ पाएँ।'' इस प्रकार प्रभु ने उन्हें वहाँ की पृथ्वी-तल पर दूर-दूर तक फैला दिया। तब शिनार वासियों ने मीनार बनाना छोड़ दिया। लोग उस मीनार को बेबेल की मीनार कहने लगे।'' 'बाईबल' के इस अंश से यह ज्ञात होता है कि उस घटना के बाद मानवता भिन्न-भिन्न राष्ट्रों, धर्मों, जातियों, भूखण्डों, समाजों आदि में विभाजित हो गई और जिसके फलस्वरूप संसार में हजारों भाषाओं की उत्पत्ति हुई और उन सभी भाषाओं में निहित अमूल्य सम्पदा के आदान-प्रदान हेतु 'अनुवाद' एक महत्वपूर्ण सेतु के रूप में सामने आया। अनुवाद को सम्पूर्ण विश्व का महानतम् एवं महत्वपूर्ण कार्य बताते हुए जे. डब्ल्यू. गेटे कहते हैं कि - ''अनुवाद की पूर्णता के सम्बन्ध में कोई चाहे कुछ भी कहे, अनुवाद विश्व के सभी कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण और महानतम कार्य है।''

अनुवाद एक गम्भीर कार्य है इसलिए आज अनुवादक को एक ऐसे ईमानदार इंजीनियर की भूमिका निभानी होगी जिसमें निष्ठा हो, समर्पण हो, जनहित, लोकहित, राष्ट्रहित्। तथा विश्वहित की सात्विक एवं पुनीत भावना हो। उसके समक्ष यह उद्देश्य सदा-सर्वदा रहना चाहिए कि राष्ट्र को विश्व के मंच पर ध्वजारोहण करते हुए युग-युगांतर तक न केवल खड़े रहना है अपितु नेतृत्व भी प्रदान करना है। यदि अनुवादक को अनुवाद के क्षेत्र में

[3] अनुवाद विज्ञान: सिद्धांत और अनुप्रयोग - संपादक डॉ. नगेन्द्र, पृ 2

सफलता प्राप्त करनी है और राष्ट्रीय स्तर पर एकता के मूल मंत्र का, राष्ट्रीय चेतना के विस्तार का बीज वपन करना है तो उसमें मुख्यतः निम्नलिखित गुणों का होना परम आवश्यक है -

(1) अनुवादक को अद्यतन एवं अधुनातन खोजों, परिवर्तनों, जानकारियों तथा उपलब्धियों का ज्ञान जुटाते रहना चाहिए। यह सतत् अध्ययनशीलता से समसामयिक जानकारियों से तथा सूचना-तंत्र के माध्यम से ही संभव हो सकता है। जागरूकता अनुवादक की सफलता का मूल मंत्र है। राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर एकता स्थापित करने में यह अत्यंत कारगर उपाय है।

(2) अनुवादक को 'स्रोत भाषा' एवं 'लक्ष्य भाषा' की प्रकृति, व्याकरणिक व्यवस्था शैली एवं अनुप्रयोगात्मकता का आधिकारिक ज्ञान होना चाहिए। इससे भाषाई एकता एवं आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त होता है।

(3) अनुवादक को धैर्यवान, लगनशील, निष्ठावान, विवेकवान तथा अथक श्रम-साधक होना चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाले भ्रमों का निवारण होता है और लक्ष्य की निश्चित प्राप्ति होती है।

(4) अनुवादक को अनुवाद के उपकरणों की, कोश-विज्ञान, कोशों के प्रकार, कोशों को देखने की कला, पारिभाषिक शब्दावली, थिसॉरस, विभिन्न शब्दावलियों की उपलब्धि, कम्प्यूटर अनुवाद की अवधारणा तथा सीमाओं और शक्तियों की अद्यतन जानकारी भी होनी चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता के लिए सभी आधुनिक उपायों की मदद ली जा सकती है।

(5) नए शब्दों के आगमन, गठन, प्रयोग-अनुप्रयोग से, भी शब्द निर्माण की प्रक्रिया तथा आवश्यकता से भी अनुवादक को अवगत होना चाहिए। तभी वह संस्कृतियों में प्रवेश कर सकता है तथा उन्हें परस्पर जोड़ ही सकता है।

(6) अनुवादक को 'स्रोत भाषा' के मुहावरों-लोकोक्तियों की, विशिष्ट प्रयोगों की, सूक्तियों, कथनों की गहन समझ बनानी चाहिए। इस प्रकार के असामान्य प्रयोग भाषा की शक्ति होते हैं। उनके मर्म को समझे बिना उसका अनुवाद दुष्कर और जोखिम-भरा होता है। अतः पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। सांस्कृतिक समन्वय एवम् समभाव की रचना इसी आधार पर संभव हो सकती है।

(7) अनुवादक को अनुवाद कार्य के माध्यम से अनुवाद-अनुशासन की तथा अनुवादक समुदाय की विश्वसनीयता को बनाए रखने का अथक प्रयास करना चाहिए। यदि यह विश्वसनीयता खंडित होती है तो राष्ट्र को इसका भारी नुकसान उठाना पड़ता है। अनुवाद एवं अनुवादक को राष्ट्र की अखंडता बनाए रखने में रचनात्मक योगदान देना होता है।

अतः कहा जा सकता है कि इन गुणों के अभाव में कोई भी अनुवादक, एक सफल अनुवादक की श्रेणी में नही आ सकता। ऐसे में अनुवाद भी राष्ट्रीय एकता के लिए सशक्त भूमिका नहीं निभा सकता।

आधुनिक युग, संचार-क्रांति तथा सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। इस संदर्भ में आज अनुवाद की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्रों में जिस प्रकार निरंतर उन्नति एवं प्रगति होती जा रही

है, सम्पूर्ण विश्व सिकुड़ता चला जा रहा है। भूमंडलीकरण की अवधारणा एवं विश्वग्राम की संकल्पना का आधार 'संचार' तथा 'अनुवाद' को माना जा रहा है। आज जिस प्रकार ज्ञान-विज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता जा रहा है वैसे ही देश-विदेश के अनेक भाषा-भाषी समुदायों का मिलाप भी सम्भव होता जा रहा है। ज्ञान-विज्ञान के विश्व-व्यापी प्रचार-प्रसार से मानव चेतना नए आयामों को छू रही है। विश्व बन्धुत्व एवं परस्परिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने के लिए 'अनुवाद' उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अनुवाद की इसी निरंतर बढ़ती प्रासंगिकता के कारण भारत सरकार को ''राष्ट्रीय अनुवाद मिशन'' का गठन करना पड़ा। उच्च शिक्षा का भारतीय भाषातरण एवं कालजयी भारतीय साहित्य का भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद देश की एकता को, समन्वय और समभावों को सशक्त बनाएगा। परस्पर दाग-द्वेष को दूर कर एक आत्मीय समझदारी विकसित करेगा।

प्राचीनकाल में अनुवाद सर्जनात्मक साहित्य तक ही सीमित था, परन्तु आज अनुवाद हमारे जीवन-व्यवहार का एवं अनिवार्य हिस्सा बनता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि अनुवाद, भाषाओं का न होकर संस्कृतियों का होता है। इस तरह अनुवाद दो संस्कृतियों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सशक्त एवं कल्याणकारी 'सेतु' बनता है। ऐसे में अनुवाद एक सांस्कृतिक सेतु का भी काम करता है। इसी लिए 'ट्रांसलेशन' केवल ट्रांसलेशन नही रहता अपितु 'ट्रांसरिलेशन' बन जाता है।

भारत में अनुवाद की बहुआयामी परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। संस्कृत केवैदिक, औपनिष्दिक तथा पौराणिक साहित्य से होती हुई यह अनुवाद परम्परा मध्यकाल तकचली आई। मध्यकाल में संतों ने संस्कृत और पालि के साहित्य, दर्शन, धर्म, नीति, वैद्यक,ज्योतिष, व्याकरण आदि के अनेक ग्रंथो का युगीन भाषा में अनुवाद कर जनजागरण किया। वहीं 19वीं शताब्दी में भारतीय प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और विशेषकर अंग्रेजी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों के भी अनुवाद हुए। भारतीय साहित्यकारों ने अंग्रेजी, संस्कृत, बंग्ला, मराठी, गुजराती, तेलगु, तमिल, मलयालम, पंजाबी, उड़िया आदि भाषाओं के साहित्य को हिन्दी में अनूदित किया। इस प्रकार समग्रतः देखें तो राजनैतिक चेतना, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा सांस्कृतिक नवजागरण में अनुवादकों तथा अनुवाद ने निश्चित ही युगांतरकारी कार्य किया है।

आज अनुवाद मनुष्य के जीवन-यापन के सन्दर्भ में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। वरिष्ठ या कनिष्ठ अनुवादक, तत्काल भाषांतरणकर्ता, हिन्दी अधिकारी, प्राध्यापक, भाषा निदेशक, उपनिदेशक, सहायक निदेशक, राजभाषा अधिकारी, समाचारवाचक, संवाददाता, संपादक, विज्ञापन लेखक, कम्प्यूटर अनुवादक, बैंक अधिकारी, आदि अनेक पदों पर अनुवादकों की नियुक्तियाँ होती या हो सकती हैं। केन्द्र सरकार या राज्य सरकार के कार्यालयों, बैकों, अस्पतालों, रेलवे, एयर लाइंस, पर्यटन, संसद, विधान सभाओं, राजदूतावासों, अकादमियों, प्रकाशन संस्थानों, सरकारी प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन, केबल, विज्ञापन एजेंसियों, शिक्षण- प्रशिक्षण संस्थानों में विज्ञापन-तकनीक तथा प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध कार्यालयों, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, भाषा सम्बन्धी निदेशालयों तथा संस्थानों, विश्वविद्यालयों, स्कूलों तथा जनसम्पर्क आदि कार्यालयों, होटलों, प्रदर्शनियों, पुस्तकालयों, खेलों, बाजार भावों, वित्त-वाणिज्य, अर्थशास्त्र में, बीमा, कोश-विज्ञान में पारिभाषिक शब्दावली बनाने वाली संस्थाओं में तथा साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में अनुवाद की उपादेयता एवं प्रासंगिकता असंदिग्ध है। आने वाले समय में अनुवाद की प्रासंगिकता निरंतर बढ़ेगी और मानव जाति के उद्धार तथा कल्याण में इसकी भूमिका और अधिक

रचनात्मक होगी। अनुवाद का चैतरफा विकास राष्ट्र की एकता को बल देगा, 'सहृदयता' के धरातल पर सभी को परस्पर जोड़ेगा।

अनुवाद की महत्ता एवं उपयोगिता इस बात से भी प्रकट होती है कि भारत सरकार ने 'अनुवाद' को बढ़ावा देने के लिए 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की स्थापना की है। यह भारत सरकार की एक पहल है जिसका उद्देश्य ज्ञान-आधारित विषयों का संविधान की अष्टम सूची में शामिल भाषाओं में अनुवाद कराना है। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की संकल्पना का विचार भारत के प्रधानमंत्री के एक 'वक्तव्य' से उदित हुआ है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि ज्ञान के विविध क्षेत्रों में जानकारी के लिए उसका अनूदित पाठ लोगों तक पहँचना आवश्यक है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता में अनुवाद अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 'राष्ट्रीय एकता मिशन' की फरवरी 2006 में दिल्ली में एक सभा के माध्यम से शुरुआत हुई, तब प्रो. उदयनारायण सिंह, निदेशक भारतीय भाषा संस्थान द्वारा कार्यक्षेत्र के मुख्य मसौदे की रूपरेखा तैयार की गई। इस संस्था के उद्देश्य है - तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण करना, अनुवाद-शिक्षण, अनुवाद एवं अनुवादकों की उपलब्धता के विषय में जानकारी देना, अनुवाद एवं अनुवादकों तक अपनी पहुँच सुनिश्चित कर उसका प्रचार प्रसार करना एवं अनुवाद कार्य को प्रोत्साहित करना और जनता तक पहुँचाना। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' के इन महत्वपूर्ण प्रयासों से ग्रामीण एवं कमज़ोर वर्ग के वे छात्र लाभान्वित होते हैं, जिनकी पहुँच मूल पाठ तक कम होती है क्योंकि वे अधिकांशतः अंग्रेजी में होते हैं। इस संस्था के द्वारा विभिन्न विषयों की जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक, व्यक्तियों को भी लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' केवल अनुवाद का ही प्रचार-प्रसार नही कर रहा है, अपितु वह राष्ट्रीय-एकता को अधिक मजबूत कर रहा है।

अनुवाद के अन्तर्गत जिन विभिन्न क्षेत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है, वे इस प्रकार है:-

(1) साहित्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(2) जनसंचार माध्यमों में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(3) वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(4) वाणिज्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(5) भाषा-श़िक्षण में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(6) सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

1. **साहित्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता:-** ज्ञान साहित्य के अनुवाद की अपेक्षा सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद अधिक जटिल एवं कठिन होता है। ज्ञान के साहित्य की माध्यम भाषा प्रायः अभिधा पर ही आश्रित रहती है। साहित्यिक अनुवाद को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। कोई इसे पुनर्रचना कहता है तो कोई इसे पुनसर्जन या अनुसर्जन। रचनाकार अपने भावों और विचारों को रचना में बद्ध करता है तो वह सृजन करता है और जब अनुवादक उसे दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करता है तो वह पुनसर्जन कहलाता है। मूल कृति के अन्तर्गत संवेदना

एवं शिल्प के स्तर पर जो विशेषताएँ होती है, अनुवादक उन्हीं विशेषताओं को अपने अनुवाद में पुनसृजित करता है। भारतीय योग दर्शन में एक विशेष प्रक्रिया - 'परकाया प्रवेश' का उल्लेख मिलता है, जिसके द्वारा योगी अन्य मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर उसके अनुभवों का स्वंय अनुभव कर सकता है। साहित्य के अनुवादक को योग समाधि के द्वारा 'परमानस प्रवेश' की साधना करनी होती है जो असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है। यही क्रिया इस सह-अनुभूति की क्रिया से जोड़ती हं। यही 'स्व' अस 'पर' के भेद से दूर ले जाती है। साहित्यिक अनुवाद को दो भागों में बाँटा गया है - पद्यानुवाद एवं गद्यानुवाद। पद्यानुवाद के अन्तर्गत अनुवादक को कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है कि लक्ष्य भाषा के अन्तर्गत अनूदित रचना में न तो फालतू शब्द हैं और न ही उसकी भाषा आडम्बरपूर्ण हो। उसमें यति, विराम, का उपयोग होना चाहिए। बिम्ब, प्रतीक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक तत्वों का अनुवाद एवं अलंकारानुवाद सटीक होना चाहिए, साथ ही उसमें लय एवं छन्द भी मूल के अनुरूप होने चाहिएँ। पद्यानुवाद के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद हुआ है जैसे सर्वप्रथम तुलसी कृत 'रामचरितमानस' का उड़िया, कन्नड़, कुमाऊँनी, गुजराती, तमिल, पंजाबी, मराठी, मलयालम, मैथिली, सिन्धी, हरियाणवी, आदि प्रान्तीय भाषाओं में सहज एवं बोधगम्य अनुवाद हुआ है। आधुनिक काल में जीवनानंद दास की कविताओं को 'स्वदेश भारती ने, विष्णु डे की कविताओं को भारत भूषण अग्रवाल ने बंग्ला में अनुवाद किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं को 'रवीन्द्र कविता कानन' के नाम से सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अनूदित किया। प्रसाद कृत 'कामायनी' का तेलगु में डॉ. पांडुरंग राव के अलावा भी वाविलात सामयाजुलु ने अनुवाद किया। इन्होंने 'कामायनी' के अतिरिक्त प्रसाद कृत 'आंसू' का भी अनुवाद किया। वर्तमान समय में हिन्दी भाषी केवल अनुवाद के माध्यम से ही शरतचन्द्र, आशापूर्णदेवी, महाश्वेता देवी, विमल मिश्र, रवीन्द्रनाथ टेगोर आदि महत्वपूर्ण साहित्यकारों को जान पाते हैं और अन्य भाषा-भाषी जयशंकर प्रसाद, महादेवी, निराला और प्रेमचंद आदि साहित्यकारों को अनुवाद के माध्यम से जान पाते हैं। गद्यानुवाद के अन्तर्गत अनुवाद छन्द, लय और ध्वन्यात्मकता के बन्धन से मुक्त होता है और साथ ही पंक्ति बंधन से भी मुक्त होता है। वह मूल भाव को अधिक पंक्तियों में भी स्पष्ट कर सकता है। गद्यानुवाद की कुछ प्रसिद्ध अनूदित रचनाएँ हैं जैसे सियारामशरण गुप्त कृत 'नारी' को सुधाकांत राय ने, अमृतलाल नागर कृत 'बूँद और समुद्र' को 'बिंदुओ सिंधु' नाम से अर्चना कुमार ने, प्रेमचन्द रचित 'गोदान' और 'निर्मला' का अनुवाद चित्रा देवी ने बंग्ला भाषा में किया। तेलुगु में आचार्य राव ने अमृतलाल नागर के उपन्यास 'अमृत और विष' का 'अमृतम्-विषम्' नाम से अनुवाद किया। हिन्दी उपन्यासकार जैनेन्द्र के उपन्यासों जैसे सुनीता, कल्याणी, सुखदा, त्यागपत्र, एवं जयवर्धन का अनुवाद पुराणम् कुमार राघव शास्त्री ने इन्हीं नामों से किया। इसी क्रम में प्रेमचन्द रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा आदि के भी उपन्यास तेलुगु भाषा में अनूदित हुए। उपर्युक्त पद्यानुवाद एवं गद्यानुवाद के कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद ने हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच एक सेतु के रूप में कार्य किया एवं कर रहा है। अनुवाद वर्तमान दौर में एक सशक्त एवं प्रभावकारी विधा के रूप में सामने आया है। वेशभूषा, खान-पान, विश्वास-अंधविश्वास, टोने-टोटके, रीति-रिवाज, दार्शनिक चिंतन, भक्ति, परम्परा, तथा साहित्यिक मान्यताओं आदि की दिशा में कृतियों के अनुवाद ने 'एकत्व' स्थापित किया है।

2. **जनसंचार माध्यमों में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता:-** अनुवाद के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है - जनसंचार माध्यमों में अनुवाद। आज की दौड़-भाग भरी ज़िन्दगी में जनसंचार माध्यमों में अनुवाद की माँग बढ़ी है। संचार

शब्द अंग्रेजी के कम्यूनिकेशन, शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ है सूचना देना, संदेश देना एवं सम्प्रेषण संचार के पहले 'जन' शब्द जुड़ने से 'जनसंचार' शब्द बना है। इसका अर्थ है जनता तक संदेश या सूचना पहुँचाना। जनसंचार के माध्यमों को दो भागों में विभाजित कर सकते है - प्रिन्ट माध्यम एवं इलेक्ट्रोनिक माध्यम।

प्रिन्ट मीडिया के अन्तर्गत समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पोस्टर, पम्फलेट, बैनर, वॉल-राइटिंग आदि आते हैं। इलैक्ट्रानिक माध्यम के अन्तर्गत रेडियो, टी.वी., फिल्में, कम्प्यूटर, इन्टरनेट मोबाइल, वॉकी-टाकी, पेज़र, फैक्स, टेलीप्रिंटर आदि आते हैं।

'प्रिन्ट माध्यम' के अन्तर्गत 'समाचार पत्र' एक सशक्त माध्यम है । इसनें समाज में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई है। 1820 में जुगल किशोर के सम्पादन में हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में 'समाचार-पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण थी। वर्तमान समय में हर प्रदेश में अनेकों प्रादेशिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिनमें राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक विषयों से सम्बद्ध सूचनाओं एवं जानकारियों का अनुवाद हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं में होता है। आज लगभग 55 हजार से अधिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है। इस प्रकार समाचार पत्र-पत्रिकाएँ अनुवाद के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में आगे बढ़ रही हैं। कुछ समाचार पत्रों के नाम हैं - बंग्ला के 'आजकाल', 'वर्तमान' आदि। गुजराती के 'गुजराती समाचार', 'दिव्य भास्कर', कन्नड़ के 'जनतावासी', 'प्रभा', 'उषाकिरण' आदि। मराठी के 'कैसरी', 'देशदूत', 'महाराष्ट्र टाइम्स' आदि। समाचार पत्रों के पश्चात् 'पुस्तकें' ज्ञान-विज्ञान का ऐसा खज़ाना हैं जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। हिन्दी एवं अन्य भाषाओं में अनूदित पुस्तकें राष्ट्र के वैचारिक परिदृश्य के निर्माण में सहायक होती हैं। इसी प्रकार अनूदित, इश्तिहार भी सूचना का प्रसार करने एवं राष्ट्रीय एकता को कायम करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

'इलैक्ट्रानिक माध्यम' 'रेडियो' का आविष्कार सर्वप्रथम 1895 में इटली के मार्कोनी ने किया। रेडियो का भारत में आगमन सन् 1923 में हो गया था। आज़ादी के पश्चात् रेडियो सरकार के अधीन आया। वर्तमान समय में रेडियो के 200 से भी अधिक प्रसारण केन्द्र हैं, जिनके द्वारा देश की 98.8 प्रतिशत जनता इस प्रसारण सीमा में आती है। आज भारत की अनेक स्थानीय बोलियों और भाषाओं में रेडियो का प्रसारण होता है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि रेडियो सम्पूर्ण देश की जनता को एकता के सूत्र में बांधे रखता है। टी.वी. का पहला उपकरण 1925 में बेचर्ड ने बनाया। भारत में दूरदर्शन की शुरुवात 15 सितम्बर 1959 में यूनेस्को की सहायता से हुई। आज के दौर में केबल के आने से भारत में चैनलों की भरमार हो गई है। किन्तु आज प्रादेशिक भाषाओं के चैनलों के आने से स्थानीय जनता की रुचि टीवी. में बढ़ी है। आज प्रत्येक घर में टी.वी. सुलभता से उपलब्ध है, इसके माध्यम ये वे सूचनाएँ प्राप्त करते हैं और अपना मनोरंजन भी करते हैं। टी.वी. पर आने वाले कार्यक्रमों में भी राष्ट्रीय एकता की झलक मिलती है। बंग्ला-हिन्दी अनूदित धारावाहिकों में श्रीकांत, चरित्रहीन, मुजरिम, हाजिर, राजदेवता, प्रतिश्रुति आदि उल्लेखनीय है। इसी प्रकार मालगुडी डेज, भारत एक खोज, टीपू सुल्तान, रामायण, महाभारत आदि ऐसे धारावाहिक हैं जिसका अनेक प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद हुआ। टी.वी. में राष्ट्रीय एकता का उदाहरण हमें आजकल प्रसारित हो रहे कार्यक्रम 'कौन बनेगा करोड़पति' में भी मिलता है। हिन्दी में बना यह

धारावाहिक अब भोजपुरी में और बंग्ला में भी प्रसारित हो रहा है। भोजपुरी में शत्रुघ्न सिन्हा और बंग्ला मे सौरभ गांगुली इसके 'होस्ट' हैं। टी.वी. के अतिरिक्त कम्प्यूटर एवं इंटरनेट भी राष्ट्रीय एकता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आज कम्प्यूटर भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध है। जैसे मराठी, असमिया, बंग्ला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, मलयालय, पंजाबी आदि। वर्तमान समय में कम्प्यूटर के माध्यम से 'अनुवादकार्य' भी प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है, किन्तु यह सौ फीसदी सही नही है। कम्प्यूटर सिर्फ शब्दानुवाद करता है, सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों को सुरक्षित रखने में यह अनुवाद अभी सक्षम नही है। भविष्य में ऐसा हो सकता है कि कम्प्यूटर 'अनुवाद कार्य' में दक्ष हो जाए। आज इंटरनेट 'वैसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को सार्थक सिद्ध कर रहा है। इसके माध्यम से व्यक्ति कहीं भी कोई भी सूचना मिनटों में पा लेता है। और वह भी अपनी-अपनी भाषा में। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनसंचार के सभी माध्यमों में अनुवाद राष्ट्रीय एकता को मज़बूत कर रहा है। समाचारों में, विज्ञापनों में, लेखों और अग्रलेखों में, सम्पादकीय में, फीचरों में और इस प्रकार साक्षात्कार आदि में भी हम इसी अखिल भारतीय एकता को देख सकते हैं।

3. वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता:- मनुष्य के जीवन में जैसे-जैसे विज्ञान का महत्व बढ़ा है, वैसे-वैसे विज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता भी बढ़ी है। विज्ञान की भाषा को 'सार्वभौमिक भाषा' कहा जाता है क्योंकि वैज्ञानिक सूचनाओं का आधार तथ्य एवं प्रमाण होते हैं। विज्ञान के अन्तर्गत अनेक विषय होते हैं जैसे - भौतिकी, रसायनिक, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, भू-विज्ञान, अभियांत्रिकी, आयुर्विज्ञान आदि। भारत में वैज्ञानिक अनुवाद के स्तर दो है - भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी से अनुवाद और विभिन्न विदेशी भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद। आज भारत में विज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन और अनुसंधान की मूल भाषा अंग्रेजी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्नातकोत्तर विज्ञान-शिक्षा की भाषा अंग्रेजी ही है। केवल स्कूली शिक्षा एवं स्नातक स्तरीय शिक्षा भारतीय भाषाओं में है। प्रशासनिक प्रोत्साहन न मिलने के बावजूद हिन्दी में प्रौविज्ञान में बहुत लिखा गया है। 1998 तक केवल 13 भारतीय भाषाओं में प्रौविज्ञान विषयक लगभग 25,000 पुस्तकें एवं हिन्दी में 2000 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थी, और 1998 के बाद इस प्रकाशन संख्या में वृद्धि हुई है।[4] वैज्ञानिक और तकनीकी ग्रंथ के अनुवाद के क्षेत्र में पंत नगर कृषि वि.वि. का पाठ्यपुस्तक वाला प्रयोग भी स्वीकार करने योग्य है। जैसा कि सभी जानते हैं कि, उस कृषि विश्वविद्यालय में कृषि एवं पशु-पालन से सम्बंधित उपाधिस्तरीय पाठ्यक्रम हिन्दी माध्यम से चलता है। इसके लिए उन्हें हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनी पड़ी हैं। अब भी ये तैयार की जा रही है ।[5]. आज का युग विज्ञान एवं तकनीक का युग है, विज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति हो रही है। विज्ञान की स्थापनाओं एवं निष्कर्षों को अँग्रेजी एवं अन्य विश्व की भाषाओं में अनूदित किया जा रहा है, किन्तु हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अभाव ही है। आज उन वैज्ञानिकों एवं प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञों की आवश्यकता है जो अपना भाषण भारतीय भाषाओं में दे। सम्पूर्ण राष्ट्र की उन्नति एवं एकता के लिए वैज्ञानिक विषयों का हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद होना आवश्यक है, जिसके लिए प्रशासन को प्रयास करने होंगे। इससे भी राष्ट्रीय एकता और सशक्त हो सकेगी।

---

[4] स्मारिका-सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलल, विश्वमोहन तिवारी, पृ 145

[5] 'अनुवाद' त्रैमासिक का 'अनुवाद-शतक' विशेषांक, संख्या 102-103, - डॉ. पूरनचंद टंडन, पृ 61

4. वाणिज्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता:- कोई भी देश यदि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है, तो उसे शक्तिशाली देश माना जाता है। आज 21वी. सदी में बाजा़रवाद, औद्योगिकरण, लघु-कुटीर उद्योगों के विकास से वाणिज्य और व्यापार की भाषा का भी संवर्द्धन हुआ है। वाणिज्य और व्यापार की भाषा के संवर्धन के साथ-साथ वर्तमान समय में अनुवाद की मांग और महत्ता दोनों ही बड़ी हैं। वाणिज्यिक साहित्य के अन्तर्गत वाणिज्य, व्यापार, बैंक, बीमा, विज्ञापन, लेखा, क्रय-विक्रय आदि आते हैं। इन सबकी शब्दावली की संरचना करते समय अनुवादक का लक्ष्य भाषा में अधिकार होने के साथ-साथ विषय का विशेषज्ञ होना भी आवश्यक है। वाणिज्यिक साहित्य की भाषा प्रायः तकनीकी, अर्धतकनीकी होती है। बाज़ार तीन प्रकार के माने गए हैं – वस्तु बाज़ार, स्कंध बाज़ार और मुद्रा बाज़ार। इन सभी बाज़ारों की सूचनाओं के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद से देश के राज्यों के विभिन्न भाषा-भाषी लोग लाभान्वित होंगे, एक-दूसरे राज्यों से व्यापारिक सहयोग मज़बूत होगा और राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा। वाणिज्यिक साहित्य के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है - 'बैंक'। आज बैंकों में हिन्दी के साथ-साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति रुचि एवं सम्मान के माहौल को सदैव बरकरार रखने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं। ग्राहक की भाषा में अगर बैंक का कार्य किया जाए तो कहीं अधिक प्रगति की जा सकती है। विभिन्न राज्यों में ग्रामीण इलाकों में तथा अंचलों में बैंकिग व्यवहार से सम्बद्ध समस्त सामग्री (पत्र, परिपत्र, चैक-बुक, प्रचार सामग्री, पास बुक आदि।) का संबद्ध क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाना राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में सार्थक सिद्ध होगा। वाणिज्यिक अनुवाद की उपादेयता एवं महत्व के संदर्भ में डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी का कथन है - विज्ञप्तियों, अनुदेशों, पत्रों, देयकों, विपणन के माध्यमों, यातायात के संसाधनों, व्यापार की गतिविधियों आदि में अनुवाद की उपादेयता से भला कौन इंकार कर सकता है? निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से लेकर दैनिक बाज़ार तक एवं शेयर बाज़ार से लेकर तमाम वित्तीय संस्थाओं तक जिस व्यावसायिक भाषा का विस्तार है, उसकी सम्यक प्रयुक्ति में अनुवाद की अप्रतिम भूमिका रहती है।[6]. इस प्रकार कहा जा सकता है कि वाणिज्यिक साहित्य के अनुवाद के माध्यम से विभिन्न ग्रामों एवं राज्यों के स्तर पर सम्बन्ध स्थापित होता है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता भी मज़बूत होती है।

4. भाषा शिक्षण में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता:- वास्तव में भाषा-शिक्षण का सदैव कोई न कोई महत्वपूर्ण प्रयोजन अवश्य होता है। भाषा शिक्षण, शिक्षार्थी-सापेक्ष होता है। वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य के लिए यह आवश्यक हो गया है कि अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त कम से कम एक अन्य भाषा का ज्ञान हो। भाषा-शिक्षण के लिए 'प्रत्यक्ष विधि' को सर्वक्षेष्ठ माना गया है। कृष्ण कुमार गोस्वामी इस विधि को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - ''प्रत्यक्ष विधि सर्वाधिक श्रेष्ठ मानी गई है। इसमें मातृभाषा को मध्यस्थ बनाए बिना शिक्षार्थी को अन्य भाषा सिखाई जाती है। इसमें मातृभाषा की सहायता नही ली जाती और शिक्षार्थी सीखी जाने वाली भाषा के सीधे सम्पर्क में आकर मौखिक अभ्यास के द्वारा भाषा सीखता है। शिक्षार्थी को ड्रिल के द्वारा लक्ष्य भाषा की संरचनाओं का अभ्यास कराया जाता है। वास्तव में वाक्यों को बार-बार सुनना, उनका अभ्यास करना और उन्हें आदत के रूप में ढाल लेना प्रत्यक्ष विधि है।''[7]. इस प्रकार भाषा का शिक्षण कर व्यक्ति अनुवाद के माध्यम से

---

[1] अनुवाद - विज्ञान: संपादक - डॉ. बलेन्दु शेखर तिवारी: पृ. 24-25

[7] अनुवाद विज्ञान की भूमिका - कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ 396

अपनी सभी जिज्ञासाओं को शांत करता है। अन्य भाषा को कोई व्यक्ति 'सम्पर्क भाषा' के रूप में सीखता है तो कोई अपनी 'रुचि' के लिए सीखता है, कोई जीवन में आर्थिक सम्पन्नता अर्थात 'व्यवसाय' के लिए सीखता है तो कोई दूसरी भाषा में रचित 'साहित्य' को जानने के लिए, तो कोई 'तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन' के लिए सीखता है, तो कोई ज्ञान-विज्ञान की नई-नई जानकारियों, को जानने के लिए भाषा को सीखता है। भाषा-शिक्षण के पश्चात् व्यक्ति अनुवाद कार्य मे प्रवृत्त होता है। आज ज्ञान-विज्ञान की हज़ारो पुस्तकों को हम केवल अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ पाते हैं। उसी के माध्यम से हम देश, संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान से जुड़ते हैं। भाषाई संस्कार का विकास भी इसी से संभव हो पाता है।

यदि किसी राष्ट्र में एक भाषी व्यवस्था है तो केन्द्र से लेकर छोटी इकाई तक केवल एक ही भाषा का प्रयोग शिक्षा, व्यापार, राजनीति, जनसंचार, प्रशासन आदि में होगा और वहाँ प्रांतीय भाषा का कोई महत्व नहीं होगा। इसके विपरीत जहाँ किसी राष्ट्र में बहुभाषी व्यवस्था है तो वहाँ सरकार अनेक स्तरों पर अनेक भाषाओं की व्यवस्था करती है। भारत बहुभाषी देश है। भारत के संविधान में 22 भाषाओं को सम्मिलित किया गया है। 'अनुवाद' के पठन के द्वारा ही व्यक्ति राष्ट्र की भाषाओं में निहित अमूल्य जानकारियों से अवगत हो पाता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा-शिक्षण में अनुवाद राष्ट्र की एकता का भी परिचायक है। डॉ. नारायणदत्त पालिवाल अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी का प्रयोग' में विभिन्न भाषाओं में निहित एकता के सन्दर्भ में कहते हैं ---'' हमारे देश में कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैण्ड तक अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ, बोलियाँ तथा उपबोलियाँ बोली जाती हैं। इन भाषओं एवं बोलियों में विभिन्नता के होते हुए भी एकता के दर्शन होते हैं। प्राचीनकाल से ही भावनात्मक एकता के संदेश के साथ-साथ भारतीय साहित्य में देश की सांस्कृतिक गरिमा, यहाँ की सभ्यता, यहाँ के आदर्श और जीवन के शाश्वत मूल्यों को समान रूप से वाणी मिली है। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाएँ भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस धरती पर सांस्कृतिक एकता की पावनगंगा प्रवाहित करती हैं।''

5. समाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकताः- 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति के मूल में है - संस्कार और भूमि, जलवायु के अनुकूल आचार-विचार, कार्यकलाप,जीवनशैली और जीवन दर्शन से गृहीत प्रभाव। यही घटक समन्वित रूप से एक देश की संस्कृति को दूसरी देश की संस्कृति से अलग पहचान प्रदान करते हैं।[8]. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति के विषय में कहते हैं कि -'' आर्थिक व्यवस्था, संघटन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य-बोध को तीव्रतर करने की योजना में सभ्यता के चार स्तम्भ हैं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती हैं।[9]. सामाजिक-सांस्कृतिक विषयों से तात्पर्य उन विषयों से है, जिनका सम्बन्ध मानविकी से है। इतिहास, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, धमर्, नीति, दर्शन आदि ऐसे ही विषय हैं। भारत जैसे बहुभाषी, बहुजातीय, देश में अनेक संस्कृतियों, धर्मों एवं आचारों-विचारों का समन्वित रूप मिलता है। जिस प्रकार गहन, गम्भीर विशाल सागर अनेक नदियों के जल को साथ लेकर चलता है, उसी प्रकार एक देश की संस्कृति में अनेक प्रादेशिक संस्कृतियों का मिश्रण होता है। हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद के माध्यम से

---

[8] अनुवाद पत्रिका - अंक 133, 134, पृ 13

[9] . अशोक के फूल – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ 81

व्यक्ति विभिन्न संस्कृतियों के बारे में जानता है। भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं, और यह राष्ट्रीय एकता का ही परिचायक भी है। सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद इस प्रकार हैं - अज्ञेय द्वारा अनूदित रवीन्द्रनाथ, रोम्यां रोलां। प्रेमचन्द द्वारा अनूदित टालस्टाय, शेख सादी, नागार्जुन-मेघदूत, माखनलाल चतुर्वेदी-'कृष्णार्जुन युद्ध, महादेवी - ऋग्वेद, कालिदास के अंश आदि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों का प्रसार होता है और सामाजिक सद्भावना को बल मिलता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में 'अनुवाद' अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'एकता' ही वह तत्व है, जिसके माध्यम से कोई भी राष्ट्र उन्नति के चरम शिखर तक पहुँचता है। आज अनुवाद एक स्वतंत्र विधा एवं जीवनोपयोगी विद्या के रूप में सामने आया है। अनुवाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाहित है। अनुवाद की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट हो जाती हैं कि सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य 'अनुवाद-कार्य' को बढ़ावा देना है। अनुवाद के माध्यम से ही भारतीय संदर्भ में वसुधैव कुटुम्बकम्, की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो रही है। 'साहित्यिक अनुवाद' के माध्यम से मनुष्य किसी भी प्रादेशिक भाषा के साहित्य से परिचय प्राप्त करता है, तो 'संचार माध्यमों में अनुवाद' के माध्यम से वह समस्त राष्ट्रीय, आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, सूचनाएँ प्राप्त करता है और अपना मनोरंजन भी करता है। 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति देश में हो रही वैज्ञानिक गतिविधियों से रूबरु होता है। 'वाणिज्यिक अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति सभी राज्यों में हो रही व्यापारिक हलचलों की जानकारी प्राप्त करता है और राज्यों में व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित होते हैं। 'भाषा-शिक्षण में अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति अपने अनेक प्रादेशिक भाषाओं में निहित ज्ञान से लाभान्वित होता है और 'सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद' से व्यक्ति विभिन्न प्रादेषिक समाजों एवं संस्कृतियों की जानकारी प्राप्त करता है। यह सब देश की राष्ट्रीय एकता का ही परिचायक है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि 'अनुवाद' देश को राष्ट्रीय एकता के सूत्रों में बांधता है।

राष्ट्रीय एकता की इच्छा, और राष्ट्र की उन्नति की कामना, राष्ट्रभाषा प्रेम को विकसित करने से ही होती है, तभी तो भारतेन्दु हरिश्चंद्र को कहना पड़ा था -

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ।।

किन्तु ''निजभाषा'' की उन्नति में अनुवाद की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आज भाषा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पर जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने जो लगभग नौ लाख पारीभाषिक शब्द हिंदी में बनाए हैं, वह सब विदेशी भाषाओं के अवधारणात्मक शब्दों के समतुल्य हिंदी शब्द हैं जो अंग्रेजी भाषा से हिंदी में गढ़े गए हैं। ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार तथा प्रयोग-अनुप्रयोग के लिए इन शब्दों का राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता और एकता की दृष्टि से उल्लेखनीय महत्त्व है। अतः अनुवाद हमें हमारी राष्ट्रभाषाओं के प्रति प्रेम और दायित्व निर्वाह की प्रेरणा भी देता है।

अनुवाद वास्तव में आज के भारत की अनिवार्य जरूरत बन गया हैं। सिनेमा इसका सशक्त प्रमाण हैं जो डबिंग, टाइटलिंग, अनूदित रूप आदि के कारण पूरे देश को तो जोड़ ही रहा है, विदेशों में, बैठे स्वदेशियों और प्रवासी भारतीयों को भी एक सूत्र में बांध रहा है। मामला बाज़ारवाद का हो या चिकित्सा जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का, योग का हो या हास्य का, व्यंग्य का हो या धर्म और साधना का, सभी में अनुवाद ने पूरे देश को जाड़ेने-बांधने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। धारावाहिकों के माध्यम से भारतीय भाषाओं की अनूदित कालजयी रचनाओं का संदर्भ हो या अखिल भारतीय स्तर पर प्रसारित-प्रदर्शित होने वाले वो समाचार हों जिनका स्रोत अंग्रेजी है और विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनका अनुवाद युद्ध स्तर पर नियमित रूप से प्रेस-एजेंसियों में या प्राइवेट स्तर पर किया जाता है। विज्ञप्तियाँ हों या सरकारी-गैर सरकारी विज्ञापन, सूचनाएँ हों या मार्गदर्शन करने वाले निर्देश, प्रचार-प्रसार सामग्री हो या नीति-निर्धारक सिद्धान्त, पर्यटन हो या गृह-सज्जा, खान-पान हो या वेशभूषा-आभूषण आदि, सभी में परस्पर प्रभावात्मकता पैदा करने तथा आदान-प्रदान करने का कार्य अनुवाद के माध्यम से ही हो रहा है। खेलों की दुनिया हो या आँखों देखा हाल, सीधे प्रसारण हो या समय-समय पर जारी किए जाने वाले सरकारी निर्देश, जनहित का मामला हो या राष्ट्रहित का, सभी में अनुवाद और अनुवादक की भूमिका निरंतर महत्त्वपूर्ण हो रही है।

आज हम पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य और साहित्यकारों को जानते हैं तो केवल अनुवाद के कारण। आज हम भारतीय भाषाओं में उपलब्ध नाट्य साहित्य, कथा साहित्य, धार्मिक साहित्य, नीति साहित्य, विज्ञान साहित्य को जानते-पढ़ते हैं तो अनुवाद के कारण। अनुवाद हमें भारतीयता में उतारता है, लगातार डूबने और उसे आत्मसात करने की प्रेरणा देता है। अहंकार-मुक्ति और आत्म-विस्तार का सन्मार्ग भी प्रशस्त करता है।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर और भारतीय अनुवाद परिषद के निदेशक हैं।)

अनुवाद में पत्रकारिता प्रबंधन की भूमिका

डॉ. राम गोपाल सिंह

पत्रकारिता प्रबंधन का स्वरूप : समाचार पत्र एवं पत्रिका प्रबंधन चूँकि एक व्यवसाय के अंग हैं तथा इस व्यवसाय में सारी पूँजी निजी क्षेत्र की लगी हुई है। निजी क्षेत्र की पूँजी घाटे का सौदा करना नहीं जानती अत: पत्रकारिता प्रबंधन नामक संकल्पना मुनाफा कमाने तथा पत्रकारिता को समुचित प्रणाली का रूप देने के लिए विकसित हुई है। पत्रकारिता प्रबंधन क्षमता के अभाव में अनेकानेक समाचार पत्र-पत्रिकाएँ काल के गाल में समाते रहे। अत: प्रबंधन के पास योजनाएँ होती हैं तथा योजनाओं के कार्यान्वयन से पूँजी जुटती है तथा किसी भी उद्योग के लिए पूँजी या उसकी अर्थव्यवस्था ऑक्सीजन का कार्य करती है। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन चूँकि सरकारी माध्यम हैं अत: उनकी व्यवस्था को यहाँ नहीं लिया जा रहा है।

पत्रकारिता प्रबंधन में प्रशासनिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, संपादकीय व्यवस्था, तकनीकी व्यवस्था, कंपोजिंग व्यवस्था, मुद्रण व्यवस्था, बिक्री एवं वितरण व्यवस्था एवं परिवहन व्यवस्था आदि का समावेश होता है।

आर्थिक व्यवस्था: आर्थिक व्यवस्था किसी भी व्यवस्था के मूल में निहित होती है। बजट और उस बजट हेतु अर्थ जुटाकर कार्यरूप देना आवश्यक होता है। प्रेस प्रबंधन में पहले यह आर्थिक पक्ष बड़े नामी अखबारों को भी बंद करा देता था लेकिन जब से विज्ञापन का जमाना आया है, समाचारपत्रों- पत्रिकाओं आदि की मोटी आय का स्रोत मात्र विज्ञापन हो गया है। यदि बिक्री आदि से समाचार पत्र आदि को कुछ नहीं भी मिले तथा बिक्री से मात्र सर्कुलेशन का पलीता भी लगता रहे तो भी विज्ञापन से हो रही तगड़ी आय से पत्रकारिता का व्यवसाय दिन दूना रात चौगुना प्रगति करता रहेगा।

पत्रकारिता से जुड़े क्षेत्रों के पास अलग से विज्ञापन विभाग होते हैं जो विज्ञापन हेतु प्रयत्न करते हैं तथा प्रत्येक क्षेत्र में पहुँच बनाकर, चाहे वह क्षेत्र गैर सरकारी हो या सरकारी या फिर निजी या फिर बनिए की दुकान, विज्ञापन प्राप्त करने के लिए संपर्करत रहते हैं। काफी सारे विज्ञापन स्वयं विज्ञापन विभाग तक आते हैं। सरकारी विज्ञापन समाचार पत्रों को मिलते ही हैं।

संपादकीय व्यवस्था : संपादकीय व्यवस्था में प्रधान संपादक से लेकर संवाददाता या पार्टटाइम संवाददाता तक के लोग कार्यरत होते हैं तथा ये वेतनभोगी लोग होते हैं। ये पत्रकारिता के हदय होते हैं तथा समस्त समाचारों आदि को ये ही शक्ल देते हैं तथा समाचार पत्र आदि की लोकप्रियता का सारा का सारा दारोमदार इन्हीं लोगों पर रहता है।

प्रशासनिक व्यवस्था : समाचार पत्र, पत्रिकाओं में कार्यरत लोगों की नियुक्ति से लेकर उन्हें छुट्टी देने, वेतन का भुगतान करने तथा अन्य समस्त सुविधाएँ उपलब्ध करने का काम प्रशासनिक विभाग का होता है। किसी भी व्यवसाय के लिए इस विभाग का अत्यंत महत्व होता है। कागज आदि की व्यवस्था भी यह विभाग करता है।

तकनीकी व्यवस्था : तकनीकी विभाग तकनीकी मुद्दों की व्यवस्था करता है; जैसे : छपाई हेतु मशानों की खरीद से संबंधित निर्णय, मशीनों के रखरखाव तथा उनकी मरम्मत आदि, विद्युत एवं इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों का रखरखाव, ए.सी. कूलर, आदि का रखरखाव कार्य आदि इस विभाग से जुड़े लोगों के जिम्मे होता है।

कम्पोजिंग व्यवस्था : आजकल पत्रकारिता में कंपोजिंग कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से होता है तथा यह कार्य कम्प्यूटर से बड़े ही सुविधापूर्वक ढंग से किया जाता है। मैटर टाइप होना, प्रूफ रीडिंग होना, पेज मेकिंग, ले आउट के बाद मास्टर कॉपी निकलना तथा छपने के लिए तैयार प्रति का अवलोकन करने के बाद उसे मुद्रण विभाग में छपने हेतु भेजना कंपोजिंग व्यवस्था के अंतर्गत आता है। चित्रों को स्कैनर के माध्यम से स्कैन करना भी इसी विभाग का कार्य है।

मुद्रण व्यवस्था : आजकल समाचार पत्रों आदि के पास अद्यतन मुद्रण व्यवस्था है।अद्यतन प्रिंटिंग मशीनों की सहायता से आकर्षक मुद्रण होता है; साथ ही, मशीन से छपने तक की प्रकिया के साथ-साथ फोल्डिंग, थप्पी बनाना आदि कार्य भी सम्पन्न हो जाते हैं।

बिक्री एवं वितरण व्यवस्था : समाचार पत्रों की बिक्री एवं वितरण व्यवस्था का भी अपना एक जाल होता है। चूँकि समाचार पत्र लोगों के घरों पर दस्तक देता है अत : उसके बहुत बड़ी संख्या में नियमित ग्राहक होते हैं जिन्हें उनके घर पर समाचार पत्र की प्रति हॉकर पहुँचाते हैं तथा ये हॉकर उनसे महीने की समाप्ति के पश्चात पैसा लेते हैं। हॉकर बड़े हॉकरों से समाचार पत्र की प्रतियाँ प्राप्त करते हैं तथा बड़े हॉकर एजेंटों से प्राप्त करते हैं। किसी भी शहर में कोई भी समाचार पत्र का प्रेस शहर के चार भागों- पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के चार मुख्य एजेंट नियुक्त करता है तथा उस शहर में ये एजेंट उस समाचार की प्रतियाँ, प्रिंटिंग प्रेस से लेकर मुख्य सड़कों/ स्थलों तक पहुँचाते हैं तथा वहाँ से आगे क्रमश: वितरण होते-होते समाचार पत्र पाठक के घर तक हॉकर के माध्यम से पहुँचता है।

दूरदराज के क्षेत्र में वाहन या बस या ट्रेन या हवाई जहाज से भी समाचार पत्र अपनी पहुँच बनाते हैं जिनके वितरण की पूर्व नियोजित योजना होती है।

सड़कों, चौराहों के पास, रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों आदि पर भी समाचार पत्रों की प्रतियाँ हॉकरों के माध्यम से बेची जाती हैं या स्टालों पर बिक्री हेतु रखी जाती हैं। चूँकि दैनिक समाचार पत्र की उम्र छपने के बाद कुछ घंटे तक की ही होती है अत: वितरण व्यवस्था को चुस्त- दुरस्त बनाया जाता है ताकि समाचारपत्र सही समय पर लोगों तक पहुँचे। देरी से पहुँचने पर लोगों के पास पढ़ने का समय ही नहीं होगा और कुछ घंटों बाद तो उसका मूल्य रद्दी के मूल्य के बराबर ही होगा।

बिक्री एवं वितरण व्यवस्था में जितना धन व्यय होता है उतना भी धन समाचार पत्रों को नहीं मिल पाता क्योंकि समाचार पत्रों कीमत अत्यंत कम होती है तथा वितरण व्यवस्था में जुड़े लोगों के कमीशन का भुगतान करना भी इससे प्राप्त धन से मुश्किल होता है। अत: विज्ञापन सारी क्षतिपूर्ति कर देता है तथा समाचार पत्र के समस्त विभागों को ऑक्सीजन एवं ऊर्जा दोनों ही देता रहता है।

कागज, स्याही, मँहगी तकनीक, उसके रखरखाव, बिजली का मोटा बिल, अनेक टैक्सों की मार, कार्यरत लोगों के वेतन के भुगतान, परिवहन पर होनेवाले भारी खर्च आदि ही इतने भारी होते हैं कि इन्हें बिक्री से प्राप्त आय से निकाला नहीं जा सकता। अत: भरपाई इन सबकी विज्ञापन से प्राप्त आय से होती है। यदि गांधी जी के सिद्धांत को अपनाकर कोई समाचार पत्र विज्ञापन लेना बंद कर दे और मान ले कि विज्ञापन लेने से उसके समाचार पत्र पर विज्ञापनदाता का अनुग्रह भार रहेगा अत: विज्ञापनदाता के हित चिंतन का कार्य भी उसे करना होगा, तो समाचार पत्र एक दिन भी नहीं चल पाएगा। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के आधुनिक युग में पत्रकारिता का कार्य अत्यंत खर्चीला हो गया है तथा समाचार पत्र को पाठक को लुभाने के लिए योजनाओं पर योजनाएँ, कूपन, इनामी योजनाएँ, गारंटेड गिफ्ट कूपन आदि छापकर उन्हें योजनाओं से लाभान्वित करके पत्र के प्रति लालायित करते रहना होता है। अत: इन पर भी बहुत खर्चा होता है। फिर भी, विज्ञापन की मोटी आय से भी इनकी प्रतिपूर्ति हो जाती है। लेकिन इसका दुष्परिणाम यह भी होता है कि समाचार पत्र पहले प्राप्त विज्ञापन सेट करके छापता है तथा जो भी जगह विज्ञापनों से बच जाए उस जगह पर काटपीट भरे समाचार। विज्ञापनों ने दूरदर्शन पर तो अपना रौब इतना अधिक जमा लिया है कि कोई भी कार्यक्रम जितना दिखता या दिखाया जाता है, उससे अधिक विज्ञापन दिखाए जाते हैं क्योंकि विज्ञापन कमाई का जरिया हैं। फिर भी, विज्ञापन पत्रकारिता की रीढ़, ऊष्मा एवं ऑक्सीजन हैं।

पत्रकारिता के एक उद्योग के रूप में पनपकर स्वतंत्र भारत में विकसित होने के कारण भारत जैसे लोकतंत्र में पत्रकारिता के फूलने -फलने के लिए अनंत संभावनाएँ हैं। पत्रकारिता उद्योग में निवेश करने वालों के साथ पत्रकारों के भी स्वतंत्र भारत में वारे -न्यारे हो गए हैं।

प्रेस प्रबंधन में सरकारी अनुदानों, छूट एवं अन्य हितकारक सुविधाओं के साथ विज्ञापन रूपी प्राणवायु लोकतंत्र में पत्रकारिता के फूलने- फलने के मूल कारक एवं मूल मंत्र हैं।

चूँकि पत्रकारिता लोकतंत्र की सशक्त, सस्वर, आधिकारिक पहरेदार होती है तथा सभी वर्गों का उसे संबल होता है अत: लोकतंत्र को सही दिशा देने में भी पत्रकारिता की भूमिका स्वत: सिद्ध है।

(लेखक गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं।)

अर्थ ग्रहण की विभिन्न अवधारणाएं और उनकी मीमांसा

डॉ. जगदीश शर्मा

भारतीय दर्शन में अर्थ, अर्थ-प्रकृति, अर्थ ग्रहण और अर्थ निर्णय पर गहन मीमांसा की गई है। अर्थ को विभिन्न दर्शनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने के प्रयास किए हैं। अर्थ-सारगर्भिता, अर्थ-मीमांसा, ईश्वर एवं शास्त्र और अर्थ-विमर्श तथा सिद्धांत पर विशद् विवेचन किया गया है।

संस्कृत शब्दकोश में दी गई परिभाषा के अनुसार 'अर्थ' ऋ धातु में थन् प्रत्यय लगाकर बना है। जिसके 'आशय, प्रयोजन, लक्ष्य, उद्देश्य, अभिलाष, इच्छा आदि अनेक अर्थ अथवा निहितार्थ हैं। संज्ञाओं को विशेषित करने के लिए विशेषण और क्रिया विशेषण के रूप में इस पद के प्रयोग होते हैं।

कुछ दर्शन अर्थ से इंगित होने वाले किसी पदार्थ का बोध स्वीकार करते हैं, जैसे उच्चारण के पश्चात् हमें उस ध्वनि से किसी पदार्थ अथवा प्राणि का बोध हो जाता है, घट, दधि आदि। अर्थ ग्रहण की अनेकों दृष्टियाँ हमारे शास्त्रों में वर्णित हैं, न्याय-वैशेषिक दर्शन में पदार्थ, गुण, कर्म, संबंध, मूल, और विशिष्ट प्रकृति आदि का समन्वय होने से यह भी मीमांसा की जाती है कि यदि शब्द (उच्चरित वर्णों) और अर्थ के मध्य किंचित इस प्रकार का भाव है तो 'आग' कहने से 'मुख में 'जलने' की अनुभूति होनी चाहिए। अतः इस परस्पर संबद्धता को ईश्वर या ईश्वरीय इच्छा से अभिप्रेत भी कहा जाता है। अर्थ सिद्धि के लिए विभिन्न भारतीय दर्शन प्रमाण मीमांसा का आश्रय लेते हैं। इनमें सांख्यदर्शन प्रमेयशास्त्रीय ग्रंथ के रूप में एक प्रमाण मानता है और किसी पदार्थ या विषय का ज्ञान तथा अपने द्वारा माने हुए प्रमेय पदार्थों की सत्ता की सिद्धि प्रमाण से हुई मानता है। चार्वाक केवल एक - प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं। बौद्ध दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण मानता है। सांख्य, योग एवं वैष्णव-वेदांत प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द प्रमाण मानते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द, ये चार प्रमाण न्याय एवं वैशेषिक मानते हैं। प्रभाकर अर्थापत्ति के साथ पांच और कुमारिल भट्ट के अनुयायी भाव नाम प्रमाण के साथ छः तथा अद्वैत वेदांत इनमें संभव और ऐतिह्य को भी जोड़ते हुए आठ प्रमाण मानते हैं। परंतु सांख्य दर्शन में अर्थ की प्रतीति के तीन प्रमाण - प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द ही माने गए हैं। यथा इंद्रियों - अक्षि आदि से दृश्यमान-सन्निकर्ष से पदार्थों का बोध- अनुग्रह प्रत्यक्ष प्रमाण है - प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्। इंद्रियों से परोक्ष - अतीन्द्रिय विषयों का ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है लिंगलिंगिपूर्वकम अर्थात हेतु से साध्य की सत्ता का अध्यवसाय अथवा निश्चयात्मक ज्ञान अनुमितिरुपा अनुमान प्रमाण है। केशवमिश्र ने तर्कभाषा में स्वर्थानुमान और परार्थानुमान

को लिंग-लिंगि संबंध के अंतर्गत वर्णित किया है। हेतु को भी अन्वयव्यतिरेकी, केवल अन्वायाई तथा केवल व्यतिरेकी बताया गया है। धुएँ से अग्नि और घट, पट आदि से उसके कार्य स्थल पर उपस्थित कर्ता और हेतुकों का अनुमान लगाया जाता है। इसी प्रकार 'एतद्वाक्यार्थज्ञानवाहनम्' यथार्थ अर्थात प्रामाणिक वाक्य के अर्थ का ज्ञान शब्द प्रमाण है, शब्दबौधरूपा प्रमा - न्याय वैशेषिक के अनुसार चतुर्थ प्रमेय 'अर्थ' बतलाया गया है, जिससे किसी (पदार्थ) की प्रतीति होती है। यह छः प्रकार को होता है: द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय। उच्चरित शब्दों को कुछ दर्शन विज्ञात की श्रेणी में रखकर विकल्प और माया के रूप में देखते हैं और ठोस अर्थ की प्रतीति उनसे नहीं होती।

अर्थ ग्रहण अथवा निर्धारण में शब्द शक्तियाँ निहित होती हैं, साहित्य-दर्पण में तीन प्रकार की शब्द शक्तियाँ बताई गई हैं। साहित्य-दर्पण में कहा गया है अर्थों वाच्यश्च लक्ष्यश्च व्यंग्यश्चेति त्रिधामतः (साहित्यदर्पण 2:2 अर्थ तीन प्रकार का है वाच्य, (अभिव्यक्त या अभिधार्थ) जैसे गाय लाओ आदि, लक्ष्य (संकेतित अथवा गौण या लक्ष्यार्थ) जैसे कलिंग साहसी (कलिंग के सैनिक) साहसी है और व्यंग्य (ध्वनित/व्यंजनार्थ) सूर्य अस्त हो गया (संध्या वंदना, भोजनादि की तैयारी) अर्थ ध्वनित होते हैं। गंगा में घर है से गंगा के उपर घर (अभिधा), गंगा के किनारे घर (लक्ष्यार्थ) तथा गंगा के शीतल पर्यास में घर जैसे अर्थ ध्वनित होते हैं। किसी एक विशिष्टार्थ का अवबोधन कर लेने के उपरांत उससे संबद्ध कई अन्य अर्थ भी लक्षणा-व्यंजना विधेय होते हैं। विशिष्टार्थ संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ प्रकरण, लिंग, अन्यसंनिधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, स्वर और चेष्टा आदि के अनुसरण से प्राप्त होता है। असंगत अथवा दूषित-अर्थ जैसे काव्य दोष भी अर्थ निधारण अथवा ग्रहण के संदर्भ में कारक होते हैं। भामह ने अलंकारशास्त्र में पाठ के स्तर पर काव्यत्व दोषों में अप-अर्थ, व्यर्थ, एकार्थ, समस्या, अपक्रम, ...लोकविरोधी तथा आगम विरोधी जैसे अनेक दोषों का उल्लेख किया है जो अर्थ के उत्कर्ष को बाधित करते हैं। वास्तव से इससे एक नए अर्थ का अन्वेषण भी होता है। आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में दोषों का वर्णन किया है और 23 दोष गिनाएँ हैं और स्पष्ट कहा है कि दोष काव्य के सौंदर्य का अपकर्ष करते हैं- दोषास्तस्यापकर्षकाः।

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने भी अर्थ के विषय में कहा है - यस्मिन्स्तूच्चरिते शब्दे यो अर्थ प्रतीयते, तमाहुरर्थं तस्यैव, अर्थात 'शब्द के उच्चारण से जिस (भाव अथवा पदार्थ आदि) की प्रतीति होती है वही उसका अर्थ है, अर्थ का कोई अन्य लक्षण नहीं है। शब्द और अर्थ में नित्य संबंध है। प्रतिभा से भी शब्द का अर्थ निर्धारित करने में उपादान प्राप्त होता है। भर्तृहरि शब्द को वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ति के आयाम से जोड़ते हैं और प्रकृत तथा वैकृत कहते हैं। अनुच्चरित ध्वनि प्रकृत है और उच्चरित वैकृत, यहीं स्फोट या स्फोटवाद का सिद्धांत भी आता है। आचार्य मम्मट भी वाक्यपदीयम् में वर्णित संयोग, प्रयोग, साहचर्य, प्रयोजनादि 15

अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं जो किसी विशेष अर्थ के लिए आवश्यक हैं, इसी तारतम्य में वे अर्थशक्ति का भी विवेचन करते हैं।

भारतीय अर्थ मीमांसा परंपरा में विभिन्न मत उपलब्ध होते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा में अर्थ के काव्य सौंदर्य को उद्घाटित करने वाले पक्ष पर बल दिया गया है जबकि वैयाकरणीय परंपरा में भाषा और संज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। इसीप्रकार न्याय वैशेषिक और मीमांसकों ने तर्क, मीमांसा तथा वैदिक शास्त्रीय पक्ष पर बल दिया। अतः अर्थ को विशेष सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से भी विवेचित करने के उदाहरण प्रत्यक्षतः उपलब्ध हैं।

ध्वन्याचार्य आनंदवर्धन काव्य शरीर पर चर्चा करते हुए काव्य घटकों का वर्णन करते हैं। यहाँ उन्होंने अर्थ तत्व पर सुदीर्घ विवेचन किया है। वे अन्य आचार्यों के विपरीत शब्द की अपेक्षा पहले अर्थ पर विचार करते हैं। काव्य पौरुषेय वांग्मय होने से वक्ता की विवक्षा की ओर भिन्न होता है - विवक्षोपारूढो हि काव्य शब्दानामर्थः। अर्थात विवक्षा का विषय अर्थ है और शब्द उसका माध्यम। अर्थ यहाँ उतना ही अभिप्राय नहीं रखता है जितना सुनाई देता है अपितु उससे आगे उसमें एक प्रतीयमान अर्थ, वाच्य से भिन्न भी होता है। आनंदवर्धन कहीं-कहीं अर्थ का वाच्य रूप निषेधात्मक भी बताते हैं और अन्यत्र निषेध से भी भिन्न परवर्ती अर्थ होने की बात करते हैं। यह परवर्ती अर्थ अनेक संख्यक और अलंकृत तथा विशिष्ट भी हो सकता है। इस प्रकार प्रतीयमान अर्थ, अर्थ मीमांसा में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

वक्रोक्तिकार आचार्य कुंतक ने भी अपनी कारिकाओं में अर्थ को संकेतित और शब्द को संकेतक कहा है। उन्होंने सहृदय के लिए 'आनददायक' केवल अर्थ को ही कहा है। वक्रोक्ति में कवि व्यापार वक्रता और अलंकृति भी अर्थ की विविध छायाओं तथा उत्कर्ष का ही संकेत करती हैं। राजशेखर की काव्यमीमांसा में कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा से भावुक के लिए रसोत्कर्ष का माध्यम 'अर्थ' ही बनता है।

अर्थ के संदर्भ में न्यायाचार्य गौतम के न्यायसूत्र में वर्णित व्यक्ति, आकृति और जाति भी अभिधा या प्रारंभिक अर्थ तथा लक्षणा अर्थात अभीप्सित अर्थ में एक मध्यक सूत्र होता है। यही तात्पर्यवाद के लिए आधार बनता है और संभवतः यह मीमांसावाद के वाक्यार्थ (आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि) संबंधी अन्विताभिधानवाद या अभिहितान्वयवाद के समक्ष सिद्धांत उभरा। 'तात्पर्य' वाक्य के विभिन्न संघटकों के मध्य एक प्रकार का पदार्थ संसर्ग रूप उत्पन्न होता है और इसी संसर्ग-मर्यादा से अभीप्सित अर्थ की प्राप्ति होती है। न्यायमंजरी में इस तथ्य को प्रस्तुत किया गया है कि वाक्य के विभिन्न घटकों से प्रतीत प्राथमिक अर्थ के उपरांत उसमें एक अतिरिक्त अर्थ की शक्ति बनी रहती है जो उस अर्थ को भाषित करती है जो हमारी चेतना से संसर्ग करता हुआ वाक्यों में, वाक्य के पदों में एक संसक्ति उत्पन्न करता है। जयंतभट्ट द्वारा अभिधा के समक्ष एक अलग

वृत्ति के रूप में प्रतिपादित इस तात्पर्य सिद्धांत को ध्वनिकार ने आगे बढ़ाया तथा नैय्यायिकों का अर्थ सिद्धांत तात्पर्यवाद के रूप में स्थापित हो गया।

जैमिनी सूत्रों के अनुसार मीमांसा दर्शन में श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्यानम् आदि भी अर्थ निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण हैं। मीमांसा दर्शन में अर्थ ग्रहण के लिए अर्थवाद की अवधारणा भी महत्वपूर्ण है जिसमें विधि और निषेध दो युक्तियों का उपयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद तीन प्रकार से विशिष्टार्थ की प्रतीति होती है।

प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार में जैन आचार्यों ने भी अर्थ ग्रहण पर विचार किया है। उन्होंने वाक्यार्थ को प्रोक्ति से स्वतंत्र भी माना है। अर्थ ग्रहण के संदर्भ में अनेकान्तवाद जैन सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो श्रोता -पाठक को निर्वचन से स्वतंत्र अपने द्वारा गृहीत अर्थ को वैधता प्रदान करता है। बौद्ध दर्शन का अपोहवाद सिद्धांत भी अर्थ ग्रहण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अर्थ ग्रहण के लिए प्रत्यक्ष और अनुमान दो मुख्य कारक हैं जो साक्षात और प्रतीयमान अर्थ का संकेत करते हैं।

पतंजलि के महाभाष्य में भी अर्थ पर विचार किया गया है जिसमें व्याड़ि के अनुसार 'शब्द' जाति में विशिष्ट अर्थ की प्रतीति कराता है जबकि वाजप्यायन के अनुसार इससे जाति अथा तद्-धर्मा, यानि गाय की नहीं अपितु 'गाय के गुणों जैसी' की प्रतीति होती है।

लॉके का अर्थ संबंधी पश्चिमी सिद्धांत अर्थ ग्रहण के लिए शब्द के संदर्भ को महत्वपूर्ण मानता है। विचार भाषा और शब्द से स्वतंत्र संदर्भित और सदृश अर्थ का बोध भी कराते हैं। इसे sense, reference, denotation, connotation, designatum और intention आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। आगम निगमनात्मक पद्धति की तरह ही पश्चिमी विचारक ग्रिएस (1957) ने भी अर्थ को परिभाषित किया है। वेल्वी ने भी 'सेन्स' का उल्लेख किया है जो 'इप्सित' अर्थ के लिए विशेष संदर्भ हेतु संकेत करती है। सस्युर ने भाषा को सकेतों की व्यवस्था कहा परंतु अर्थ को 'संकल्पना' अथवा 'संकल्प' कहा है। एलन गार्डिनर भी अर्थ और संप्रेषण पर विचार करते हुए सोद्देश्य प्रयोजन और संप्रेषणात्मक प्रयोजन का उल्लेख करते हैं। शब्द वास्तव में अर्थ के लिए 'सूत्र' होते हैं, वे संकेत करते हैं कि क्या 'अर्थ' व्युत्पादित किया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन की भाँति ही लक्षणा अथवा मेटाफर की भी चर्चा करते हैं। आगडन और रिचर्ड ने भी स्थापित किया है कि शब्द और उससे संकेतित वस्तु का प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। शब्द उस कल्पना का संकेत होता है जो हमारे मन में अंकित होती है, वस्तु संकल्पना का प्रत्यक्ष रूप होता है जो हम इंद्रिय अनुभव से पहचानते हैं।

शब्दार्थ संबंधी सिद्धांतों में अर्थ की सत्ता स्थापित होती है। इससे व्यक्त होता है कि शब्द और उससे संकेतित वस्तु वस्तु का प्रत्यक्ष संबंध नहीं है अपितु शब्द उस संकल्पना का संकेत है जो उसके बारे में हमारे मन

में अंकित है। गाय शब्द एक संकल्पना है जो सामान्यीकरण के आधार पर हमारे मन में अंकित है। संकल्पना संबंधी को हम भौं-भौं सिद्धान्त से भी जोड़कर देख सकते जिससे हम कुत्ते और बिल्ली में अंतर करते हैं। गला और गर्दन के लिए नेक (neck) शब्द अंग्रेजी में परंतु हिन्दी में इनके लिए दो शब्दों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार जाति और व्यक्ति का भी सिद्धान्त है। भाषा प्रौद्योगिकी इस संदर्भ में और अंसुसंधान करती है और उप-वर्गों की पहचान करती है।

भारतीय मेधा ने शब्द और अर्थ के सम्बन्धों की अधिक स्पष्ट रूप में व्याख्या की है। परा, पश्यंती, मध्यमा, और वैखरी का उल्लेख है। इनमें प्रथम, परा का संबंध भाषा संरचना की अपेक्षा मनुष्य मात्र के मस्तिष्क की शक्ति से है, जबकि पश्यंती, मध्यमा और वैखरी का संबंध ज्ञान प्रस्तुति, वाक्य संयोजन तथा भाषा के व्यक्त रूप से है। अंतिम तीन अर्थ को सृजित करने में योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि भी कहलाती हैं। इससे अर्थ के निर्माण की योग्यता, उसके प्रति सहज जिज्ञासा, तथा अर्थ घटकों के मध्य जिज्ञासा अर्थात जानने के उत्सुकता बनी रहती है। अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना भी अर्थ अन्वेषण और गूढ़ार्थ को जानने में अपनी अपनी महती भूमिका निभाती हैं।

वस्तुतः अर्थ ग्रहण को अनेकों कारक नियंत्रित, प्रेरित और सुगमित करते हैं जो संदर्भ, स्थिति, प्रयोजन/उद्देश्य आदि से विभिन्न स्तरों पर विभिन्न वृत्तियों के समन्वित प्रयासों का परिपाक होता है।

सहायक ग्रंथ:

- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ कविराज, निरूपण विद्यालंकार (संपा.), साहित्य भण्डार, मेरठ, 1988
- तर्कभाषा, केशवमिश्र, श्रीनिवास शास्त्री (संपा.), साहित्य भण्डार, मेरठ, 1972
- सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, आचार्य रामकृष्ण (संपा.), साहित्य भण्डार, मेरठ, 1988
- भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल, पटना, 1955
- रिविजिटिंग लिटरेचर, क्रिटिसिज्म एंड एस्थेटिक्स इन इंडिया, अवधेश कुमार सिंह, डी के प्रिंटवर्ल्ड, दिल्ली, 2012
- आनंदवर्धन, ड़ा. रेवाप्रसाद द्विवेदी, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1972
- मिश्र, विद्यानिवास, आदि (सं) भारतीय भाषाशास्त्रीय चिंतन, जयपुर, राजस्थान ग्रंथ अकादमी

- Indian Theories of Meaning. Madhav M. Deshpande. Academia-edu. accessed on 12/10/2015
- Indian Theories of Meaning. Thesis. Jawaharlal Nehru University
- Indian Theory of Meaning. K. Kunjunni Raja. Adyar Library and Research Centre 2nd edition. 1969. Accessed digitized version.
- The Theory of Meaning. Russell Eliot Dale . 1996
- Language and Testimony in Classical Indian Philosophy, First published Fri Aug 20, 2010, accessed on 12/11/2015 1630hrs

(लेखक इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं।)

वेब मीडिया के विस्तार में विश्वभाषा हिंदी की भूमिका

प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

मनुष्य सदा से अपने भाव और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए तरह-तरह के माध्यमों की तलाश में क्रियाशील रहा है। जब उसके पास भाषा नहीं थी, तब वह प्रतीकों, चित्रों आदि के माध्यम से अपने विचारों, मन के भावों और संदेशों का आदान-प्रदान करता था। धीरे-धीरे मनुष्य ने भाषा को आविष्कृत कर अपनी अभिव्यक्ति को मनोवांछित रूप प्रदान करना शुरू किया। अपनी विकास यात्रा के विविध पड़ावों को पार करते हुए मनुष्य आज ऐसे मुकाम पर आ पहुँचा है, जहाँ उसे अपने भावों और विचारों को सशक्त एवं प्रभावी ढंग से प्रकट करने की अद्भुत क्षमता हासिल हो गई है। भारतीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि देवर्षि नारद और संजय से लेकर मध्यकालीन समाज तक संचार माध्यमों की कितनी कारगर भूमिका रही है। आधुनिक युग की पृथक् पहचान को रेखांकित करने में समाचार पत्रों और रेडियो से लेकर इंटरनेट तक की स्पष्ट भूमिका देखी जा सकती है। वस्तुतः अपनी पहुँच और विस्तार में जनसंचार माध्यमों ने आज अपनी खास जगह बना ली है। जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में इनकी पैठ किसी से छुपी नहीं है। अन्तर्वैयक्तिक से लेकर समूह संचार और उससे आगे जाकर जनसंचार और अब वेब मीडिया तक की सीढ़ी को तय करने में मानव सभ्यता ने एक लम्बी यात्रा तय की है। आज विश्व पटल पर निरंतर विस्तार पाते वेब आधारित मीडिया की अनन्य भूमिका दिखाई दे रही है। जनसंचार के नए माध्यम, विशेष तौर पर नितनूतन आयामों के साथ गतिशील वेब मीडिया अपनी प्रविधि और प्रकृति में ही परम्परागत माध्यमों से भिन्न नहीं हैं, उसका चरित्र और पहुँच भी अलग है। इस वैशिष्ट्य का एक बड़ा कारण है- उसका गैर-व्यक्तिवादी रुझान, जिसके रहते जीवन से जुड़े हर क्षेत्र में जन-जन की सक्रिय भागीदारी के मौके बढ़ रहे हैं।

मार्शल मैक्लुहान ने कभी कहा था 'माध्यम संदेश है', आज यह कथन मंत्र का रूप ले साकार होता नजर आ रहा है। मूल रूप से इसका अभिप्राय इस तथ्य से है कि जब हम टीवी जैसे किसी भी माध्यम पर 'कंटेन्ट' या 'विषय-वस्तु' के किसी एक अंश को देखते हैं, उसकी तुलना में कहीं ज्यादा वह माध्यम स्वयं हमें प्रभावित करता है। प्रत्येक संचार माध्यम की अपनी अंतर्निहित विशेषताएँ और लोगों को प्रभावित करने के तरीके होते हैं, इस बात की परवाह किए बिना कि माध्यम से भेजी जाने वाली 'विषय-वस्तु' क्या है। वेब मीडिया में यह कार्य वेब जैसे समर्थ संचार माध्यम से होता है। वर्तमान दौर संचार क्रांति का दौर है। संचार क्रांति की इस प्रक्रिया में जनसंचार माध्यमों के भी आयाम बदले हैं। आज की वैश्विक अवधारणा में सूचना एक हथियार के रूप में परिवर्तित हो गई है। यह सूचना जगत की अनंत व्याप्ति और विस्तार का दौर है, जिसका व्यापक प्रभाव जनसंचार

माध्यमों पर पड़ा है। पारंपरिक संचार माध्यमों समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन की जगह वेब मीडिया ने ले ली है। वेब पत्रकारिता आज समाचार पत्र-पत्रिकाओं का एक बेहतर विकल्प बन चुकी है। न्यू मीडिया, आनलाइन मीडिया, साइबर जर्नलिज्म और वेब जर्नलिज्म जैसे कई नाम वेब पत्रकारिता के लिए प्रचलन में हैं। वेब पत्रकारिता प्रिंट और ब्राडकास्टिंग मीडिया का मिला-जुला रूप ही नहीं है, उनसे आगे जा रही है। यह टेक्स्ट, पिक्चर्स, आडियो और वीडियो के जरिये स्क्रीन पर हमारे सामने है। माउस के सिर्फ एक क्लिक से किसी भी खबर या सूचना को पढ़ा जा सकता है। यह सुविधा निशुल्क या अत्यल्प मूल्य पर 24 घंटे और सातों दिन उपलब्ध है।

विश्वव्यापी वेब मीडिया पूर्व प्रचलित माध्यमों, विशेषतः प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सर्वाधिक सशक्त विकल्प के रूप में उभरा है। एक टीवी चैनल या एक रेडियो स्टेशन की शुरुआत के लिए तमाम तरह के शुल्क, नेटवर्थ, परफ़ोर्मेंस बैंक गारंटी, अपलिंकिंग शुल्क, हर एक भाषा के लिए अलग से शुल्क, उपकरण, स्टूडियो, स्टॉफ का खर्च, वितरण, संचालन के अन्य खर्च मिलाकर इतनी बड़ी राशि होती है, जिसे वहन करना हर किसी के वश की बात नहीं है। अखबार की बात करें तो वहां छोटे या स्थानीय स्तर पर किए गए प्रयास में व्यय भार कुछ कम लगता है, लेकिन राष्ट्रीय स्तर या राज्य स्तर पर की गई शुरुआत काफी महंगी बैठती है। मीडिया के इन माध्यमों में बड़ी धनराशि खर्च करने के बाद भी यह तय नहीं है कि पहुंच जन-जन तक हो, अथवा सीमांत और दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुंच बन पाए। दूसरी ओर वेब मीडिया में ऐसा नहीं है। इस क्षेत्र में लागत अत्यल्प ही रहती है। अपनी इच्छा के नाम के साथ मामूली फीस अदाकर सिर्फ कंप्यूटर, कैमरा, स्कैनर, इंटरनेट कनेक्शन और सर्वर स्पेस के साथ इसकी शुरुआत की जा सकती है। बहुत बड़ी जगह की भी जरूरत नहीं है। आपकी पहुंच समूची दुनिया तक होगी, जो निश्चय ही अन्य माध्यमों से संभव नहीं है।

भारत में पत्रकारिता और जनसंचार माध्यमों का आगमन और विस्तार पश्चिम की देन है, किंतु अल्पावधि में ही ये सैकड़ों वर्षों की निद्रा में सोये भारत की जाग्रति का माध्यम सिद्ध हुए हैं। विश्वजनीन सूचना-संचार के माध्यमों ने हाल के दशकों में व्यापक प्रगति की है। वहीं भारतीय परिदृश्य में देखें, तो हमारी जातीय चेतना के अभ्युदय, आधुनिक विश्व के साथ हमकदमी, स्वातंत्र्य की उपलब्धि और राजनैतिक-सामाजिक चेतना के प्रसार में इनकी अद्वितीय भूमिका रही है। यद्यपि भारत में पत्रकारिता की शुरूआत राज्याश्रय में हुई थी, किंतु शीघ्र ही वह अपनी युग-चेतना, जन-कष्टों और आकांक्षाओं का संवहन करते हुए संघर्ष की राह पर चल पड़ी। जहाँ प्रारंभिक दौर के अखबारों का लक्ष्य मात्र सूचना-संचार का था, किंतु धीरे-धीरे वे पत्रकारिता के स्वाभाविक रुझान के अनुरूप अपने समय की हलचलों के गवाह बनने लगे। ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अपने अग्निगर्भा स्वर तथा जन-चेतना के सम्प्रसार के लिए प्रसिद्ध हिन्दी पत्रकारिता तेजस्विता की प्रतीक बन गई थी। इधर स्वातंत्र्योत्तर दौर में हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम विस्तार एवं वैविध्य के साथ गतिशील हुए। हिन्दी के समाचार माध्यम आजादी के बाद नवनिर्माण के सपनों के सहभागी बने, वहीं विविध क्षेत्रों में आए परिवर्तनों को गति देने में भी

तत्पर रहे हैं। हिन्दी संचार माध्यम सदैव राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए समर्पित रहे हैं, किंतु उसके साथ ही आंचलिक आकांक्षाओं और सांस्कृतिक तत्त्वों का संवहन करने की दिशा में भी गतिशील बनी रही। धीरे-धीरे यह स्थिति बदली। जहाँ एक दौर में समाचार माध्यम सोद्देश्य मिशन भावना के पर्याय थे, वहीं कालांतर में व्यवसाय का माध्यम बनने लगे। उसका प्रभाव उनकी अंतर्वस्तु, प्रस्तुति और भाषा पर पड़ना स्वाभाविक था।

जनभाषा से रिश्ता जनसंचार की अनिवार्य शर्त है। इस अर्थ में विश्व की चोटी की जनभाषाओं में एक हिन्दी ने आज वेब मीडिया सहित विविध जनसंचार माध्यमों में अपनी खास पैठ बना ली है। भारतीय पुनर्जागरण से लेकर राष्ट्रीय आंदोलन तक और अद्यावधि इन माध्यमों ने बेजोड़ भूमिका का निर्वाह किया है। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने पत्रकारिता को स्वतंत्रता प्राप्ति का हथियार बनाया था। आज विश्व फलक पर हिंदी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओँ की भी अहम भूमिका दिखाई दे रही है। हिंदी के साथ इन भाषाओँ की एकता से विश्व में जारी अंग्रेजी जैसी कुछ भाषाओँ के वर्चस्व से मुक्ति की राह खुल सकती है। वर्तमान विश्व के भाषाई परिदृश्य में दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली चालीस भाषाओं में एक चौथाई भाषाएँ भारतीय ही हैं। इनमें हिन्दी विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्थापित है। भारत में बोले जाने वाले नए बोली रूप यथा मुंबईया, कलकतिया हिंदी की तरह हिंदी के कई बोलियाँ देश की सीमा से परे विकसित हुई हैं। इनमें प्रमुख हैं- मोरिशसी हिंदी, सरनामी हिंदी, फिजीबात, नैताली हिंदी, सिंगापुरी हिंदी, अरबी हिंदी, लन्दनी हिंदी, नेपाली हिंदी आदि। उजबेकिस्तान और तजाकिस्तान में बोली जाने वाली 'पार्या' भी हिंदी की ही एक भाषिक शैली है। इसके लिए ‘ताजुज्बेकी हिंदी’ नाम भी सुझाया गया है। हिंदी के ऐसे अनेक बोली रूप दुनिया में विकासमान हैं, जिनमें स्थानीय भाषा और बोलियों का जैविक संयोग हो रहा है। ये नई बोलियाँ घर-आँगन से लेकर बाज़ार तक अटखेलियाँ कर रही हैं। अब तक एक दायरे में सिमटी हिन्दी भाषा को पंख लग गए हैं। सात समुंदर पार तक एक चौथाई दुनिया में हिन्दी का परचम लहरा रहा है। वैसे इसे व्यावसायिक जरूरत माना जा रहा है, क्योंकि भारत आकर व्यापार करने वाली विदेशी कंपनियां हिन्दी जानने वालों को ही नौकरी में तरजीह दे रही हैं। इसीलिए हिन्दी को सीखने और प्रयोग के लिए नया वातावरण बन रहा है।

विश्वभाषा हिन्दी के साहचर्य से वेब मीडिया का दायरा अत्यंत व्यापक होता जा रहा है। अब हर किसी के हाथ में इंटरनेट है और वे खबरों के लिए अखबारों के पन्ने कम पलटते हैं, ख़बर देने वाली वेबसाइट पर नजर डालना ज्यादा उचित समझते हैं। खास बात यह है कि इसमें हिंदी वेब मीडिया ने अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराई है। यह समय के साथ आए बदलावों से हमकदम अत्याधुनिक मीडिया है। बहरहाल हाल के वर्षों में हिंदी की ऐसी असंख्य वेबसाइटें शुरू हुई हैं और इनके उपयोक्ताओं की संख्या भी दिन प्रति दिन बढ़ रही है। वेब मीडिया का भविष्य अत्यंत संभावनावान दिखाई दे रहा है।

दुनिया भर में इंटरनेट की पहुंच तेजी से बढ़ रही है। इस समय भारत में ही लगभग 75 करोड़ लोगों तक इंटरनेट की पहुँच है। वर्ष 2011 में मात्र दो करोड़ मोबाइल धारकों के पास इंटरनेट सुविधा उपलब्ध थी, जो आज पंद्रह करोड़ से अधिक स्मार्टफोन पर उपलब्ध हो गई है। दिनोदिन यह संख्या बढ़ रही है। एक अनुमान के अनुसार 2017 तक यह संख्या लगभग 50 करोड़ तक पहुँच जाएगी। लोगों का झुकाव वेब मीडिया के प्रति तेजी से बढ़ रहा है और वह समय के साथ आए परिवर्तनों के साथ हमकदमी कर रहा है।

इधर वेब मीडिया का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष सोशल नेटवर्किंग के रूप में सामने आ रहा है। यह समाज को आपस में जोड़ने का सबसे आसान और द्रुत साधन है। सोशल नेटवर्किंग से जुड़ी वेबसाइटें न सिर्फ हमें जानकारी देती है, बल्कि हमें संवाद का अवसर भी देती हैं। यह इंटरेक्शन काफी महत्त्व का होता है। यहाँ अन्य माध्यमों की तुलना में उपयोक्ता या पाठक सक्रिय भागीदारी कर सकता है। वह कमेंट (टिप्पणी) कर सकता है या सामग्री के लिए वोट कर सकता है। सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से कुछ देखने, पढ़ने के बाद हम तुरन्त अपनी प्रतिक्रिया दे सकते हैं। पहले ब्लॉग और अब माइक्रो ब्लॉगिंग के नित-नूतन होते रूपों- फेसबुक, ट्विटर, गूगल प्लस, इंस्टाग्राम, वाट्सएप आदि के जरिये हम एक-दूसरे से जुड़ने लगे हैं। यह कुछ वैसा ही है, जैसे किसी नुक्कड़ या चौबारे पर खड़े होकर कोई कुछ कहता है, उसके जवाब में किसी और ने कोई टिप्पणी की और फिर उस पर चर्चा या बहस चल पड़ी। उसी तरह ये ऑनलाइन अस्त्र हैं, जहाँ कोई भी व्यक्ति किसी भी विषय पर टिप्पणी करके लम्बी बहस छेड़ सकता है, उसमें सहभागी बन सकता है। फेसबुक, ट्विटर आदि के जरिए लोग संस्कृति, समाज, राजनीति से जुड़े मुद्दों को लेकर सक्रिय समर्थन या संवाद पैदा करते हैं। तमाम विषयों से जुड़े ब्लॉगों, फेसबुक और ट्विटर का उपयोग करने वालों की संख्या आज करोड़ों में है। इनके माध्यम से समाज, राजनीति, फिल्म उद्योग आदि सब कुछ बदल गया है। सोशल मीडिया से जुड़ना बेहद आसान है। इसके लिए आपको अलग से किसी उपकरण की जरूरत नहीं है। अगर हमारे पास इंटरनेट कनेक्शन से युक्त कम्प्यूटर या स्मार्टफोन है तो हम किसी भी सोशल नेटवर्क के साथ कुछ ही सेकंड में जुड़ सकते हैं। वर्तमान में सोशल मीडिया हिन्दी सहित देश-दुनिया की अनेक भाषाओं में अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन गया है। इसके माध्यम से हिन्दी भाषा में विचारों की अभिव्यक्ति और सृजन की संभावनाओं को नए पंख लग गए हैं। विश्वजनीन होती हिन्दी को सोशल मीडिया के माध्यम से सबसे अधिक लाभ मिल रहा है। वह समय आ गया है जब मनुष्य कागज और कलम को परे रखकर कम्प्यूटर या मोबाईल पर शब्द टाईप करने लगा है तथा ई-मेल, एस.एम.एस., ब्लॉग, माइक्रो ब्लॉग आदि के जरिये अपने संदेशों और विचारों का आदान-प्रदान करने लगा है। कुछ लोग सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर प्रसारित हो रहीं भ्रामक खबरों के कारण इसे मीडिया कहने में हिचकते हैं। उनकी मान्यता है कि पत्रकारिता की शर्त होती है कि कुछ भी अपुष्ट, अस्पष्ट और सामाजिक सौहार्द बिगाडऩे वाले समाचार प्रसारित न हों लेकिन सोशल साइट्स पर इन सिद्धांतों का पालन नहीं किया जा रहा है। लेकिन यह भी सच है कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने वेब मीडिया के नए रूप की आधारशिला रख दी है। इंटरनेट ने आज पाठक को भी पत्रकार बना दिया

है। हर आदमी के हाथ में अपनी बात, अपने आसपास की खबर दुनिया के सामने पहुंचाने की ताकत आ गई है। यह तय बात है कि हम उस ताकत का इस्तेमाल किस तरह करते हैं।

वेब मीडिया को किसी भौगोलिक सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। अधिकांश अखबारों का दायरा किसी खास भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रहता है। किसी विशेष क्षेत्र या प्रांत को ध्यान में रखकर प्रकाशित अखबार की भाषा पर उस क्षेत्र की बोली या भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। दूसरे शब्दों में कहें तो हर क्षेत्रीय अखबार में स्थानीय भाषा का समावेश रहता है। दूसरी तरफ वेब मीडिया की भाषा किसी स्थानीय भाषा या बोली के प्रभाव से प्रायः मुक्त दिखाई देती है। इसका प्रसार व्यापक है और इसे दुनिया के किसी भी कोने में पढ़ा जा सकता है। इंटरनेट के पाठक देश-विदेश में फैले होते हैं। इनमें से कुछ पाठक ऐसे भी हैं जिन्हें हिंदी बहुत अच्छी तरह से नहीं आती है। ऐसे में वेब मीडिया में इस तरह की भाषा का प्रचलन बढ़ रहा है जो सभी को बेहद आसानी से समझ में आ सकती है। वेब मीडिया पर नए तेवर की भाषा लिखी जा रही है और यह लोगों को पसंद भी आ रही है। इंटरनेट के पाठक आमतौर पर युवा अधिक हैं और वे आधुनिक जीवन-शैली और विचारों के साथ वेब मीडिया को दिशा दे रहे हैं। उनकी भाषा का स्तर अलग है। वे संस्कृतनिष्ठ हिंदी की जगह अंग्रेजी मिश्रित हिंदी बोलते और समझते हैं। यही कारण है कि आजकल ज्यादातर हिंदी वेबसाइटों में अंग्रेजी के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। इसके समानान्तर हिंदी के मुख्य धारा के अखबार को भी इस तरह के प्रयोगों के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। युवा पाठकों को लुभाने के लिए कई अखबारों ने भी अंग्रेजी शब्दों को प्रमुखता से छापना शुरू कर दिया है। वेब मीडिया की भाषा को अपने जमाने के साथ तालमेल बिठाकर चलना पड़ता है। एक तरीके से कहें तो यहाँ हिंदी भाषा में हो रहे बदलावों का असर साफ दिखाई देता है। सोशल मीडिया भी इस बदलाव को गति दे रहा है। ज्यादातर लोग व्यक्तिगत तौर पर वेबसाइट चला रहे हैं। वेबसाइटों की संख्या बहुत ज्यादा है। ऐसे में लोगों का मुख्य उद्देश्य दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना है। इसके लिए वे कटाक्षपूर्ण और लोगों को आकर्षित करने वाली भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। वे बेबाक तरीके से अपने मन की बात लिखते हैं। इस तरह की भाषा को पसंद भी किया जा रहा है। अखबारों की तुलना में वेबसाइट पर जगह की दिक्कत नहीं है, लेकिन यहाँ लोगों के पास समय का अभाव है। लोग सरसरी निगाह से सब कुछ एक नजर में देख लेना चाहते हैं। फलतः बेव मीडिया की भाषा में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहने का रिवाज़ बढ़ा है।

वेब मीडिया ने परम्परागत मीडिया को न सिर्फ चुनौती दी है, उन्हें बदलाव के लिए बाध्य कर दिया है। छोटे-बड़े अखबारों के सामने यह स्थिति पैदा कर दी है कि उन्हें अपने वेब पोर्टल्स शुरू करने पड़े हैं। मोबाइल के अनुकूल वेबसाइट बनाई हैं। बड़े अखबार मोबाइल एप के जरिये नई पाठकीयता गढ़ रहे हैं। न सिर्फ मुफ्त डाऊनलोड के माध्यम से, वरन फ्री टाक टाइम से लुभा रहे हैं। अब कोई भी नया अखबार-चैनल अपने वेब पोर्टल के साथ ही लोगों के बीच आता है। दुनिया के प्रत्येक मीडिया हाउस ने यह मान लिया है कि बगैर वेब पर गए

उनका उद्धार नहीं हैं। कई बड़े अखबार अब वेब मीडिया के जरिए अपनी पहुँच को बढ़ाने में सक्रिय दिखाई दे रहे हैं। हमारे देश में इनका जिस तेज गति से विस्तार हो रहा है, उसे देखते हुए अगले कुछ सालों में किसी भी अखबार, टीवी चैनल का मुख्य चेहरा यही होगा। लगभग सभी बड़े-छोटे समाचार पत्रों ने अपने ई-पेपर यानी इंटरनेट संस्करण निकाले हुए हैं। भारत में 1995 में सबसे पहले चेन्नई से प्रकाशित होने वाले 'हिंदू' ने अपना ई-संस्करण निकाला था। 1998 तक आते-आते लगभग 48 समाचार पत्रों ने अपने ई-संस्करण निकाले। आज वेब पत्रकारिता ने पाठकों के सामने ढेरों विकल्प रख दिए हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों में भास्कर, पत्रिका, जागरण, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, नईदुनिया, जनसत्ता, अमर उजाला, पंजाब केसरी जैसे सभी प्रमुख हिन्दी अखबारों के ई-संस्करण मौजूद हैं। भारत में समाचार सेवा देने के लिए गूगल न्यूज, याहू, आज तक, एमएसएन, एनडीटीवी, बीबीसी हिंदी, भड़ास फार मीडिया, ब्लाग प्रहरी, मीडिया मंच, प्रवक्ता, प्रभासाक्षी जैसी कई वेबसाइटें हैं, जो समाचार सेवाएँ देती हैं।

वेब मीडिया का बढ़ता विस्तार देख यह समझना सहज ही होगा कि इससे कितने लोगों को रोजगार मिल रहा है। मीडिया के विस्तार ने वेब डेवलपरों एवं वेब पत्रकारों की मांग को बढ़ा दिया है। वेब मीडिया किसी अखबार को प्रकाशित करने और किसी चैनल को प्रसारित करने से अधिक सस्ता माध्यम है। चैनल अपनी वेबसाइट बनाकर उन पर ब्रेकिंग न्यूज, स्टोरी, आर्टिकल, रिपोर्ट, वीडियो या साक्षात्कार को अपलोड और अपडेट करते रहते हैं। आज सभी प्रमुख चैनलों (आईबीएन, स्टार, आजतक आदि) और अखबारों ने अपनी वेबसाइट बनाई हुई हैं। सूचनाओं का डाकघर कही जाने वाली संवाद समितियां जैसे यूएनआई, पीटीआई, एएफपी और रायटर आदि समाचार तथा अन्य सभी सेवाएं आनलाइन देती हैं। इनके लिए पत्रकारों की नियुक्ति भी अलग से की जाती है। मीडिया घराने अब केवल प्रिंट माध्यम का काम जानने वालों को नौकरी नहीं दे रहे। अब वे न्यूज लिखने की कला के अलावा कैमरे का उपयोग करने में निपुण और वेब माध्यम की जरूरतों को समझने वाले मीडियाकर्मियों की भर्ती कर रहे हैं। उनका लक्ष्य आने वाले समय में अखबार के बजाय वेब के जरिये लोगों तक पहुंचना है।

वस्तुतः अखबारों ने जो उपलब्धियां हासिल की है, उसे पाने में उन्हें 150 से 200 साल लगे हैं। इलेक्ट्रोनिक माध्यम को भी लम्बा वक्त बीत गया है। वेब मीडिया ने बहुत कम समय में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है। वेब मीडिया नई दुनिया का मीडिया बन कर उभरा है। चैनल्स पर जरूरी नहीं कि आप जब फुर्सत हो तब आपकी रुचि की खबरें आ रही हों। अखबार भी एक निश्चित समय और ढाँचे से बंधा होता है। लेकिन, वेब मीडिया ने तो क्रांति कर दी है। हम जब चाहें, जहां चाहें, अपने अनुसार खबरें पढ़ सकते हैं। देश के कई बड़े मीडिया समूहों ने इस दिशा में काम शुरू कर दिया है। इस दौर में प्रिंट, टीवी और वेब तीनों ही माध्यम मोबाइल एप्लीकेशन के बढ़ते जाल से जुडऩे के लिए तत्पर हैं। बदले समय और बदली रुचि में हरेक अखबार, टीवी चैनल

की यह जरूरत बन गई है कि सारी खबरों को पाठ के अलावा ऑडियो-वीडियो रूप में वेब पर लाया जाए। बदले माहौल में, खासकर कामकाजी युवाओं के पास इतना समय नहीं है कि वे अखबार को बैठकर पढ़ें या टीवी के सामने न्यूज जानने के लिए बैठ रहें और अपनी पसंद की खबरों का इंतजार करें। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2020 तक देश की 64 फीसदी जनसंख्या कामकाजी वर्ग की होगी, जिसका लक्ष्य कम समय में तेजी से सूचनाएं जानना होगा। वेब मीडिया इस दिशा में कारगर सिद्ध हो रहा है।

वेब मीडिया के विस्तार में मोबाइल की अहम भूमिका दिखाई दे रही है। शहरों, कस्बों और गांवों तक मोबाइल ने अपनी पहुंच बना ली है। सस्ते स्मार्ट फोन आपको आबादी के बड़े हिस्से के हाथों में देखने को मिल जाएंगे। मोबाइल खासकर स्मार्ट फोन के आने के बाद लोगों की आदतों में तेजी से बदलाव आया है। इंटरनेट कनेक्शन के माध्यम से वे चलते-फिरते, आफिस में काम करते अथवा कहीं भी, कभी भी समाचार जान सकते हैं, अपने मनपसंदीदा कार्यक्रम को देख या सुन सकते हैं। कई गांवों तक अखबार नहीं पहुंच पाए हैं लेकिन मोबाइल, टेबलेट और नेटबुक ने अपनी पहुंच बनाकर लोगों को खबरों के संसार से जोड़ दिया है। इस तरह, एक अखबार, टीवी चैनल या रेडियो स्टेशन की पहुंच की एक सीमा होती है और वह क्षेत्र विशेष में ही अपनी पहुंच बना पाते हैं जबकि वेब मीडिया में ऐसा नहीं है। हम दुनिया के किसी भी कोने में हों, लेकिन मनचाही सूचनाओं को अपनी मनचाही भाषा में सहजता से पा सकते हैं। आज वेब मीडिया कई दृष्टियों से प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक पर भारी पड़ता जा रहा है।

अखबार तक आम आदमी को बात पहुंचाने के लिए पत्र लिखने होते हैं या ईमेल करने होते हैं जिसके सही समय पर प्रकाशन की कोई गारंटी नहीं है। टीवी चैनल केवल अपनी बात ही कहते हैं वहां अपने दर्शकों से सीधे फीडबैक की कोई सुविधा नहीं है, जबकि वेब मीडिया में उपयोगकर्ता किसी समाचार को पढ़ने या कार्यक्रम को देखने के बाद तत्काल अपनी टिप्पणी दे सकता है और वह उसी समय प्रकाशित हो जाती है। यह माध्यम सीधे अपने उपयोगकर्ता से संवाद स्थापित करता है। उपयोगकर्ता स्वयं रिपोर्टर की भूमिका निभा सकता है। वह अपने आसपास की घटनाओं की जानकारी तत्काल वीडियो, ऑडियो या टैक्स्ट के माध्यम से उपलब्ध करा सकता है और पूरी दुनिया उसे तत्काल जान सकती है।

वेब मीडिया में स्पेस की कोई समस्या नहीं है। जबकि, एक अखबार जो आठ से बीस-चौबीस पेज का निकलता है, हर तरह की न्यूज और व्यूज के लिए निश्चित जगह रखता है। इस वजह से अनेक समाचार-विचार प्रकाशन से वंचित रह जाते हैं। टीवी चैनल में तो यह समस्या इससे भी बड़ी है। वहाँ हम देखें तो एक चैनल कई-कई घंटे तक कुल जमा पांच से छह खबरों से खेलते रहते हैं। इन खबरों का भी पूरा कवरेज नहीं होता या किसी मसले का गहराई से विश्लेषण नहीं किया जाता। दूसरी ओर वेब में स्पेस की कोई दिक्कसत नहीं होती। यहां दो लाइन से लेकर हजारों लाइन तक की खबरें जारी की जा सकती हैं। इन समाचारों को अधिक आकर्षक एवं

प्रामाणिक बनाने के लिए फोटो एवं वीडियो का साथ ही उपयोग किया जा सकता है। आप एक टीवी चैनल की तुलना में कहीं तेज गति से यहां ब्रेकिंग न्यूज दी जा सकती है। टीवी चैनल एक रिपोर्ट को शूट कर जब तक उसका प्रसारण करे, वेब मीडिया में उससे कई गुना तेजी से पूरी खबर को दुनिया के सामने पेश किया जा सकता है। कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं की सूचना जितनी तेजी से इस माध्यम से दी जा सकती है, वह मीडिया के अन्य किसी भी रूप से संभव नहीं है।

वेब मीडिया भूमंडलीकरण का सशक्त औज़ार बन कर उभरा है। इसने सूचना-संचार के साथ उपयोगकर्ताओं की सेवा-सुविधाओं सहित कई दिशाओं में अहम भूमिका निभाई है। आज मनोरंजन सुविधाएं, पर्यटन, होटल बुकिंग, रेल-हवाई टिकट, बैंकिंग-बीमा सेवाएं, शॉपिंग, शिक्षा, कारोबार, जॉब, स्वास्थ्य, शादी-विवाह – ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जो वेब मीडिया के दृष्टिपथ में न हो। वेब मीडिया की वजह से हम न केवल अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा कर पा रहे हैं, बल्कि हर किसी को जानने, समझने के लिए हजारों किलोमीटर की यात्रा, समय, अनावश्यक श्रम और व्यय से बचकर त्वरित गति से बहुत से कार्य निपटा पा रहे हैं।

समय के साथ ही हिंदी संचार माध्यम भी बदलते रहे हैं। हिंदी के पहले पत्र उदंत मार्तण्ड का प्रकाशन (30 मई, 1826) हुआ, तब हिंदी की पत्रकारिता केवल समाचार-पत्रों तक सीमित थी। तकनीक के विकास ने हिंदी पत्रकारिता के क्षितिज का विस्तार किया और आज इलेक्ट्रोनिक और वेब मीडिया के विविध रूपों में हिंदी का वर्चस्व बढ़ा है। भाषायी पत्रकारिता के कथित दायरे से निकल कर और उससे मुक्ति पाकर हिंदी का वेब मीडिया आज स्वतंत्र और प्रभावशाली है। वह बदलाव को दिशा देने की अपार क्षमता हासिल कर चुका है। यह भारतीय मीडिया का केंद्र बनाता जा रहा है। हिंदी संचार माध्यम वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में अपनी विलक्षण पहचान और हैसियत बना चुके हैं। ये भूमंडलीकरण के हमराह और संवाहक हैं। जरूरी है कि हम हिन्दी संचार माध्यम की सामर्थ्य को पहचानें और उनकी विविधमुखी प्रगति के लिये प्रयत्न करें। विश्वव्यापी सूचना-क्रांति में वही भाषा टिक सकती है, जो स्वयं को विस्तार दे और संकीर्ण न हो, हिन्दी इन प्रतिमानों पर खरी उतरती है।

हिन्दी अचानक नहीं, सदियों- दर- सदियों से इस देश को एक किए हुए है। राष्ट्रभाषा हिन्दी को हमारे वीर सेनानियों ने आजादी लाने का हथियार बनाया था और हिन्दी संचार माध्यमों ने उसे विशिष्ट गति और लय दी थी। आज यह भाषा दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है। देश-दुनिया के विविध क्षेत्रों में हिंदी का परचम लहरा रहा है। लोकप्रिय सिनेमा, पटकथा लेखन, सिने गीत, अधुनातन संचार माध्यमों से लेकर ब्लॉगिंग और माइक्रो ब्लोगिंग आदि के जरिये यह दूर- दूर तक अपनी पहुँच बना चुकी है। इन सभी क्षेत्रों में विश्व पटल पर हिन्दी के बदलते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए व्यापक विमर्श एवं मैदानी प्रयासों की दरकार है।

अपने विशाल शब्द भण्डार, वैज्ञानिकता, शब्दों और भावों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति के साथ ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में अपनी उपयुक्तता एवं विलक्षणता के कारण आज हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में सर्वत्र मान्यता मिल रही है। सूचना और प्रौद्योगिकी के इस युग में हिन्दी को नव्यतर वैज्ञानिक उपकरणों के साथ गतिशील होना होगा। इसकी सौ प्रतिशत अधिकारिणी हिन्दी है भी। संचार माध्यमों में हिन्दी के मानक रूप के साथ अनेकानेक बोली रूपों का समन्वय उनकी शक्ति बना है।

पाठ्य, श्रव्य और दृश्य-श्रव्य- त्रिविध माध्यमों के समकालीन परिदृश्य को देखें तो आज हिन्दी सहित सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं की सामर्थ्य और संभावनाएँ तेजी से उजागर हो रही हैं। वेब मीडिया की जरूरतों ने इन भाषाओं के रूढ़ और प्रचलित रूपों को बदलाव के लिए तैयार किया है, इन्हें माध्यम की प्रकृति और जनसामान्य के प्रयोजनमूलक संदर्भों की अनुकूलता में ढाला है। ऐसे में विभिन्न भाषाओं से जुड़े शुद्धतावादियों की ओर से चिंताएँ भी जाहिर की जा रही हैं, लेकिन हमें याद रखना होगा कि हिन्दी और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाएँ पिछले एक हजार वर्षों से तमाम तरह के प्रतिरोधों के बीच से गुजरने के बावजूद अपनी जमीन पर मजबूती से खड़ी हुई हैं। हिन्दी में उतरे शुरूआती न्यूज चैनलों की हिंगलिशनुमा भाषा को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है, जो ज्यादा समय तक टिक न सकी। इस तरह के कृत्रिम भाषा रूप कई क्षेत्रों में महज प्रयोग बनकर रह गए, उन्हें स्वयं जन ने अस्वीकार कर दिखाया।

हाल के दशकों में देश-विदेश के बड़े-बड़े मीडिया घरानों ने हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में उतरने की जो तेजी दिखाई है, वह अकारण नहीं है। इसके पीछे भारतीय भाषाओं का विराट बाजार है। खास तौर पर हिन्दी के भाषिक समुदाय को इन दिनों नई परिभाषा, नई परिधि मिल रही है। यह अब केवल पचास करोड़ से अधिक मातृभाषियों की ही भाषा नहीं है, देश-विदेश के पच्चीस करोड़ से अधिक लोग ऐसे हैं, जो हिन्दी का व्यवहार करते हैं या इसे दूसरी भाषा के रूप में अपनाए हुए हैं। हिन्दी-उर्दू को मिलाकर यह आँकड़ा विश्व की सवार्धिक बोली जाने वाली भाषाओं में चीनी के बाद दूसरे क्रम पर आ जाता है। जाहिर है कि हिन्दी की इस व्याप्ति और प्रभाव को अधुनातन संचार माध्यमों ने गहराई से अंगीकार ही नहीं किया है, उसकी पहुँच को और बढ़ाया भी है। हिन्दी की नई संभावनाएँ किसी न किसी रूप में उसकी व्यापक एवं सावर्जनीन शब्दावली के सामर्थ्य पर ही मूर्त हो रही हैं। हिन्दी ने जहाँ एक ओर शास्त्रों की भाषा संस्कृत से प्रेरणा ली है, वहीं यह लोकभाषाओं से लेकर अरबी-फारसी और अंग्रेजी के आमफहम शब्दों को आत्मसात करती हुई आगे बढ़ी है। इसीलिए मीडिया जिस भाषा रूप को अपनाता है, वह हिन्दी का किताबी रूप न होकर उसका सम्प्रेषणीय या व्यावहारिक रूप होता है। हिन्दी ने यदि अरब देशों में अपनी पहुँच बढ़ाई है, तो वह इसी शब्दावली के कारण संभव हो सका है। वेब मीडिया पर छाई हिन्दी को केवल भाषाई संस्कार के एकांगी नजरिये से ही नहीं देखा जाना

चाहिए। वेब मीडिया की हिन्दी ने देश, धर्म और नस्ल की दीवारों को तोड़ने का ऐसा करिश्मा कर दिखाया है, जो अपूर्व है।

वर्तमान में विदेशों से 50 से अधिक पत्र-पत्रिकाएं नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं। इनमें से अधिकांश के वेब संस्करण उपलब्ध हैं। विदेशों से प्रकाशित पत्रिकाओं में प्रमुख हैं- कर्मभूमि, ई विश्वा, अन्यथा, हिन्दी जगत, हिन्दी बालजगत एवं विज्ञानप्रकाश (अमेरिका), भारत दर्शन (न्यूजीलैण्ड) , वसुधा (टोरंटो-कनाडा), सरस्वती पत्र, (कनाडा), अभिव्यक्ति, अनुभूति(संयुक्त अरब अमीरात), स्पैल दर्पण(ओस्लो- नोर्वे), पुरवाई (ब्रिटेन), वसंत (मोका-मॉरीशस) आदि। शारजाह, संयुक्त अरब अमीरात में निवास करने वाली रचनाकर पूर्णिमा वर्मन पत्रकारिता के साथ ही हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय विकास के कार्यों से जुड़ी हुई हैं। उनके द्वारा संपादित वेब पत्रिकाएँ अभिव्यक्ति तथा अनुभूति अंतर्जाल पर प्रतिष्ठित होकर पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी हैं। ये हिन्दी वेब पत्रिकाएं हिन्दी के क्षेत्र में खाड़ी देशों की एक बड़ी उपलब्धि है, जो विश्व में प्रतिमाह हजारों लोगों द्वारा लगभग सवा सौ देशों में पढी ज़ाती हैं। अभिव्यक्ति व अनुभूति www.abhivykti-hindi.org तथा www.anubhuti-hindi.org के पते पर इंटरनेट पर निःशुल्क उपलब्ध हैं। इन पत्रिकाओं की संरचना सही अर्थों में अंतरराष्ट्रीय है। इनका प्रकाशन और संपादन संयुक्त अरब अमीरात से, टंकण कुवैत से, साहित्य संयोजन इलाहाबाद से और योजना व प्रबंधन कनाडा से होता है।

जहाँ तक बात प्रिंट पत्रकारिता से लेकर इलेक्ट्रोनिक और वेब मीडिया के अधुनातन परिदृश्य में भाषाई बदलाव की है, यह साफ जाहिर है कि वे भाषायी मिश्रण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। कई मीडियाविद इसे उचित मानते हैं, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि इस तरह के कृत्रिम मिश्रण के अपने निहितार्थ हैं। इस प्रकार की कृत्रिम भाषा न तो हिन्दी के लिए कल्याणकारी है और न अंग्रेजी के लिए। मीडियाकर्मी या सिनेकार जब इस तरह की भाषा का इस्तेमाल करते हैं तो उनके सामने व्यावसायिक हित महत्त्वपूर्ण होते हैं। उनका लक्ष्य बड़े शहरों का नवधनाढ्य और युवावर्ग होता है। मीडिया में भाषाई मिश्रण के छुपे हुए एजेंडे को भूलकर कई मीडियाविद इस बात को तरहीज दे रहे हैं कि हिन्दी अख़बारों से लेकर वेब मीडिया में प्रसारित ख़बरों और परिशिष्टों के शीर्षक अंग्रेजी में होने लगे हैं। इस दौर में कई लोग इस भ्रम को भी फैला रहे हैं कि अंग्रेजी हमारे आज की भाषा है और हम इसके साथ पूरी दुनिया को उपनिवेश बनाने जा रहे हैं। शायद वे भूल जाते हैं कि भारत में अंग्रेजी की वर्चस्वशाली उपस्थिति के रहते खुद हम ही नए ढ़ंग की औपनिवेशिक गुलामी में जी रहे हैं। आजादी के पहले हम राजनीतिक गुलामी को भोग रहे थे, जो अब आर्थिक-सांस्कृतिक-भाषायी गुलामी में तब्दील हो गई है। वस्तुत: भाषाई मिश्रण की मूल समस्या विविध भाषाओं के शब्दों के सायास और अनुपातविहीन मिश्रण की है। भाषाई प्रवाह में हुए सहज मिश्रण तो सदियों से स्वीकार्य रहे हैं। फिर भारतीय भाषाओं के अखबारों की आसमान छूती

प्रसार संख्या से यह तो जाहिर हो ही गया है कि अंग्रेजी इस देश के महज दो प्रतिशत लोगों की ही भाषा है और भाषायी अखबार अंग्रेजी पत्रों से कमतर नहीं हैं।

सूचना- संचार प्रौद्योगिकी के बहुआयामी विकास और विस्तार के चलते चौबीसों घंटे चलने वाले सैकड़ों हिंदी टीवी चैनलों, एफएम रेडियो, प्रसार भारती के एक सौ स्टेशनों, सामुदायिक और इंटरएक्टिव रेडियो, नित नए होते वेब और सोशल मीडिया के दौर में हिंदी संचार माध्यमों का क्षेत्र बहुत बढ़ गया है। इस विस्तार के साथ ही बहुत-सी नई चुनौतियां भी खड़ी हुई हैं। इसमें सबसे बड़ी चुनौती उनकी भाषा है। पत्रकारिता एवं जनसंचार के क्षेत्र में हिंदी व्याकरण और देवनागरी लिपि के प्रयोग सम्बन्धी समुचित ज्ञान के अभाव में कई प्रकार के अशुद्ध प्रयोग दिखाई दे रहे हैं। इसी प्रकार शुद्ध उच्चारण, सर्वस्वीकृत और परम्परागत वर्तनी के ज्ञान का अभाव, हिंदी के लिंग, वचन, कारक, क्रिया, संधि आदि की व्यवस्था एवम् शब्द और वाक्य-रचना के नियमों की जानकारी न होना, शब्दों के उच्चरित और मूल रूप में अंतर का ज्ञान न होना, अंग्रेजी वर्तनी का प्रभाव, संयुक्ताक्षरों के लिपि-चिह्न विषयक ज्ञान का अभाव, प्रूफ़ शोधन की कमी आदि कई कारक-तत्त्व हैं, जिनसे पत्रकारिता की भाषा अशुद्धि और अराजकता का शिकार हो रही है। संचार माध्यमों में प्रायः होने वाली अशुद्धियों में प्रमुख हैं - कि की जगह की का प्रयोग, या इसके विपरीत, ड़ की जगह ड, या ढ़ की जगह ढ जैसे-पड़ोस, पढ़ाई, हड़ताल आदि में, मैं, में और नहीं की बिंदी छोड़ देना, है की जगह हैं या इसके विपरीत, बिंदु (अनुस्वार) की जगह चन्द्रबिंदु (अनुनासिक) का प्रयोग या इसके विपरीत, जहाँ नुक़्ता नहीं लगता, वहाँ नुक़्ते का प्रयोग आदि। बहुधा बहुवचन संबोधन में अनुनासिक प्रयोग दिखाई दे रहा है, जो उचित नहीं है। यथा आओ बच्चों! तुम्हें दिखाएँ। इसके स्थान पर सही होगा- आओ बच्चो! तुम्हें दिखाएँ। इसी तरह रेफ को एक अक्षर पहले लगाना, जैसे आर्शीवाद, अपने की जगह मेरे/तुम्हारे/उसके का प्रयोग जैसे- मैं मेरे घर जा रहा हूँ, तुम तुम्हारे घर जाओ, जबकि सही प्रयोग होगा- मैं अपने घर जा रहा हूँ, तुम अपने घर जाओ। पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाना चाहिए, किन्तु कई हिंदी अख़बार इसे नही मानते। वे रोमन फ़ुलस्टॉप को अपना रहे हैं।

आज हिंदी वेब माध्यम खुद अपनी भाषा गढ़ रहे हैं। इस भाषा के एक नए व्याकरण की रचना का समय आ गया है। हिंदी ने पौने दो सौ साल पहले पत्रकारिता की दुनिया में कदम रखा था, वह आज हिन्दी को विस्तार और असर देने का सबसे बड़ा माध्यम बन गई है। दूसरी तरफ स्थिति यह है कि सुर्खियों की भाषा भले ही अनौपचारिक हो, उसमें हिंदी की बोलियों के शब्दों की जगह तेजी से अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बढ़ रहा है। जैसे मैट्रो, नो मोर, पेटेंट, टेंशन, फ्री, बैन, स्टे आदि। ऐसा नहीं कि हिंदी में इन शब्दों का स्थानापन्न नहीं है या उनका सटीक पर्यायवाची नहीं मिलता, बल्कि अनावश्यक रूप से इन शब्दों का प्रयोग बढ़ रहा है। पहले कभी महानगरीय समाचार-पत्रों में ही अंग्रेजीमय शीर्षक दिखाई देते थे। इन दिनों स्मार्ट के बाद अब डिजिटल इंडिया, या फिर गांवों में नेट, शहर होंगे वाई-फाई जैसे शीर्षक छोटे शहरों तक आम किए जा रहे हैं। संचार माध्यमों में

शुभारम्भ और सप्ताह जैसे बहुप्रचलित शब्दों की जगह लांच और वीक जैसे शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। एक क्षेत्रीय अख़बार का शीर्षक देखिये, पीएम ने किया डिजिटल इंडिया वीक कार्यक्रम को लांच। इन्हें देख प्रतीत होता है कि हिंदी की सामर्थ्य पर संचार माध्यमों का विश्वास उठ गया हो। वहाँ ग्लैमर, बिज़नेस, स्पोर्ट्स, क्लासिफाइड,स्पॉट लाइट,स्टेट जैसे शीर्षक आमफ़हम बनाए जा रहे हैं। इसी तरह एक-दो शब्द ही नही, वरन् कभी-कभी तो पूरी की पूरी पंक्तियाँ अंग्रेजी की होती हैं। जैसे– 'सेफ्टी का रेड सिग्नल', 'वन टू का फोर, फोर टू का वन', 'वर्ल्ड क्लास रेलवे स्टेशन' आदि। ऐसे में जो पाठक अंग्रेजी ज्ञान से वंचित हों, उसके लिए इन सुर्खियों का कोई मतलब नहीं रह जाता। अंग्रेजी के इन शब्दों के इस्तेमाल से जहां दुरूहता बढ़ी है, वहीं हिंदी की अभिव्यंजना क्षमता का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है।

आमतौर पर हिन्दी में बोलचाल में डेढ़-दो हजार शब्दों का इस्तेमाल होता है। इतने शब्दों को हटाकर अगर अधिक से अधिक अंग्रेजी शब्दों को डाल दिया जाएं तो हिन्दी के सिर्फ कारक रह जाएंगे। जैसे, स्टूडेंट्स ने शेयर किये सक्सेस सीक्रेट्स। यह कहना कि यह सब नई पीढ़ी के लिए है, उचित नहीं है, क्योंकि जो आप उन्हें पढ़ा रहे हैं, वही वे पढ़ रहे हैं। ऐसा भी नहीं है कि उन्हें हिन्दी के शब्द समझ नहीं आते। यहाँ एक सवाल खड़ा होता है कि हिन्दी भाषा को कहीं मीडिया ही न मार डाले, क्योंकि इसमें अब छोटे-बड़े सब शामिल होते जा रहे हैं। हिंदी के बड़े मीडिया घराने तो इस अभियान को काफी पहले प्रारंभ कर चुके थे। अब आधुनिकीकरण की दौड़ में खुद को पिछड़ा समझ आंचलिक पत्र भी उनका अनुकरण करने पर प्रवृत्त हो रहे हैं। संस्कृत मूल के या तद्भव अथवा संकर शब्दों से मीडियाकर्मी अब बचने लगे हैं और सीधे अंग्रेजी पर्यायों का इस्तेमाल कर रहे हैं। एक समय इतनी कोशिश बची हुई थी कि अंग्रेजी शब्द से नहीं, उसके अनुवाद से काम चलाया गया। धीरे-धीरे ये प्रयास निस्तेज होने लगे। बदलते दौर में मीडियाकर्मियों के सामने यह तथ्य उजागर होने लगा है कि इन माध्यमों में जिस व्यक्ति ने पूँजी निवेश किया है, वही तय करेगा कि क्या प्रसारित होगा, किस तरह की भाषा और किन तस्वीरों के साथ प्रसारित होगा। पूरी योजना ऊपर से मिलेगी, मीडियाकर्मियों को सिर्फ उसका पालन करना है। आज स्थिति यह हो गई है कि लोगों को पता भी नहीं चलता और उन्हें लगता है कि अंग्रेजी शब्दों के इस्तेमाल किसी भाषा में होने वाली ऐतिहासिक प्रक्रिया है, जबकि ऐसा है नहीं। हिन्दी के अधिकांश माध्यमों में यह परिवर्तन हिन्दी के प्रति रूखेपन और आत्महीनता का भाव रखते हुए जान-समझकर किया जा रहा है।

हिंदी पत्रकारिता के पुरोधा बाबूराव विष्णु पराड़कर ने कभी मीडिया की भाषा को आमजन-मजदूर, अशिक्षित या अल्प शिक्षितों की भाषा बनाने का विचार दिया था, इसके साथ ही, वह व्याकरण या शब्द-रचना को भ्रष्ट भी नहीं होने देना चाहते थे। वैश्विक स्तर पर कई लोग व्याकरण को बाध्यकारी न मानकर, यह मानने लगे हैं कि संदेश पहुँचना चाहिए, व्याकरण जरूरी नहीं है। इस प्रकार व्याकरण को न मानने वालों की मीडिया में तादाद बढ़ी है, किंतु इससे एक तरह की अनुशासनहीन भाषिक संरचना विकसित होने का खतरा बढ़ रहा है।

पत्रकार राजकिशोर ने इस विडम्बनाग्रस्त स्थिति को देखकर लिखा है, जो लोग हिंदी के उच्च प्रसार संख्या वाले दैनिक पत्रों में काम करते हैं, वे हिंदी की दुकान लगभग बंद कर चुके हैं और अंग्रेजी के हाथों लगभग बिक चुके हैं। लेकिन इसमें उनका कसूर नहीं है। जब मालिक लोग हिंदी पत्रकारिता का कायाकल्प कर रहे थे (वास्तव में यह सिर्फ काया का नहीं, आत्मा का भी बदलाव था), उस वक्त काम कर रहे हिंदी पत्रकारों ने अगर उनके साथ आज्ञाकारी सहयोग नहीं किया होता, तो उनमें से प्रत्येक की नौकरी खतरे में थी। आज भी कुछ घर-उजाड़ू या नए फैशन के स्वर्णपाश में फँसे हुए पत्रकारों को छोड़ हिंदी का कोई भी पत्रकार अंग्रेजी-पीड़ित हिंदी अपने मन से नहीं लिखता। उसे यह अपने ऊपर और अपने पाठकों पर सांस्कृतिक अत्याचार लगता है। वह झुँझलाता है, क्रुद्ध होता है, हँसी उड़ाता है, कभी-कभी मिल-जुल कर कोई अभियान चलाने का सामूहिक निश्चय करता है, लेकिन आखिर में वही ढाक के तीन पात सामने आते हैं और वह अपना काम दी हुई भाषा में संपन्न कर उदास मन से घर लौट जाता है।

हिंदी का वैशिष्ट्य उसके समावेशी चरित्र में है। वह सदियों से अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी सहित कई भाषाओं के शब्दों को आत्मसात् करती आ रही है। आजादी के बाद कुछ दशकों तक हिंदी, अंग्रेजी शब्दों के अपने प्रतिशब्द बनाती रही। सिनेमा, बजट, टिकट, मोटर, बैंक, चैक जैसे कई शब्द सीधे ले लिए गए, क्योंकि ये हिंदी के प्रवाह में घुल-मिल जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि 1980-90 के दौर में जनसाधारण के बीच हिंदी का प्रयोग करनेवालों में सांस्कृतिक थकावट आ गई और इसी के साथ हिंदी की शब्द निर्माण क्षमता पर आशंका के बादल छाने लगे। दूरदर्शन जैसे अपवादों को छोड़ दें अधिकतर टीवी चैनलों में उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है जो शुद्ध हिंदी के प्रति सरोकार रखते हैं। प्रायः ऐसे व्यक्तियों को लिया ही नहीं जाता। ले लेने के बाद उनसे माँग की जाती है कि वे ऐसी हिंदी लिखें और बोलें जो दर्शक की समझ में आए। इस हिंदी का शुद्ध या टकसाली होना जरूरी नहीं है। यह शिकायत कम पढ़े-लिखे लोग भी करने लगे हैं कि अख़बारों से लेकर टीवी के परदे और वेब मीडिया पर जो हिंदी आती है, वह अकसर अशुद्ध और अमानक होती है। वास्तविकता यह है कि अनेक हिंदी समाचार माध्यमों के प्रमुख ऐसे लोग हैं जिन्हें हिंदी कम ही आती और यह उनके लिए शर्म की नहीं, गर्व की बात है। वे मानते हैं कि माध्यमों की भाषा की उन्हें अच्छी जानकारी है। यही स्थिति ज़मीनी मीडियाकर्मियों की है। चूँकि अच्छी हिंदी की माँग नहीं है और समाचार या मनोरंजन संस्थानों में उसकी कद्र भी नहीं है, इसलिए हिंदी सीखने की प्रेरणा समाप्त हो रही है। हिंदी का यह दुर्भाग्य है कि उसे न जानते हुए भी हिंदी की पत्रकारिता, मीडियाकर्म, सिनेमा- सब कुछ किया जा सकता है।

एक समय जिस हिंदी पत्रकारिता ने राष्ट्रपति, संसद, विधान सभा, सर्वोच्च न्यायालय, जैसे सैकड़ों शब्द बहुप्रचलित किये थे, उसी हिंदी के मीडियाकर्मी अब प्रेसिडेंट, प्राइम मिनिस्टर, एम. एल. ए. जैसे शब्दों का इस्तेमाल करने लगे। इसके साथ ही यह भी हुआ कि हिंदी मीडिया में काम करने के लिए हिंदी जानना आवश्यक

नहीं रह गया। पहले जो हिंदी का मीडियाकर्मी बनना चाहता था, वह साहित्यिक और भाषायी संस्कार ले कर आता था। अब यह जरूरी नहीं रहा।

इस समय सब ओर एक अपठित या अर्धपठित व्याकरण का माहौल है। इस पर भी जोर दिया जा रहा है कि आम बोलचाल की भाषा को ही मीडिया की भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जाए। यहाँ तक कि क्षेत्रीय भाषाएं भी अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं से बहुत से शब्द लगातार ले रही हैं। फिर मीडिया के जरिए सामग्री को तुरंत परोसने के उतावलेपन में भाषा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता बहुत पीछे चली गई है। ऐसे में, हिंदी के अपने समृद्ध शब्द भंडार से उपयुक्त शब्द तलाशने की फुरसत किसके पास है। मीडिया की भाषा हमेशा बहुत मेहनत और सजगता से गढ़ी हुई भाषा होती है, जिसका उद्देश्य अपनी बात सभी वर्गों के अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाना होता है। यह लक्ष्य मीडिया से ओझल होता जा रहा है। मीडिया की हिंदी को गढ़ने में अनेकानेक लोगों की कई दशकों की साधना रही है। अब भाषा के गलत प्रयोगों की भरमार कभी, कहीं भी देखी जा सकती है। एक दौर में हिंदी के प्रतिष्ठित अख़बार और चैनल आम पाठकों को भाषायी संस्कार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। अब दुर्भाग्य की स्थिति यह है कि भाषायी संस्कार या वर्तनी के मानकीकरण जैसी बातों की चर्चा तक नहीं होती। कई बार पर्याप्त सामग्री न होने के कारण हिंदी के मीडियाकर्मी अंग्रेजी वेबसाइटों से ही खबर लेकर अनुवाद कर अपना काम चलाते हैं। वे घटनास्थल तक भी नहीं जाकर देखना चाहते कि असली खबर है क्या। कुछ बड़े मीडिया घरानों ने अवश्य संकेत देना शुरू कर दिया है कि हिंदी मीडिया अब अंग्रेजी का पिछलग्गू नहीं है, वह अंग्रेजी से अनुवाद पर आश्रित नहीं है।

जनसंचार माध्यमों पर ज्ञान-विज्ञान संबंधी सूचनाओं और लेखों का अभाव सा है। इंटरनेट पर आज हिन्दी में विज्ञान सामग्री अति सीमित है। इसे विकसित करने की आवश्यकता है। सामान्यतया विषय विशेषज्ञों की हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में लेखन के प्रति रुचि नहीं है। इसके प्रमुख कारण हैं- भाषागत कठिनाई, वैज्ञानिक जगत की घोर उपेक्षा, हिन्दी में लिखे आलेखों, शोधपत्रों को प्रस्तुत करने के लिए मंचों का अभाव, प्रकाशन की असुविधा आदि। वैज्ञानिक एवं तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली का हिन्दी में अब अभाव नहीं है, परन्तु विज्ञान लेखक और पत्रकार इनका समुचित उपयोग नहीं कर रहे हैं और तमाम लोग स्वयं नित नए शब्द गढ़ रहे हैं। इस अराजक स्थिति के कारण वैज्ञानिक विषयों की भाषा का मानकीकरण नहीं हो रहा है। विज्ञान को सरल भाषा में समझना और समझाना बहुत जरुरी है। वस्तुतः विज्ञान संचार का काम सिर्फ सूचना देना भर नहीं, बल्कि वैज्ञानिक सोच पैदा करना है। इस दिशा में भी हिंदी मीडिया सशक्त भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

वेब मीडिया के विकास में अभी भी कुछ बाधाएं हैं। सबसे बड़ी दिक्कत इंटरनेट की दूरस्थ इलाकों में पहुंच न बन पाना, इंटरनेट की स्पीड का धीमा होना और बिजली की कमी है। साथ ही, कंप्यूटर, लैपटॉप या नेटबुक के दाम अभी भी आम आदमी की पहुंच में नहीं है। आम आदमी पहले अपनी जरूरत घर को समझता है

एवं वहां के खर्चों से बचने के बाद वह कंप्यूटर, लैपटॉप या बेहतर स्मार्ट फोन लेने की प्लानिंग करता है। अब बात हो रही है 4जी की, लेकिन असलियत यह है कि देश में 2जी और 3जी का अमल भी ढंग से नहीं हुआ है। यदि यह कार्य तत्परता से होता तो विकास की गति बेहतर रहती। इसके अलावा, वेब में मिल रही सूचनाओं की प्रामाणिकता पर भी सवाल उठते हैं। ऐसी कई वेबसाइटस हैं, जिनमें पुरानी सूचनाएं ही उपलब्ध हैं और इन्हें किसी न किसी कमी की वजह से अपडेट नहीं किया गया। यह भी सवाल उठ जाता है कि जो लिख रहा है वह उस योग्यता का है भी या नहीं। ऐसे में प्रामाणिकता को लेकर काफी मेहनत की जरूरत है। कई बार सही सामग्री खोजने में भी दिक्कत का सामना करना पड़ता है, जिसे आसान बनाना होगा और ऐसे नए सर्च इंजन विकसित करने होंगे जो एक विषय विशेष पर भरपूर सामग्री से भरे हों।

कैरियर की संभावनाओं के हिसाब से वेब मीडिया तेजी से विकसित होता हुआ क्षेत्र है। इस क्षेत्र में कितनी संभावनाएं हैं उसे कुछ यूं भी समझ सकते हैं कि यदि एक दिन के लिए भी गूगल को बंद कर दिया जाए तो क्या स्थिति हो जाएगी, आपको अंदाजा है। आज भी कई वेबसाइट हैं जो व्यावसायिक तरीके से संचालित की जा रही हैं, वहां डेस्क के साथ ही फील्ड में काम करने वाले लोगों की जरूरत है। वेब मीडिया हमें उद्यमी बनने का भी मौका दे रहा है। दो-तीन साथी मिलकर बेहद कम लागत में, महज दो-तीन लैपटॉप, इंटरनेट कनेक्शन और पोर्टल के नाम रजिस्ट्रेशन के साथ ही कुछ रुपयों में अपनी वेबसाइट संचालित कर सकते हैं। गूगल सहित कई उदाहरण हैं, जिनकी शुरूआत बेहद छोटे प्रयास से ही हुई, लेकिन वे आज क्या हैं, हम सब जानते हैं।

यदि हम आय की बात करें तो वेब मीडिया में इसकी स्थिति दिन प्रतिदिन सुधर रही है। सरकारी और निजी कंपनियां गांव-गांव तक अपनी पहुंच बनाने के लिए वेब विज्ञापन का सहारा ले रही हैं। प्रिंट और टीवी चैनल में विज्ञापन की ऊंची दरें और सीमित पहुंच ने विज्ञापनदाताओं का नजरिया बदलना शुरू किया है। प्रिंट एवं टीवी चैनल में विज्ञापन लाने के लिए भी एक पूरी टीम रखनी होती है, लेकिन वेब में एक व्यक्ति खुद ही विज्ञापन के लिए बगैर कहीं गए सिर्फ एक ईमेल के जरिए अप्रोच कर सकता है। गूगल, जेडो, मैनहटन, कोमली जैसी अनेक एजेंसियां हैं जो वेबसाइटों और ब्लॉग के लिए विज्ञापन जारी करती हैं एवं उनके भुगतान सीधे बैंक खातों में करती हैं। केंद्र सरकार और अनेक राज्य सरकारें भी अब वेबसाइटों को विज्ञापन दे रही हैं, जिनसे इनके संचालकों को अच्छी खासी आय हो रही है। यूटयू ब चैनल के माध्यम से अपने वीडियो पर रेवेन्यू पा सकते हैं। इंटरनेट एडवरटाइजिंग ब्यूरो के मुताबिक वर्ष 2011 में इंटरनेट विज्ञापन बाजार का आकार 72.18 अरब डॉलर था, जो वर्ष 2013 में 31.5 फीसदी बढ़कर 94.97 अरब डॉलर पहुंच गया था। इसे आने वाले वर्षों में सवा सौ अरब डॉलर तक पहुंच जाने की उम्मीद है। अखबार में समाचार और विज्ञापन का एक अनुपात है, जिससे ज्यादा विज्ञापन लेने पर पाठकों की संख्या कम होने का डर रहता है, जबकि टीवी चैनल में नियामक संस्था ट्राई ने यह आदेश जारी किया कि कोई भी टीवी चैनल निश्चित अवधि से ज्यादा के विज्ञापन नहीं दिखा सकेगा। इधर वेब

मीडिया में इस तरह की कोई सीमा नहीं है। यहां व्यक्ति की मेहनत और नए आइडिया उसे मनचाही आय दिला सकते हैं। चाहे कंटेट राइटर, रिपोर्टर, एडिटर, ग्राफिक्स निर्माता, मल्टी मीडिया पर्सन, विज्ञापन लेखक सहित किसी भी रूप में व्यक्ति वेब मीडिया में कैरियर चुन सकता है।

स्पष्ट है कि वेब मीडिया के जरिये सूचना-संप्रेषण के लिए मुख्य धारा की वेबसाइटों के अलावा ब्लॉग एवं सोशल नेटवर्किंग साइटों ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। समग्रतः हम कह सकते हैं कि अधुनातन संचार माध्यमों के साथ हमकदम होती हुई हिन्दी निरंतर विश्वव्यापी स्थान बना रही है। भूमंडलीकरण के दौर में प्रगति पथ पर अग्रसर हिन्दी ने वेब मीडिया में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है। विश्वभाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठा दिलाने में मुद्रित और बेव संस्करणों के साथ विश्वभर में विस्तारित वेब मीडिया की अभूतपूर्व भूमिका दिखाई दे रही है। अधिक से अधिक लोगों तक इंटरनेट की पहुंच हो जाने से यह तय है कि वेब मीडिया का भविष्य अत्यंत संभावनावान है। आने वाले समय में यह पूर्णतः विकसित और लोकसंचार का अनन्य साधन सिद्ध होगा। वर्तमान में अपनी भाषा के प्रति अवहेलना के साथ ही दक्षता और आत्मगौरव की कमी हिन्दी वेब मीडिया के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी पैदा कर रही हैं, जिनसे समय रहते मुक्त होने की जरूरत है।

(लेखक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रोफेसर हैं।)

अनुवाद में लिप्यंतरण का ध्वनि पक्ष

प्रो० बी० वै० ललिताम्बा

'अंतरण' अनुवाद का महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। बिना अंतरण की प्रकिया को अपनाए अनुवाद अपना मार्ग तय नहीं कर पाता। 'अंतरण' एक प्रकिया है, जिसमें विषय, वस्तु, शैली, दर्शन, चिंतन आदि कई बिंदु समाविष्ट होते हैं। इनके उद्देश्य की पूर्ति और प्रयोजन की सार्थकता के लिए लिप्यंतरण अनिवार्य होता है।

'अनिवार्य' नामक शब्द भी विशेष संबंधवाची और सार्थक ध्वनि परिणामों से संचित होता है। जैसे कि भाषा सिर्फ एक ध्वनि समूह न होकर एक जाति-विशेष की सांस्कृतिक विशेतषाओं का कवच लेकर संवाहित होती है। अर्थात् 'भाषा' के अंत:स्थल में एक संस्कृति होती है, एक उद्देश्य होता है, एक प्रयोजन होता है और इन्ही बिंदुओं की प्रतिपूर्ति में लिप्यंतरण की सार्थक होती है।

सर्वप्रथम, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा लिप्यंतरण की भूमिका अथवा उनके अंतसंबंधों की चर्चा के कुछ प्रायोगिक उदाहरण द्रष्टव्य है :

'जेट विंग्स' 'जेट एअरवेस' की मासिक मुख पत्रिका के मई 2004 के अंक में दक्षिण भारत की दो सांस्कृतिक विशेषताओं का जिसमें 'भूताराधन' के सांस्कृतिक आचरण का और आंध्र प्रदेश के स्वादिष्ट अचार 'आवक्काई' पर दो शोध लेख हैं, इन दोनों आलेखों में कई शब्दों का लिप्यंतरण हुआ है।

पहले आलेख 'भूताराधन' में कर्नाटक के दक्षिण कन्नड़ जिले में विशेष रूप से आदिवासी तथा जनजातियों से आचारित उस आराधना-पूजा विधान का उल्लेख है। आलेख का शीर्षक 'ए स्पिरिटेड राइट' A Spirited rite देने के बावजूद आचरण को परिचित कराने के उद्देश्य से bhootaradhane (भूताराधने) लिप्यंतरण से बात शुरू होती है। इस शब्द के अंतिम स्वर 'ए' की तरफ ध्यान देने से पता चलता है कि अंग्रेजी अथवा हिंदी भाषा की ध्वनियों के लिए यह अपरिचित अंतिम स्वर है, 'आराधना' कन्नड़ में 'ए' में संवाहित होता है। पूरे आलेख में कई शब्द तथा ध्वनियाँ इसी तरह लिप्यंतरित होकर अंग्रेजी के इस आलेख का अंगभाग बनी हैं। जैसे 'Konkan', 'Vaishnav', 'Bhuta (Sprit)', 'Panchabuta', 'Theyyam' (उत्तर केरल में प्रचलित भूताराधन का एक प्रकार), 'Buddhist yakshas-yakshis-Salabhan-Jikas'—The Yakshis considered as tree spirits,' 'Buddhist Gateways Known as Torana' आदि कई मूल शब्दों का परिचय लिप्यंतरण कर दिया गया है। 'Tulu' भाषा का परिचय देने के लिए, 'Grantha Script' लिपि को

परिचित कराने के लिए, और इसी तरह वहाँ के जाति-विशेष का परिचय ‘Srvalli Brahmins’ कहकर लिप्यंतरित है।

पूर्व में उल्लिखित अनुसार ‘भूताराधन’ का संपूर्ण विवरण इस शोध आलेख में प्राप्त होता है। वे सभी शब्द उस आचरण से संबंधित, स्थानीय भाषा के पारिभाषिक शब्द है। इस कारण ‘Paddanas’, ‘Nema’, ‘Ayana’, ‘Rajan deva’, ‘Kende save’ (केंड = अंगारे, seve = serve), ‘Vishnumurti bhutas’, ‘Panjurli’, ‘Mysandya or Nandikone’ (the Gopins or bhutas), ‘Kolam or ritual floor’, ‘Dekke Bali’ (बलि), linga (Phallus), ‘Brahma Mandala’, ‘Brahme, Naha, Bobbaraiya, Raktheswari’, ‘Tulunadu’, ‘Annappa bhuta’, ‘Pingara’ (Arecanut) आदि कई शब्दों के लिप्यंतरण का माध्यम अपनाकर उस पूजा विधान अथवा आराधना को जीवंत अथवा प्राणवान बनाने की कोशिश यहाँ की गई है।

उपरोक्त लिप्यंतरण शब्दों में से कुछ नामवाची शब्द है; उन नामों के साथ एक विशिष्ट अर्थ ध्वनि का संकेत है, अथवा उनके साथ जुड़ा हुआ एक इतिहास या कहानी है, और साथ ही उसकी संस्कृति के गर्भ में निवास करते उच्च आदर्श और औदार्य आदि का परिचय है। इसके अलावा आचरण का विवरण, उन भूतों के विभिन्न भेद और अर्थ की कहानी है। जहाँ कही अंग्रेजी में तुलनात्मक अर्थ व्याख्या उपलब्ध हो सकती है वह विवरण पर्यायवाची शब्दों से या व्याख्या द्वारा बताने की चेष्टा की गई है। प्रमुख इतना ही कि मूल शब्दों के अंतरण की सार्थकता के लिए लिप्यंतरण का माध्यम अपनाया गया है।

इसी प्रकार, अगला आलेख ‘Piquant Palates’, ‘avakaya’ (आवक्काय-आवा-सरसों, काई-कच्चा फल-यहाँ विशेष रूप से केरी के लिए प्रयुक्त शब्द है।) को तीखा और जायकेदार बनाता है। इस आलेख में आंध्र के विशिष्ट अचार का ही परिचय दिया गया है, मगर यहाँ पर भी लिप्यंतरण का माध्यम भरपूर अपनाया गया है। ‘Vadiyalu’ शब्द की तरफ ध्यान देने पर पता चलता है, हिंदी के ‘बड़ी’ शब्द का ध्वनि साम्य देखने पर ‘व’ का ‘ब’ तथा ‘ड़ी’ और ‘डि’ का ‘दीर्घ-ह्रस्व’ निकटवर्ती भाषाओं की तुलनात्मकता को दर्शाता है। किंतु जहाँ ‘अलु-alu’ बहुवचन सूचक प्रत्यय की बात आती है, वह तेलुगु की ध्वनिवाचक विशेषता है, और अंग्रेजी भाषा के लिए नितांत नई ध्वनि है; तथा सांस्कृतिक/भावात्मक संबंधों के निर्माण की दृष्टि से वहाँ ध्वनि यानी या इतर भावी आगंतुक को प्रादेशिक संस्कृति के निकट लाने में समर्थ होती है।

आंध्र में ‘रेड्डी’ समुदाय बहुत बड़ी संख्या में रहता है, और ‘रेड्डी’ शब्द भारत की किसी दूसरी भाषा में उपलब्ध नहीं है, याने एक समूह विशेष को इंगित करता यह शब्द हर स्थान और भाषा में प्रयुक्त होते या उच्चरित होते समय आंध्र मूल को ही ध्वनित करता है। जैसे इस आलेख में प्रयुक्त ‘वासि रेड्डी-Vasi Reddy’ शब्द, (

कुछ 'रेड्डी' लोग जहाँ ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके है, अपने ईसाई नाम के साथ रेड्डी, उदाहरण – रेड्डी चंद्रा फर्नांडीस आदि, शब्द का अवशेष रखते हैं जो व्यक्तिवाचक संज्ञा में रूपांतरित होकर हर भाषा में लिप्यंतरण की मांग करता है।)

इसी तरह नामवाची शब्दों की सांस्कृतिक एवं स्थानीय विशेषताएँ होती है। (भारतीय अंग्रेजी की बात अलग रखने पर विदेशियों के लिए तो ये शब्द पूरी तरह अपरिचित होते हैं।) भारतीय भाषाओं में भी हर स्थान विशेष के साथ वे अपना महत्त्व जताते हैं, जैसे गुजराती के 'बेन', मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र की 'बाई', कर्नाटक – आंध्र में 'अम्मा' – इनको तो हम आदरसूचक प्रत्ययों के अंतर्गत रख सकते हैं, मगर जहाँ 'कांतम्मा' – Kantamma' शब्द का उल्लेख आता है, दक्षिण भारतीय का ध्वनिसूचक होता है। अचार बनाने के लिए भी दैवी-कृपा चाहने की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय देने के लिए यहाँ ग्रह दोष आदि जानकारी लेते हैं 'Panchagam'। (वास्तव में लिप्यंतरण में यहाँ दोष है 'पंचांगम्' बीच में अनुनासिक ध्वनि 'म्' की आवश्यकता थी। 'अम्' दक्षिण भारतीय नामवाची प्रत्यय है, तथा लिप्यंतरण के महत्त्व की दृष्टि से यह 'कैलेंडर' का समानवाची मैक्रोलेवल अर्थात् सूक्ष्मताधारक अर्थ में नहीं है।

'फेन बंचेई – Fan Bancheyi' का भी इस आलेख में लिप्यंतरण हुआ है जिसका अर्थ है – पंखा बंद करो। इस लिप्यंतरण के संदर्भ में हमें उद्देश्य अथवा प्रयोजन को लेकर भी चर्चा करना जरुरी होता है। यह एक सामान्य–सी वाक्योक्ति है, किंतु यह आलेख एक यात्री से वाचित होता है , और सामान्य अर्थ में, एक भारतीय गैर-प्रदेश/प्रांतीय यात्री तेलुगु भाषा-शैलियों से परिचित नहीं हुआ करता, ऐसी स्थिति में अंग्रेजी-तेलुगु के मिश्रित भाषा प्रयोग का अस्तित्व उसे आश्वासनदायी होता है। 'Jadi', 'Masala', 'Guntur Merpakayi' (गुंटूर का मिर्च) आदि से यात्री को वस्तु विशेष के निकट पहुँचाने में सहायता होती है। उपर्युक्त दोनों आलेखों में लिप्यंतरण के प्रभूत उदाहरण उपलब्ध होते हैं, हालाँकि ये अनूदित आलेख नहीं हैं, किंतु संदर्भ की सार्थकता इसी में है कि यहाँ अर्थध्वनियों का भाविक अर्थात् भावात्मक अंतरण-अनुवाद संपन्न हुआ है, जिसमें 'लिप्यंतरण' का माध्यम उन्हीं अनुवाद संदर्भों का वहन करता है।

अनुवाद का एक मनोसामाजिक भाषा विज्ञान होता है, जहाँ सामाजिक तथा सांस्कृतिक संबंधों का भावात्मक सन्निवेश होता है। उसी संदर्भ में हम 'Church' शब्द का उल्लेख करते हुए हिंदी में उसके 'चर्च' लिप्यंतरण की विशिष्टता को देख सकते हैं। हिंदी देवी – देवता या आराधना-आचरण से भिन्न तथा विदेशी मूल के आराधना-गृह का उल्लेख करते समय जिस तरह उस शब्द का लिप्यंतरण साधु होता है वह उसे साधु लगता है। 'Bible' के लिप्यंतरण, 'कुरान' के लिप्यंतरण में भी उसके मूल सिद्धांतों की सुरक्षा की ध्वनि संचित होती है।

'लिप्यंतरण' शब्द के उत्तरार्द्ध'अंतरण में परिवर्तन की ध्वनि इंगित होती है। लिप्यंतरण भी 'क्लोनिंग' अर्थात् प्रतिरूप नहीं हुआ करता। हर भाषा की अपनी ध्वनियाँ और ध्वनिशास्त्र की अपनी विशिष्टता होती है। व्यावहारिक क्षेत्र होने से कई अन्य विषय क्षेत्रों के साथ उसका कार्य-व्यापार संचालित होता है। ध्वनिशास्त्र के स्वशासी क्षेत्र की सीमाओं में कई प्रकार के परीक्षणों के साथ ही भाषा की प्रकिया की उलझनों को पहचाना जा सकता है, तथा उसके साथ ही मूलभूत भाषिक विज्ञान के विभिन्न आयामों को तलाश कर एक समग्र ध्वनि सिद्धांत को बनाया जा सकता है।

एक सामान्य व्यावसायिक भाषा का प्रमुख आधार समाज और संस्कृति होती है, तो उस समाज का एक सीमित क्षेत्र होता है, जिसकी सामान्य स्वीकृति से कुछ सामान्य तथा कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ व्यवहार के उद्देश्य से अंगीकृत होती है। भौगोलिक निकटता तथा व्यक्तियों के आवागमन की तीव्रता के साथ ध्वनियों का मिश्रण, नई ध्वनियों का आवागमन भी निर्भर करता है। ध्वनि-ध्वनि सम्मिश्रण-शब्द-शब्दशास्त्र-शब्दों का सम्मिश्रण-वाक्य रूप आदि द्वारा भाषा की कुछ अपनी विशेषताओं का बचाव, तथा नई ध्वनिओं का आगमन आदि भाषा के स्वभाव जन्म तत्त्व होते हैं। अर्थात् लिपि संदर्भ का भाषा प्रयोग के साथ साहचर्य होता है। जैसे 'इडली', 'कचोरी' नामक विशिष्ट खाद्यान्न भिन्न भाषी प्रदेश में पहुँचकर अपने मूल शब्द के अंतरण में 'Idli' के स्थान पर 'Irli' भी हो सकता है।

अंग्रेजी ध्वनि 'A' 'अ' के समीपस्थ न होकर भी कंठ्य ध्वनि होने से 'Lata' एक विदेशी द्वारा 'लोटा' उच्चारित होगा। बंगाली भाषी द्वारा 'लॉतॉ' उच्चारित होगा, वहाँ उर्दू, फारसी, अरबी लिपि में विभिन्न ध्वनि संकेतों के मिश्रण से वह पढ़ जाएगा तथा अंकित होगा। इस प्रकार लिप्यंतरण भी ध्वन्यांतरण अर्थात् अनुवाद का ही अंग होगा।

'अनुवाद' भाषा अनुप्रयोग का क्षेत्र है। सामाजिक क्षेत्र में नाम, संस्कृति, दर्शन, कार्यालयीन और वाणिज्य-व्यापार तथा लोक प्रशासन के कुछ विशिष्ट केंद्र हैं, जहाँ अनिवार्य रूप से शब्दांतरण अर्थात् लेखन-मुद्रण के क्षेत्र में लिप्यंतरण होता है। जैसे सांस्कृतिक व्यवहार विवाह, गौना, शादी, निकाह, मैरेज, वरदक्षिणा, वधू दक्षिणा, बारात, व्रत, उपवास, पूजा विधि, यज्ञ, आहुति जैसी असंख्य संकल्पनाएँ अस्तित्व में हैं, जिनमें तुलनात्मक साम्य को बनाकर भी उन शब्दों का प्रयोग करते समय सांस्कृतिक तालमेल होने से बचना जरुरी होता है। ऐसे स्थानों पर औचित्य को देखते हुए आवश्यक मात्रा में लिप्यंतरण करना होता है।

दार्शनिक साहित्य का अनुवाद करते समय भी संकल्पना को अंतरित करने के लिए कई पारिभाषिक शब्दों को सुरक्षित रखना पड़ता है। इस हेतु भी लिप्यंतरण की भूमिका अनिवार्य है। लिप्यंतरण में ध्वन्यांतरण पूरी मात्रा में नहीं हो पाता। ध्वन्याभास के अवसर भी ज्यादा होते हैं, किंतु मध्यांतर मार्ग के रूप में संकल्पना को

सुरक्षित रखने के उद्देश्य से शाब्दिक लिप्यंतरण अपनाना ही पड़ता है। ‘तपस्या’ ‘Meditation’ नहीं होता, ध्यान के स्वरुप में भी अंतर होता है, उस स्थिति में व्याख्यात्मक लिप्यंतरण से सहायता हो सकती है।

लोक प्रशासन, कार्यालयीन क्षेत्र में कुछ पुरा प्रचलित शब्द जहाँ प्रयोगाधीन भाषा का अंग-भाग हो चुके हैं। जैसे इंजीनियर, सुपरवाइजर आदि शब्द ध्वनि समाहार के साथ लिप्यंतरित होते हैं। इसी प्रकार व्यापार व्यवहार एवं वाणिज्यिक विषय निरंतर सक्रिय एवं भाषा सामान्य वैश्विक विस्तार लिए होते हैं। बैंकिंग उद्योग का ही उदाहरण लेने पर, बैंक शब्द किसी भी भाषा में अनूदित लेकर व्यवहृत नहीं होता, ग्रामीण व्यक्ति के लिए भी उसी शब्द से परिचित कराया जाता है। किंतु निश्चय ही रोमन लिपि में लिखा गया Bank नागरी में ‘बैंक’ नहीं होता, न ही वह बैंक होता है। इन दोनों ध्वनियों के मध्य उच्चरित अधोध्वनि ‘अ’ का नागरी लिपि में अस्तित्व न होने के कारण बैंक में ही वह अंतरित हो सकता है। इसी तरह ‘डिपाजिट’ जमा का समानवाची है, राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के संक्रमण काल की वर्तमान स्थिति में कई स्थानों पर ‘बचत’ के विभिन्न विशेषणों के साथ उसे लिप्यंतरण के समानवाचक शब्दों के साथ-साथ प्रयोग करना जरुरी होता है।

‘Sensex’ शब्द का पर्यायवाची सूचकांक है। लेकिन वाणिज्यिक प्रयोग की इस अवधि में इस अनूदित शब्द की संकुचित सीमा बनी है, जिससे ‘सेनसेक्स’ लिप्यंतरित होकर भाषा सामान्य अर्थात् वैश्विक संप्रेषण में सहायक होता है। व्यापार भाषा प्रयोग का विशिष्ट क्षेत्र होता है। भाषा की इस अनुप्रयुक्ति में प्रयोक्ता स्वयं भाषा वैज्ञानिक होते हैं। अर्थात् भाषा के नमूने प्रयोग के क्षेत्र में अपने आप निर्मित होते हैं। जैसे Carbon-1Kg – 000 अथवा Luxor Oil Paint... इस प्रकार कुछ उत्पादक ब्रेंड, उनको दिए गए नाम, जैसे – Ambuja Cement, Birla White आदि उत्पाद देश के किसी एक निश्चित क्षेत्र तक सिमित न होकर देश के विभिन्न क्षेत्रों में इनका आवागमन-व्यापार होता है। सामान्य व्यापारी और ग्राहक-प्रयोक्ता के लिए स्थानीय भाषा और लिपि से ज्यादा परिचय होता है और ऐसी स्थिति में ये सारे शब्द लिप्यंतरित होकर उपभोक्ता की संपदा बनते हैं।

‘सोयाबीन’ रोमन लिपि में ‘Soyabean’ होता है, वह कोई ‘सेम’ या ‘राजमा’ का पर्यायवाची नहीं होता। इसी तरह राजमा कन्नड़ भाषा क्षेत्र में ‘हुरुळी काइ बीज’ होकर भी वह खाद्य पदार्थ बनाते समय ‘राजमा’ ही बन सकता है, अर्थात् वह पंजाबी खाद्य बनने के लिए वही इंगित अनिवार्य होता है। खेल-कूद भी समाज विज्ञान का ही अंगभाग होता है। उस अवसर पर प्रयुक्त होने वाले कई निर्दिष्ट शब्दों के लिए कोई समानवाची अनूदित शब्द उपलब्ध नहीं होने से लिखते समय लिप्यंतरण अनिवार्य होता है। ‘सिलिमिडान’ इसी तरह का एक लिप्यंतरित शब्द है।

भारतीय भाषाओं में विज्ञान, तकनीकी क्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान आदि के ग्रंथों का आज भी अभाव खलता है। यह सकारण भी है। एक तो इन विषय क्षेत्रों का वैज्ञानिक फैलाव

है तभी ये सभी क्षेत्र निरंतर प्रयोगाधारित भी हैं। अत: इनके आधार रूप में प्रयुक्त भाषा का अपना विशिष्ट स्वरुप होता है। कुछ अक्षर और कुछ शब्दों पर, चिहों पर आधारित होकर ये सभी क्षेत्र अपना कार्य-संपादन करते हैं। व्यवहार-प्रयोग और परिणाम पर आधारित इन विषय क्षेत्रों की भाषा निरंतर सक्रिय होती है तथा प्रयोक्ता और कुछ सीमा तक उपभोक्ता को छोड़कर इस भाषा रूप से अन्य कोई व्यक्ति परिचित नहीं रहता। अत: हालाँकि भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में, वह भी विशेष रूप से छात्रों को दृष्टि में रखकर कुछ ग्रंथों का अनुवाद तथा लिखने की कोशिश की गई है। उक्त बिंदुओं को लिप्यांकन तथा लिप्यंतरण के काम से सुरक्षित रखने की कोशिश की गई है। जैसे a b c के लिए अ ब क देने की कोशिश की गई है, x y z आदि को मूल रूप में ही बचा लिया गया है।

कंप्यूटर जैसे नवविकसित प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में भाषा निर्माण के नए अनुप्रयोग देखने को मिलते हैं। सॉफ्टवेयर, हार्डवेयर के अलावा, विंडोस, प्रोग्राम, फाइल जैसे शब्दों से और उनके स्वरूपों को उपभोक्ता के मन में बिठाया जाता है। इन शब्दों की संकल्पना में अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति है। Windows को सामाजिक क्षेत्र में खिड़की कहा जाता है, किंतु इनका हिंदीकरण व्यवहार के क्षेत्र में संकुचितता का निर्माण कर बाधक होता है। अत: इन शब्दों को उनके मूल रूप में अपनाकर ही प्रयोग में लाया जा रहा है।

अंत में एक विशिष्ट क्षेत्र जहाँ सूचना प्रसारण, मिडिया, जनसंचार की दिशा में भी अनुवाद का विशेष आधार अपना लिया जाता है। जैसे प्रिंट मिडिया में ही राजनीति, अंतरराष्ट्रीय समाचार संग्रह आदि में नामवाची तथा सिद्धांतवाचक शब्दों का अनिवार्य रूप से लिप्यंतरण होता है। वामपंथी सारे कम्युनिस्ट नहीं होते, इसलिए उनका अभिधान उनसे संबंधित विशिष्ट संकेतों से ही अंकित होता है, शब्द भारतीय चाहे अभारतीय हो; भाषा सामान्य को अपनाकर लिप्यंतरित होते हैं। इसी तरह 'विज्ञापन' का अपना संसार और उसकी अपनी विशिष्ट भाषा होती है। विज्ञापनों के उपभोक्ता का पूरा देश और अंतरराष्ट्रीय परिवेश होता है। सीमित दायरे में मेट्रीमोनियल वधु-वर अन्वेषण आदि में प्रांतीय, समूहगत विशेषण होते हैं। उन भाषाई विशेषताओं को दूसरी भाषा की पत्रिका में देते समय कोई पर्यायवाची शब्द उपलब्ध नहीं होता, और न हो सकता है, अस्तु लिप्यंतरण की सीमाओं में बाँधना अनिवार्य होता है।

विज्ञापनों के संदर्भ में एक विशेष बात यह भी होती है कि उसका अनुवाद होकर भी वह अनुवाद नहीं कहलाता। भाषा प्रयोग आकर्षण पर मात्र आधारित होता है, ध्वनि अधिकांश 'अर्थ-धन-व्यापार' आश्रित होती है। भाषा मिश्रण जिसे भाषा विज्ञान में कोड मिक्सिंग कहा जाता है, भी उसका अंग-भाग होता है। इस चमत्कारिक प्रयोग में, अंग्रेजी नागरी में, नागरी कन्नड़ लिपि या किसी अन्य लिपि में या रोमन लिपि में अंकित और अंतरित होकर संप्रेषित करती है।

इस तरह अनुवाद में लिप्यंतरण एक महत्त्वपूर्ण साधन है, उससे बिछुड़कर अनुवादक पंगु होता है और अपने द्वाभाषिक संप्रेषण साधन में असफल होता है।

संदर्भ – ग्रंथ :

1. Jet wings, May, 2004

2. Speech Analysis in Indian Languages, CIIL, Mysore

(लेखिका देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर की तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति की सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं।

प्रस्तुत लेख लेखिका की पुस्तक 'तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद' से लेखिका की अनुमति से प्रकाशित है।)

भारतीयता का प्राण तत्व कन्नड़ संस्कृति

भारतीय संस्कृति के उत्थान में कर्नाटक का योगदान

डॉ. टी जी प्रभाशंकर 'प्रेमी'

भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति है। यह आर्य-द्रविड संस्कृति का संगम हैं। विभिन्न धर्म संस्कृति रहन-सहन, भाषा, कला आदि की समन्वता और सौहार्दता ही भारत की विशेषता है, इसीलिए सुदीर्घकाल से गुलामी को सहते हुए भी उसका मन हृदय अखण्ड रहा है।

कर्नाटक एक समय में दक्षिणात्य भारत ही था। जैसे राजा नृपतुंग के आश्रित कवि भी विजय ने 'कविराजमार्ग' नामक प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ में कहा है- कावेरियिंदमा गोदावरिवरमिर्द नाडदा कन्नडदोक अर्थात कावेरी से गोदावरी नदी तट तक फैला प्रदेश कन्नड। 'कविराजमार्ग' कन्नड साहित्य की पहली कृति जो 800 ई में रची गई। महावीर हनुमान की भमि कर्नाटक प्राचीन काल से वीरों की जन्मभूमि रही है। यहाँ बडे-बडे सम्राट पैदा हुए। बड़े-बड़े सामाज्य स्थापित हुए। इनकी ख्याति सिंध और नेपाल तक फैली थी। कदंब गंग चालुक्य राष्ट्रकुट विजयनगर बहमनी टीपू सुल्तान और मैसूर राज्यों का शासन यहां चला। गंग राजाओं की एक शाखा नेपाल में भी शासन करती थी। गंग राजा मालवों को जीतकर मालवगंग भी कहलाते थे। कलिंग में भी गंग राजाओं का शासन था। गंगों के बाद चालुक्य राजाओं ने अपने साम्राज्य को बढाया और सम्राट पुलिकेषी ने सम्राट हर्षवर्द्धन को जीतकर दक्षिणापंथेश्वर कहलाता। उसके अधीन गुजरात भी आ गया था।

राष्ट्रकूटों के समय में कर्नाटक का शासन उत्तर ही नहीं दक्षिणी ओर सिंहल तक फैला था। कर्नाटक के चालुक्य ही उत्तर में सोलंकी बने। कर्नाटक के राजा बंगाल में सेनवंशी राजा थे। नेपाली सेना में कानडी कर्नाटक के सैनिकों का बोलबाला था। 11वीं सदी में कश्मीर के राजा के दरबार में कर्नाटक के रीति-रिवाजों का अनुसरण होता था। पृथ्वीराज चैहान के दरबार में कर्नाटकी नामक नर्तकी थी। यह बात प्रसिद्ध; है। कि कर्नाटक के होयसळ राजकुमार और देवगिरी राजकुमारी खिताई पर राजस्थानी में खिताई वार्ता काव्य लिखा गया। इस प्रकार सारे उत्तर भारत में राजनैतिक क्षेत्र में ही प्रभाव नहीं रहा बल्कि धार्मिक क्षेत्र में भी कर्नाटक का प्रभाव उतना ही तीव्र था।

'पदम पुराण' में कहा गया है कि भक्ति द्रविड देश में उत्पन्न हुई और उसका विकास कर्नाटक के द्वरा सारे देश में हुआ। हिंदी भक्ति साहित्य में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'भाक्ति द्रविड उपजै रामानंद। परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नवखण्ड।

वास्तव में शैव और वैष्णव भक्ति का मूल द्रविड देश तमिलनाडु है। तमिलनाडु की वैष्णव आळवारों की भक्ति और शैव नयनमारों की भक्ति का ही विकास आगे चलकर सारे भारतवर्ष में हुआ केरल मूल के शंकराचार्य जो अद्वैतवाद के प्रतिपादक है वे कर्नाटक में शृंगेरी में मठस्थापना करके रहे। चार मठों द्वारा उन्होंने सारे भारत में अपने तत्व का प्रचार किया। 11 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में तमिलनाडु से शैवधर्मी चोल राजा से बचते श्रीरंगम से रामानुजाचार्य कर्नाटक आए। उन्होने विशिष्टाद्वैत का प्रचार किया। उन्होने ब्रम्हाणों को श्रीवैष्णन बनाते कर्नाटक के गेलुकोटे मैसूर के पास में पीठ की स्थापना की। उन्हीं के प्रभाव से होयसल नरेश जैनमतावलंबी बिटिटदेव विष्णुवर्धन बना। राजा विष्णुवर्धन ने वैष्णव मंदिरों का निर्माण कराया। आज जो विश्वविख्यात चेन्नेकेशव मंदिर बेलूर में है और हलेबीड का मंदिर है जो शिल्पकला के उत्तम नमूने है उन्हीं की प्रेरणा से निर्मित हुए थे। इस कलात्मक कार्य के पीछे नाट्यरानी शांतलादेवी की अहम भूमिका है। ऐसे ही कलोषसक राजाओं से चालुक्य शासन में बादामी रोहेले और पटट्कल्लु में जैन वैष्णव और शैव गुफा मंदिर जो बने है। उनमें धार्मिक समन्वयता और साहिष्णुता का परिचय मिलता है। राष्ट्रकूटों के समय में एलोरा और अजंता में जो गुफा मंदिर में चित्र जो खिंचे गए है। उनसे चित्रकला के विकास का परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्नाटक में हिंदु सम्राटों के वैभवकाल में धर्म प्रचार के साथ साथ शिल्पकला चित्रकला संगीत नृत्यकला आदि के विकास के श्रेष्ठ नमूने मिलते है।

कर्नाटक के शिवाल्लि में जन्में मध्वाचार्य जी ने 1276 ई में द्वैतमत की प्रतिष्ठा कर मघ्वमत की नींव डाली। इसी संप्रदाय के व्यवसराय जी ने जो विजयनगर सम्राट कृष्णदेवराय 1509 -30 ई के समकालीन थे व्यासरायमठ की स्थापना की। इन्हीं के शिष्यों में पुरंदरदास और कनकदास हुए जो प्रसिद्ध कीर्तनकार होकर सूरदास के समकालीन थे। सूरदास के गुरु तेलांग ब्राहम्ण बल्लभाचार्य यहीं से कृष्ण भाक्ति प्रसारार्थ उत्तर गए थे।

इस प्रकार कर्नाटक में एक ओर द्वैत अद्वैत विशिष्टाद्वैत तत्व की प्रतिष्ठा हुई और प्रचार हुआ तो दूसरी ओर जैन शैव वीरशैन वैष्णव मतों का भी प्रचार 9वीं से 16वीं शती ई तक होता रहा और ततसंबंधी उत्कृष्ट रचनाएं रची गई।

भारत में भक्ति की परंपरा के विकास में कर्नाटक का योगदान अत्यंत विशिष्ट है। कर्नाटक में 9वीं शती में जैन राजाओं के प्राबल्य होने से जिन भक्ति संबंधी रचनाएं हुई। जैन कवियों ने एक ओर महाभारत रामायण काव्यों की रचना जैन सिद्धांतों के अनुकूल की तो दूसरी ओर जैन ऋषि-मुनियों पर रचित काव्यों की रचना की। जैन कवि पंप का कन्नड के आदिकवि मानते है। रत्नत्रय के रुप में पंप रन्न और पोन्न कवि को गौरव देते है। पंप कृत 'आदिपुराण' और 'विक्रमार्जुन विजय' महाभारत रन्न कृत अजित पुराण और 'साहस भीम विजय' गदायुद्ध पौन्न कृत 'शांतिपुराण' और 'भुवनैक्य विजयम काव्य उल्लेखनीय हैं। हिंदी के प्रसिद्ध जैन कवि स्वयंभू 793ई राष्ट्रकुट राजा धनंजय का आक्षित कवि था उनसे रचित पउम चारिउ पद्म पुरा अपभ्रश में रचित श्रेष्ठ रामकाव्य हैं दूसरी

बात यह है कि कन्नड की प्रथम गद्यकृति 'बड्डाराधने' 920 ई जो शिवको हिशिवाधार्य से रची गई वह प्राकृत वडुकथा पर आधारित है और उसमें 19 जैन ऋषियों की कथायें है। वह 10वीं शती के जनजीवन रहन-सहन आचार विचार और संस्कृति को समझने से सहायक है। श्रवणवेळगोळ कर्नाटक में भव्य गोम्मटेश्वर बाहुबलि की शिवमूर्ति की स्थापना करनेवाले वीर चाबुंडराय स्वयं बडे कवि भी था। उसने चाबुडराय पुराण की रचना की जिसमें जैन तीर्थंकर वासुदेव प्रतिवासुदेव के रुप में विश्व विख्यात है। कर्नाटक में जैन संस्कृति के विकास की गथा कहनेवाले अनेक जैन बसदिंया हैं।

बहरवीं शती कन्नड का पहला भक्तिकाल है जिसमें निर्गुण इष्टलिंगोंपासक वीरशैवपंथी लिंगायत दर्शन का विकास हुआ। इसके अगुआ थे। शक्तिविशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक महान सुधारवादी भक्ति भण्डारी बसवेश्वर अथवा बसवण्णा। अल्लम प्रभु जो बसवेश्वर से स्थापित अनुभवमण्ड में शून्य सिंहासनपीठ के अध्यक्ष थे वे कल्याण चालुक्य राजधानी जहां बलेश्वर मंत्री थे आने से पूर्व उत्तर में नाथपंथ के प्रभाव में थे। उनका नाम नवनाथों में है जिसका उल्लेख हठयोग प्रपिका में हुआ है। अल्लम प्रभु चेन्नबसवण्णा सिद्धरामेश्वर और अवक महादेवी बसावनुयायी श्रेष्ठ शरण मंडल है। इनके अलावा 300 से अधिक शरण तथा 30 से अधिक शरणियां थी जिन्होंने अपने दैनिक और आध्यामिक अनुभूति को 'वचन' शैली में प्रस्तुत किया है। वे आज 'वचनोपनिषद' के रुप में सम्मानित है। वैदिक कर्मकाण्ड वर्णाश्रम जातिप्रथा आदि के विरोध में क्रांतिकरने वाला बसवादि शरणो का मार्ग जाति वर्णातित समानता के भाव से कायकश्रम तत्व के आधार पर एक विशिष्ट जीवन शैली को अपनाकर सबको अंतर में आत्मानुभूति कराते चला। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस धर्म का महत्व हैं इस सुधारवादी दृष्टिकोंण के कारण एक विशिष्ट समता समाज का निर्माण हुआ और 'सभी जीवों की भलाई' चाहनेवाली शरण संस्कृति का विकास हुआ।

15वीं शती में विकसित वैष्णव धर्म 12 वीं शती के शरणों के प्रभाव से अधिक उदावादी बना और उनका भक्ति साहित्य सरल व सुवोध बना। हरिभक्ति का अधिकार व्यासराय जैसे श्रेष्ठ आचार्य से कनकदास जैसे निम्नवर्गीय गडरिया को भी प्राप्त हुआ। इस युग में एक ओर आचार्य-मठपतियों का व्यासकूट कवि मंडल बना तो दूसरी ओर पुरंददास कनकदास आदि का दासकूट कविमंडल बना और श्रेष्ठ वैष्णव साहित्य का निर्माण हुआ। यह कुमारव्यास युग कन्नड़ का दूसरा भक्तिकाल है।

कर्नाटक का दास साहित्य श्री माध्वाचार्य प्रणीत विष्णु तत्व पर आधारित है। इस भक्ति का प्रसार करनेवाले ही हरिदास है। इस भक्तिधारा का उगम 13वीं शती के नरहरितीर्थ से मानते है। 15वीं शती में श्रीपादराज ने इस धारा का विकास कर कन्नड साहित्य को समृद्ध किया। इनकी शिष्य परंपरा में श्री व्यासराय प्रमुख हैं। प्रसिद्ध कीर्तनकार पुरंददास और कनकदास इन्हीं के शिष्य थे। राजा कनकनायक वैराग्य धारण कर हरिभक्त बने

और श्रेष्ठ ‘हरिभक्तिसार’ की रचना की। विजयनगर साम्राज्य काल साहित्य संस्कृति और कला के विकास की दृष्टि से समृद्ध काल है।

वैष्णव वांङ्मय के विकास में दास साहित्य के साथ साथ कुमार-व्यास कुमार वाल्मीकि लक्ष्मीश आदि के महाकाव्य कृतियों का पात्र भी विशिष्ट है। यह महाभारतमय काल है। कन्नड में महाभारत पर अधिकाधिक काव्य रचे गए जो वैष्णवधर्म प्रसार के माध्यम भी बने। परंतु रामायण काव्य कन्नड में हिंदी के रामचारितमानस के समान लोकप्रिय नहीं नहीं हुए। वैसे ही हिंदी साहित्य में कोई प्रसिद्ध महाभारत काव्य नहीं जो कुमारव्यास भारत के जैसे लोकप्रिय हो। हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य श्रीमद्भागवत पर आधरित है। हिंदी प्रबंध काव्यों में दोहा चैपाई छंद और मुक्तक रचनाओं में दोहा और पद लोकप्रिय हो तो कन्नड प्रबंध काव्यों में चंपू गद्य पद्य मिश्रित शैली और षट्पदी छंद तथा मुक्तक रचनाओं में वचन पद सांगत्य और त्रिपदी छंद लोकप्रिय हैं।

कर्नाटक संगीत दास साहित्य की देन हैं दास श्रेष्ठों ने साहस्रो पदों कीर्तनों की रचनाएं की इनता ही नहीं हिंदुस्तानी संगीत के प्रवर्तक श्री गोपाल नायक कर्नाटक के ही थे। दासवर तानपुरा लेकर कर्नाटक संगीत में माललय में गाते थे पुरंददास कर्नाटक संगीत के पितामह कहलाते हैं। कर्नाटक संगीत की एक विशेष शैली हैं ‘गमकसंगीत’ गमकसंगीत का उपयोग रामायण महाभारत आदि षट्पदीय काव्यों के गायन में होता है। गमक गायकों को गमकी कहते हैं।

17वीं शती में ‘सर्वज्ञ’ नायक क्रांतिकारी संत हुए। इनका मूल नाम पुष्पदत्त था। ‘सर्वज्ञ’ अंकित से त्रिपदी शैली में रचनाएं करके गाते थे। कबीर के समान बहुश्रुता, भ्रमणशील और फक्कड़ स्वभाव के थे। उन्होने समाज की कुरीतियों का खूब खण्डन किया है।

कर्नाटक में सूफी संतो का योगदान भी महत्वपूर्ण है। दक्षिण मे बहमनी राज्यों के साथ मुसलमान शासन स्थिर हुआ। सूफी संतों ने हिंदु-मुस्लिम धर्म और संस्कृति के बीच समन्वय सौहार्द स्थापित करने का बडा दायित्वपूर्ण कार्य निभाया। सूफी प्रेममार्गी है वे रहस्यानुभूति प्राप्त शुद्ध हृदयी शुद्धाचरण संपन्न विश्वप्रेमी है। दक्खिनी मे उनकी रचनाएं है। इनमें मुल्ला वजही का सबरस 1636 ई. उल्लेखनीय है। ’सबरस’ सूफी प्रेमकथा सानुप्रास गद्य में रचित है। गुलबर्ग में सूफी संत ख्वाजा बंदे नवाज प्रसिद्ध हैं। उनके दरगाह पर हिंदु मुसलमान दोनों श्रद्धा से जाते है।यह हिंदु मुस्लिम मातैक्य के प्रतीक के रुप में हैं। गुलबर्गा के मस्जिद शिल्पकला सौदंर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। गोलगुंबज इब्राहिम रोजा जैसी बिजापुर की इमारतें वास्तुकला के सुन्दर नमूने हैं जो पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण के केंद्र है।

कर्नाटक के प्रासिद्ध त्योहारों में दशहरा दीपावली उगादि गणेश चतुर्थी सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं।

मकर संस्क्राति 14-15 जनवरी को देश भर में मनाई जाती है। तमिलनाडु में इसे पोंगल कहते है। कर्नाटक में यह त्योहार विशेष रीति से मनाते हैं इस त्योहार में तिल चना और गुड का मिश्रण ईख के टुकडे के साथ घर-घर में बांटते हैं गांवों में सालंकृत गायों को आगपर दौडाते है उणादि को कर्नाटक में नए वर्ष के रुप में मनाते है। चैत्र मास में नववर्ष का शुभारंभ मानते है यह चांदमासी पंचांग के अनुसार हैं इस त्योहार में लोग नीम के फूल ओर गुड के मिश्रण को बांटकर शुभकामना करते हैं। यह सुख दुख समान मानतेका द्योतक है इस दिन घर में एक विशिष्ट प्रकार का मीठा व्यंजन बनाते हैं जिस ओब्बटटु कहते हैं जो पूरनपूरी जैसा होता है।

दक्षिण के विशिष्ट त्योहारों में गणेश चतुर्थी का विशेष महत्व हैं यह त्योहार कर्नाटक और महाराष्ट्र में विशेष ढंग से मनाते हैं कहा जाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय में तिलक जी ने इस त्योहार में सामूहिक रुप से गणेश की मृणमूर्ति बनाकर पूजने की विधि शुरु की। घर घर में गणेश और गौरी की मृण्मूर्ति लाकर पूजा कि जाती है और तीसरे दिन कुओं तलाबों में मूर्तियों का विसर्जन होता है इस त्योहार में ओब्बट्टु के साथ गणेश के लिए प्रिय कडबु बनाते हैं जिसे मोदक कहते हैं।

दशहरा कर्नाटक का राष्ट्रीय पर्व है इसका सांस्कृतिक और ऐतिहसिक महत्व हैं इस त्योहार में सभी वर्ग के लोग भाग लेते हैं। दशहरे का आरंभ विजयनगर राजाओं के समय में हुआ। यह विजयदशमी नाम से प्रासिद्ध है। नवरात्री भी कहते है। दसवे दिन जम्बु सवारी में हाथी पर स्वर्ण अंबारी राजा बैठते थे। आजकल चामुडी की मूर्ति रखकर जुलुस में ले जात हैं। दशहरे में मैसूर नगर नवबधु सा सजा रहता है। राजमहल आदि रोशनी से जगमगाते रहते है।

कर्नाटक में एलोरा और अजंता चित्रकला के सुंदर नमूने है। बदामी गुफाओं में कलापूर्ण चित्रअंकित मिलते हैं। शिल्पकला के सुंदर नमूने यात्रियों को आकर्षित करते है। मैसूर में जगमोहन पैलेस राजमहल में चित्रकला की प्रदर्शनी पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र है। भरतनाट्य कर्नाटक का विशेष नृत्यकला हैं कोडगू कूर्ग में कोडगू सामूहिक लोकनृत्य चित्राकप्रक हैं। यह नृत्य विशेष त्योहारों में प्रस्तुत करते हैं।

नाटय क्षेत्र में भी कर्नाटक की अपनी विशेषता हैं यहां बयकार और यक्षगान दो विशेष प्रकार के लोकनाटय है। बयलाट खुले रंगमंच आ खेल हैं इसमें केवल पुरुषपात्रधारी होते है। स्त्रीपात्र को स्त्री वेशधारी पुरुष ही खेलते हैं। यक्षगान दक्षिण कन्नड जिले में खेला जाता है। डॉ. शिवराम कारंत इस में स्वयं भागलेते थे और इस यक्षगान कला के माहिर थे। इसमें नट नृत्याभिनय रावं संवाद प्रस्तुत करते है। नट विशेष मुखौटा पहनकर नाचते हैं। उत्तर कर्नाटक में वीरगाथात्मक लावनी की गतपर गी गी नृत्यगान करते है। तीन पुरुष इकतारे की धुन और ताल वाद्य की धमक पर नाचते गाते है। प्रत्येक पद के अंत में गी गी नारा लगाते है।

कर्नाटक प्रचीन काल से विभिन्न धर्मो विभिन्न संप्रदायों विभिन्न दार्शनिक तत्वों चिंतनों एवं विभिन्न शैली के संगीत नृत्य शिल्प चित्र आदि कलाओं का संगम रहा है। स्नेह सौहर्दता उदारता रुदभावना भावात्मक ऐक्यता और सामजिक संस्कृतिक के लिए प्रतीक रुप में रहकर भारती संस्कृति के विकास में अपना विशिष्ट योगदान दे रहा है।

(लेखक बंगलूरु विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं।)

हिंदी के विकास में कोशों की भूमिका और महत्व

डॉ० हरीश कुमार सेठी

किसी भी भाषा के शब्द-प्रयोगों की जानकारी के लिए कोश अत्यंत उपयोगी होते हैं। कोशों में भाषा-विशेष के शब्दों के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के तथ्यों और भावों का संकलन एवं संरक्षण हुआ होता है। कोश सीधे-सीधे भाषा-प्रयोग से भी जुड़े हो सकते हैं और अन्य पक्षों से भी। इस दृष्टि से कोश भाषिक भी होते हैं और भाषिकेतर भी। वैसे भाव अथवा विचार को भली प्रकार से संप्रेषित करने के लिए सही अभिव्यक्ति आवश्यक है और सही अभिव्यक्ति के लिए सही शब्द का चयन आवश्यक होता है। शब्दों के सही चयन के लिए उनका समुचित अध्ययन एवं उनका संकलन आवश्यक है। शब्दों का अध्ययन एवं किसी एक दृष्टि के आधार पर व्यवस्थित संकलन करके कोश-निर्माण का कार्य किया जाता है। शब्दों के इस अध्ययन के अनेकानेक रूप हो सकते हैं और यही अनेक रूप, कोशों के विविध प्रकारों को निर्धारित करते हैं। हमारे दैनिक जीवन में ज्ञान और आवश्यकता बढ़ने के साथ-साथ अनेक प्रकार के कोशों का भी विकास हुआ है। शब्दों के संग्रह रूपी कोश को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों और शैलियों के आधार पर तैयार किया जाता है। ये उद्देश्य, भाषा, प्रविष्टि, काल, अर्थ, प्रविष्टि-क्रम और विशिष्ट दृष्टिकोण आदि किसी भी आधार पर तैयार किए हुए हो सकते हैं। इन आधारों के आलोक में देखा जाए तो कोश विभिन्न प्रकार के होते हैं।

भाषा के आधार पर कोशों को एकभाषिक, द्विभाषिक और बहुभाषिक वर्गों में विभाजित किया जाता है। वैसे, यदि हमें कोशों के वर्गीकरण के लिए कोई आधार लेकर चलना हो तो इन्हें जिन दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, वे हैं - (1) भाषिक कोश; और (2) भाषेतर कोश। विभिन्न आधार-दृष्टियों के आलोक में निर्मित विभिन्न प्रकार के कोश इन्हीं दोनों प्रमुख वर्गों में समाहित हो सकते हैं।

'भाषिक कोशों' के अंतर्गत वे कोश शामिल किए जा सकते हैं जिनमें भाषा और उसके विशिष्ट घटकों का आधार लेकर कोश तैयार किए गए हैं। इन आधारों में भाषा के शब्दों की व्युत्पत्ति, पर्याय, विपर्याय, उच्चारण आदि जैसे पक्ष शामिल हैं। उदाहरण के लिए भाषिक कोश के अंतर्गत 'एकभाषिक कोश', 'द्विभाषिक कोश', 'बहुभाषिक कोश', 'उपभाषा/बोली कोश', 'अपभाषा कोश', 'ऐतिहासिक कोश', 'तुलनात्मक कोश', 'उच्चारण कोश', 'व्युत्पत्ति कोश', 'पर्याय कोश', 'विलोम कोश', 'मुहावरा कोश', 'लोकोक्ति कोश', 'अभिव्यक्ति कोश', 'समांतर कोश' आदि। वहीं, 'भाषेतर कोशों' में भाषा से इतर विषयों पर तैयार किए गए सभी प्रकार के कोशों के अंतर्गत मुख्य रूप से 'व्यक्ति कोश', 'कृति कोश', 'साहित्य कोश', 'पुराण कोश',

’मिथक कोश’, ‘पारिभाषिक शब्द संग्रह’, ‘पारिभाषा कोश’, ‘विश्व कोश’, ‘सूक्ति कोश’, ‘विषय कोश’ आदि कोश शामिल किए जा सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के पाठकों-जिज्ञासुओं, विद्यार्थियों, अध्येताओं, अनुवादकों, प्रयोक्ताओं आदि की विभिन्न प्रकार की भाषायी अथवा विषय-बोध संबंधी अलग-अलग किस्म की जरूरतों को पूरा करने के लिए अलग-अलग प्रकार के कोशों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए यह स्वीकार किया जाता है कि कोश के सभी प्रकारों की अपनी-अपनी सार्थकता, प्रासंगिकता और उपयोगिता है। उदाहरण के लिए, एकभाषी कोश की महत्ता इस तथ्य में निहित है कि भाषा-विशेष की शाब्दिक संरचना, शब्दों का व्युत्पत्तिपरक ज्ञान, मानक वर्तनी, व्याकरकणिक कोटियाँ, उच्चारण, अर्थपरक ज्ञान, पर्याय, विलोम, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि की उसी भाषा में जानकारी प्रदान करके ये कोश हमारे भाषा संबंधी सूक्ष्म ज्ञान को परिपक्व बनाते हैं। दूसरी ओर, द्विभाषी कोश दो भाषाओं के शब्द चयन, भाषा, साहित्य, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था आदि की जानकारी का आधार सिद्ध होते हैं। द्विभाषी कोश भाषा शिक्षण, उच्चारण संबंधी ज्ञान, वर्तनी एवं वर्ण विभाजन संबंधी बोध, शब्द प्रयोग और व्याकरणिक कोटियों संबंधी ज्ञान का साधन बनते हैं। ये लोकोक्तियों-मुहावरों को समझने एवं पारिभाषिक शब्दावली बोध की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होते हैं। भाषा-शिक्षण और अनुवाद जैसे कार्यों में ये विशेष तौर पर उपयोग रहते हैं। इनसे दो भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद करने में सुविधा रहती है। आज के हमारे वर्तमान युग को द्विभाषी कोशों की अत्यंत आवश्यकता है। इस प्रकार के कोश दो भाषायी समाज-संस्कृतियों के बीच व्याप्त खंडता को दूर करने का आधार बनने के साथ-साथ उनमें एकता और समन्वय की प्रवृत्ति भी पैदा करते हैं। इसी प्रकार, ’विषय कोशों’ के महत्व को भी रेखांकित किया जा सकता है, जो मूलतः भाषेतर होते हैं। ये कोश, ज्ञान विषय संबंधी पारिभाषिक शब्दावली एवं उसके विविध प्रयोगों की जानकारी का स्रोत होते हैं। विषय केंद्रित कोशों से पाठक विषय विशेष से संबंधित जानकारी प्राप्त करके अपने ज्ञान में अभिवृद्धि करता है और उस विषय में सिद्धहस्त होकर उसके प्रचार-प्रसार का निमित्त बनता है, ज्ञान-क्षेत्र में संवृद्धि करने में अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता है। वस्तुतः विभिन्न संदर्भों के आधार पर अलग-अलग प्रकार के कोशों की आवश्यकता होती है, महत्व होता है।

हिंदी भाषा का विकास और कोशों की भूमिका

जब हम भाषा के संदर्भ में विकास की बात करते हैं तो यह शब्द एक पारिभाषिक अर्थ ग्रहण कर लेता है। अपने पारिभाषिक अर्थ में ’भाषा-विकास’ का यह अभिप्राय भाषा को आवश्यकता के अनुसार विधिवत विकसित करने की योजना बनाकर लागू करना है। भाषा के विकास को एक निर्धारित दिशा देने के लिए यह जरूरी है कि कोई भाषा नीति (Language Policy) बनाई जाए। भाषा नीति ऐसी होनी चाहिए जो देश की जरूरतों को ध्यान में रखे और उन्हें पूरा करने के लिए भाषायी विकास संबंधी निश्चित निर्देश दे। भाषा नीति से

भाषा नियोजन (Language Planning) होता है। भाषा नियोजन में यह बात मुख्य रहती है कि इसमें भाषा के विकास से संबंधित प्रयासों का समाकलन किया जाता है।

भाषा के विभिन्न प्रकार्यों को पूरा करने के लिए नई जरूरतें पैदा होती हैं। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए विकास योजना बनानी होती है, भाषा नियोजन करना होता है। अगर भाषा विकास योजना पर कार्य नहीं किया जाएगा तो भाषा विशेष अपने प्रकार्यों को पूरा नहीं कर पाएगी। उदाहरण के लिए, कंप्यूटर पर हिंदी भाषा के माध्यम से विभिन्न प्रकार्य करने के लिए उन्हें प्रयोक्ता-अनुकूल बनाने की योजना पर काम करना होगा। अगर इस दिशा में प्रयास नहीं किया जाएगा यानी कंप्यूटरों को हिंदी के संदर्भ में प्रयोक्ता-अनुकूल नहीं बनाया जाएगा तो उनका हिंदी भाषा या माध्यम के रूप में प्रयोग करने का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाएगा। भाषा विकास के अंतर्गत दो प्रमुख गतिविधियाँ शामिल होती हैं - (1) भाषा का आधुनिकीकरण; और (2) भाषा का मानकीकरण। हिंदी भाषा के विकास में कोशों की भूमिका को भाषा विकास की इन दोनों गतिविधियों के रूप में देखा जा सकता है।

(1) भाषा का आधुनिकीकरण और कोश:

भाषा के आधुनिकीकरण का अर्थ है - 'भाषा विशेष में विभिन्न प्रकार्य करने के लिए उसमें संगत सामग्री का निर्माण करना।' उदाहरण के लिए, कार्यालय में कंप्यूटरों के जरिए सुचारू रूप से काम करने के लिए कार्यालय का कंप्यूटरीकरण करते हुए उसका आधुनिकीकरण करना। ऐसा करने से कार्यालय आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से जुड़ जाएँगे। हिंदी भाषा के संदर्भ में यदि हमें कंप्यूटरों को व्यवहार में लाना है तो उन्हें हिंदी भाषा से जोड़ने के प्रयास भी आधुनिकीकरण का ही हिस्सा बन जाएँगे। भाषा के स्तर पर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में आधुनिक विचारों, अवधारणाओं और भौतिक विकास से जुड़ते हुए नई-नई शब्दावली गढ़ने, प्रौद्योगिकी को भाषा-समर्थ बनाने और विविध प्रकार्यों में व्यवहार में लाने की दृष्टि से प्रयोक्ता-अनुकूल बनाने जैसे प्रयास करना आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के विविध आयामों में शामिल हैं। इस प्रकार के प्रयासों का भाषा का विकास होता है। आधुनिकीकरण के संदर्भ में हिंदी भाषा के दो जिन प्रमुख क्षेत्रों को शामिल किया जाता है उनमें राजभाषा; और शिक्षा की भाषा के रूप में हिंदी है। इन दोनों क्षेत्रों में, भाषा के आधुनिकीकरण में कोशों की विशेष भूमिका है।

(क) राजभाषा हिंदी और कोश: हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिलने से इसके प्रकार्य बढ़ गए। आज शासन-प्रशासन, संसद, विधि, बैंकिंग, बीमा आदि जीवन-व्यवहार के अनेकानेक क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। इसके कारण भाषा के स्तर पर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में इन क्षेत्रों के लिए नई-नई शब्दावली गढ़ने आदि के प्रयास किए जा रहे हैं ताकि भाषा का विकास हो। राजभाषा के इस विकास में कोश महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हिंदी की राजभाषा संबंधी भूमिका ने विभिन्न प्रकार के कोशों और विशेष तौर पर द्विभाषिक कोशों,

पारिभाषिक शब्द संग्रहों और परिभाषा कोशों की विशेष मांग की स्थिति बना दी है। वहीं, प्रौद्योगिकी के साथ भाषा के अनुप्रयोग के पक्ष जुड़ने के कारण कंप्यूटर कोशों और ऑनलाइन कोशों की भी मांग बढ़ी है। इस स्थिति का परिणाम यह रहा है कि आज हिंदी में विभिन्न प्रकार के कोश तैयार और प्रकाशित हो रहे हैं।

इस संदर्भ में कुछ उल्लेखनीय प्रयासों में बीसवीं के शताब्दी के शुरुआती दौर में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा ‘शब्द सागर’ तैयार करने की योजना प्रमुख है। सभा की इस व्यापक योजना का परिणाम यह रहा कि पिछली शताब्दी के तीसरे दशक में जाकर यह कोश कार्य आठ खडों में पूरा हो पाया। डॉ. रामचंद्र वर्मा ने ’शब्द सागर’ का संक्षिप्त संस्करण तैयार किया। इसके अलावा, उन्होंने ’मानक कोश’ भी तैयार किया और बाद में ’बृहत कोश’ भी। डॉ.वर्मा के इस कोश को हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने निकाला। हिंदी कोश निर्माण परंपरा के विकासक्रम में डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. बदरीनाथ कपूर, डॉ. सुरेश अवस्थी आदि कोशकारों के प्रयास भी उल्लेखनीय हैं। इसी संदर्भ में श्री अरविंद कुमार और श्रीमती कुसुम कुमार का नाम विशेष तौर पर उल्लेख का अधिकारी है, जिन्होंने हिंदी का प्रथम ’समांतर कोश’ तैयार किया। यह कोश नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित हो चुका है।

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के क्षेत्र में भी कोश निर्माण संबंधी इसी प्रकार के विकास की स्थिति नजर आती है। पारिभाषिक शब्दावली से जुड़े कोश ज्ञान, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी, प्रौद्योगिकी आदि की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं, जनसंचार माध्यम, बैंकिंग, बीमा आदि विषय-विशेष से संबद्ध कोश हैं। इन कोशों में विषय विशेष की विशिष्ट शब्दावली होती है। इस शब्दावली की यह विशेषता होती है कि इसके प्रत्येक शब्द का विषय क्षेत्र में हर जगह एक निश्चित अर्थ होता है। इसके जरिए विषय से जुड़ी एक अवधारणा का स्पष्ट रूप से बोध हो जाता है। उदाहरण के लिए, कंप्यूटर विषय के संदर्भ में अगर हम ’माउस’, ’हार्डवेयर’, ’प्रोग्राम’ आदि जैसे शब्द प्रयुक्त करें तो वे पूरी की पूरी एक निश्चित अवधारणा का बोध कराते हैं। इस प्रकार की शब्दावली की यह भी विशेषता होती है कि एक अवधारणा के संदर्भ में एक ही शब्द प्रयुक्त किया जाता है जबकि सामान्य जीवन व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त शब्दों में अर्थ के धरातल पर कहीं विस्तार और कहीं संदिग्धता परिलक्षित की जा सकती है। कहने का अभिप्राय यह है कि एक ही सामान्य शब्द के कई अर्थ होते हैं, जबकि ज्ञान के क्षेत्र में एक शब्द के जरिए अर्थ की सुनिश्चितता का विशेष महत्व है। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत काम करने वाले ’वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग’ पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का दायित्व सौंपा हुआ है। आयोग में ज्ञान-विज्ञान के अनेक विषय के पारिभाषिक शब्द संग्रह/शब्दावलियाँ के साथ-साथ परिभाषा कोश आदि तैयार कराके प्रकाशित किए हैं।

(ख) शिक्षा की भाषा ’हिंदी’ और कोश: भाषा के आधुनिक प्रयोजनों को पूरा करने में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। अगर हम यह कहें कि शिक्षा ही समस्त प्रयोजनों का केंद्र है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विभिन्न प्रयोजनों-क्षेत्रों में काम करने वाले व्यक्तियों को भली प्रकार से कार्य सम्पन्न करने के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित करने

का कार्य शिक्षा के माध्यम से ही संभव हो पाता है, जो भाषा के बिना संभव नहीं है। शिक्षा में भाषा विषय (subject) की भूमिका भी निभाती है और शिक्षा का माध्यम भी। शिक्षा में और विशेष तौर पर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भाषा का स्थान महत्वपूर्ण है। बल्कि वास्तविकता यह है कि उच्च शिक्षा में भाषा की केंद्रीय भूमिका है क्योंकि इसमें विशेषीकरण से भाषा-केंद्रित आजीविका के क्षेत्र और प्रयोजनपरक कार्य-क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य कर पाना संभाव हो पाता है।

आजादी के समय तक उच्च शिक्षा के सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी, शिक्षा की माध्यम भाषा की भूमिका निभा रही थी। लेकिन, 1960 के बाद इस स्थिति में बदलाव आना शुरू हुआ। इस दिशा में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के केंद्रीय हिंदी निदेशालय, राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमियों, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय आदि सरकारी संस्थाओं के प्रयास तो सराहनीय रहे हैं, निजी क्षेत्र का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहा। इन प्रयत्नों का ही यह परिणाम रहा है कि विविध विषयों की हजारों हिंदी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। यह सिलसिला आज भी जारी है।

हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन के साथ-साथ सामान्य शब्दों वाले भाषा कोश बनाने के क्षेत्र में भी सरकारी और निजी प्रयासों के कारण पर्याप्त प्रगति हुई। केंद्रीय हिंदी निदेशालय भाषा कोश निर्माण करने संबंधी अपने दायित्व को भली प्रकार से निभा रहा है। निदेशालय ने 'भारतीय भाषा कोश' और 'तत्सम कोश' जैसे कोशों के अलावा अनेक द्विभाषी व्यावहारिक लघु कोश और त्रिभाषी कोश प्रकाशित किए गए हैं। निदेशालय द्वारा प्रकाशित द्विभाषा कोश हिंदी के साथ गुजराती, सिंधी, उर्दू, तमिल, तेलुगु, मलयालम, उड़िया, मराठी, असमिया, कश्मीरी, मलयालम जैसी भारतीय भाषाओं से संबंधित हैं, वहीं त्रिभाषा कोशों में अंग्रेजी भाषा भी शामिल है। इसके अलावा, निदेशालय ने स्पेनी, अरबी, चीनी, फ्रांसीसी, चेक, जर्मनी, फारसी, इंडोनेशियाई, सिंहल, बर्मी, नेपाली, रूसी आदि अन्य विदेशी भाषा कोश भी प्रकाशित किए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं से संबंधित 'समेकित हिंदी-संयुक्त राष्ट्र भाषा कोश' भी निदेशालय का उल्लेखनीय प्रकाशन है। ऐसे ही सराहनीय प्रयास निजी प्रकाशकों के भी रहे हैं। इन प्रयासों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी कोश निर्माण की एक समृद्ध एवं सम्पन्न परंपरा विकसित हुई।

प्रौद्योगिकी का हिंदी भाषा के संदर्भ में आधुनिकीकरण: विज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास और प्रगति की अनुप्रयुक्त परिणति हमें प्रौद्योगिकी के रूप में नजर आती है। प्रौद्योगिकी का भाषा से भी संदर्भ है। पिछली शताब्दी के आरंभिक दौर में मुद्रण, टंकण, टेलेक्स आदि के रूप में हस्तचालित और इलेक्ट्रॉनिक यांत्रिक साधन-उपकरण भी प्रौद्योगिकी का ही अंग रहे हैं। तब यंत्रों का निर्माण और संचालन प्रौद्योगिकी का ही विषय-क्षेत्र रहा। तब हिंदी में भी मुद्रण, टंकण, टेलेक्स आदि सुविधाएँ विकसित हुईं। इसका सार्थक परिणाम यह रहा कि प्रशासन, शिक्षा, मनोरंजन आदि जीवन-व्यवहार के विविध क्षेत्रों में हिंदी में इस प्रौद्योगिकीय विकास का लाभ उठाया जाने लगा।

वहीं आगे चलकर वैज्ञानिक विकास के कारण पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में कंप्यूटर और इंटरनेट जैसे प्रौद्योगिकीय विकास के चलते समूचे विश्व ने नव-इलेक्ट्रॉनिक युग में प्रवेश किया। जल्दी ही 'सूचना प्रौद्योगिकी' नामक प्रौद्योगिकीय विकास भाषा का भी अनिवार्य अंग बन गया क्योंकि भाषा ने प्रौद्योगिकी का सहारा ले लिया। कंप्यूटर, सूचना प्रौद्योगिकी का सर्वप्रमुख उपादान है और इसका शब्द संसाधन (Word Processing) और आँकड़ा संसाधन (Data processing) संबंधी कार्य में विशेष तौर पर प्रयोग किया जाता है। कंप्यूटर के जरिए भाषा संबंधी वर्तनी जाँच (Spell check), व्याकरण जाँच (Grammar check), स्वतः संशोधन (Auto correction), वर्ण पहचान (Optical Character recognition=OCR), वाक् से पाठ (Speech to Text), पाठ से वाक् (Text to Speech); और अकारादि क्रम (Sorting) आदि जैसे सहायक कार्य भी संभव है। कंप्यूटर का अनुप्रयोग केवल इन सहायक कार्यक्रमों के अलग-अलग अनुप्रयोग तक ही सीमित नहीं है। इसमें सहायक कार्यक्रमों का 'सामासिक' (अर्थात मिला-जुला) प्रयोग भी संभव है। जैसे, वर्तनी जाँच और व्याकरण जाँच कार्यक्रमों को एक-साथ प्रयोग में लाना।

शब्द संसाधन के लिए वर्ड स्टार, वर्ड परफेक्ट आदि सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं। इसके जरिए कंप्यूटर पर टंकण संबंधी वे सभी कार्य कर पाना संभव होता है जो पहले टाइपराइटर की सहायता से किए जाते थे। जैसे, पत्र/लेख लिखना, रिपोर्ट आदि तैयार करना आदि। बल्कि स्थिति यह भी है शब्द संसाधन की सहायता से कक्ष मुद्रण (डी.टी.पी.) कार्य भी संभव है। हिंदी में लीप, अक्षर, ऑफिस एक्स.पी., सुलिपि आदि डी.टी.पी. कार्यक्रम उपलब्ध हैं। इन कार्यक्रमों में वर्तनी जाँच, अकारादि क्रम में शब्द लाने की व्यवस्था जैसी अन्य सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। इसके अलावा, 'वर्तनी जाँचक' जैसे सॉफ्टवेयर भी विकसित हो चुके हैं जो हिंदी की वर्तनी की तीव्रता से जाँच करने में समर्थ है।

आँकड़ा संसाधन संबंधी कार्यों में वेतन बिल बनाना, गणित के सवालों को हल करना, परीक्षा परिणाम निकालना, खाता-बही रखना आदि जैसे कार्य शामिल हैं। इन कार्यों के लिए (कंप्यूटर की प्रोग्राम भाषा में कहें तो) फोर्ट्रान, कोबोल आदि कार्यक्रम उपयोग में लाए जाते हैं। पहले इन कंप्यूटर प्रोग्रामों से केवल अंग्रेजी में ही कंप्यूटर पर काम कर पाना संभव होता था। लेकिन, अब हिंदी में भी आँकड़ा संसाधन संबंधी कार्य संभव हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी के 'शुभ लाभ' एकाउंटिंग सॉफ्टवेयर में इनवेंट्री और बिलिंग सहित फुर्ती से वाउचर लिखने की सुविधा है। यह सॉफ्टवेयर एक साथ सैकड़ों कंपनियों का लेखाकरण करने में समर्थ है। इसी प्रकार, 'फैक्ट' नामक सॉफ्टवेयर बहुभाषी व्यापार लेखा सॉफ्टवेयर है। वहीं, 'बैंक मित्र' जैसे विंडोज आधारित द्विभाषिक बैंकिंग सॉफ्टवेयर से ग्राहक सेवा संबंधी काम किए जा सकते हैं। इसके द्वारा लेन-देन संबंधी सूचना तैयार करना, प्रयोक्ता के लिए निर्धारित सेवा प्रभार, चैक बुक/पास बुक संबंधी कार्य, आवधिक और अपने आप

ब्याज लगाना, खातावार स्थायी अनुदेश, उच्च मूल्य समाशोधन, कार्य शेष प्रमाण पत्र, ऋण सीमा पर नजर रखना आदि बैंकिंग से संबंधित काम किए जा सकते हैं।

अन्य उपयोगी कार्यक्रमों में से यदि हम 'पाठ से वाक्' कार्यक्रम विचार करें तो पाते हैं कि इससे छपे हुए अथवा मुद्रित पृष्ठों की स्कैनिंग के जरिए कंप्यूटर द्वारा स्कैन पाठ को 'पढ़ना' संभव हो पाता है। इस कार्यक्रम की सहायता से कंप्यूटर छपे हुए/मुद्रित पाठ को उच्चारण में बदल देता है। कंप्यूटर की इस प्रकार की सुविधा नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए सार्थक है। इससे वे मुद्रित पाठों का विस्तृत अध्ययन कर लेते हैं। अंग्रेजी में लिखित सामग्री को तो पढ़ने से संबंधित 'डेग्गन नैचुरली स्पेलिंग' जैसे कंप्यूटर सॉफ्टवेयर हैं ही, हिंदी में भी 'हिंदवाणी' जैसा सॉफ्टवेयर विकसित किया जा चुका है। यह सॉफ्टवेयर हिंदी टेक्स्ट फाइलों को स्पीच में परिवर्तित कर देता है यानी लिखित हिंदी को पढ़कर सुना देता है।

इसके अलावा, 'वाक् से पाठ' भी एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है जिसकी सहायता से कंप्यूटर मौखिक रूप से उच्चरित भाषा को श्रुतलेख की भाँति ग्रहण करता है और उसे अपने आप ही टंकित/मुद्रित पाठ के रूप में बदल देता है। भारत सरकार द्वारा हिंदी के लिए तैयार किया गया 'श्रुतलेखन राजभाषा' और हरियाणा के सोनीपत में स्थित मैसर्ज मेगासॉफ्ट इंडिया द्वारा तैयार किया गया 'हिंदी डिक्टेशन सॉफ्टवेयर' इसी प्रकार के कार्यक्रम हैं।

अनुवाद के लिए कंप्यूटर को माध्यम बनाना जैसा प्रयास भी सूचना प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग का ही एक आयाम है। आधुनिक युग के आरंभिक काल में अनुवाद की माँग इतनी अधिक नहीं थी, जबकि कंप्यूटर क्रांति के कारण इसकी माँग अत्यधिक हो गई। अनुवाद के क्षेत्र में कंप्यूटर के अनुप्रयोग ने विश्व की भाषायी दीवारें गिराने के रूप में अनपेक्षित सफलताओं का मार्ग प्रशस्त किया है। आज विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद के लिए कंप्यूटर को माध्यम बनाया जा रहा है। हिंदी भाषा भी इससे अछूती नहीं रही है। सार्थक और उपयोगी कंप्यूटर प्रणालियों की बढ़ती माँग ने इस क्षेत्र में विकास के नए आयाम और संभावनाएँ तलाशने की प्रेरणा दी। इसका परिणाम यह हुआ है कि हिंदी में ही 'मैट' (MAT= Machine Aided Translation), मात्रा (MaTra), 'अनुसारक', 'अनुवादक', 'मंत्र-राजभाषा' (MANTRA RAJBHASHA), 'यूनिवर्सल नेटवर्किंग लैंग्वेज' (यू.एन.एल.), 'शिव' और 'शक्ति' आदि कंप्यूटर अनुवाद प्रणालियाँ विकसित हो चुकी हैं। लेकिन, कंप्यूटर अनुवाद के संदर्भ में मुख्य बात यह ध्यान देने योग्य है कि जब तक इन प्रणालियों को लेक्सिन रूपी शब्दकोशों से समृद्ध नहीं कर लिया जाता तब तक इनकी सहायता से अनुवाद संभव नहीं है।

शब्द संसाधन, डी.टी.पी. कार्य, आँकड़ा संसाधन, वर्तनी जाँच, व्याकरण जाँच, स्वतः संशोधन, वर्ण पहचान, वाक् से पाठ, पाठ से वाक् जैसे अलग-अलग प्रकार के कार्य करने के लिए हिंदी में प्रौद्योगिकीय विकास हुआ है, वहीं इनके मिले-जुले प्रयोग भी संभव हैं। भारत सरकार का 'वाचांतर राजभाषा' कंप्यूटर के सहायक

कार्यक्रमों के मिले-जुले प्रयोग का ही एक प्रमाण है जिसमें शब्द संसाधन, आँकड़ा संसाधन, वाक् से पाठ, लिप्यंतरण और कंप्यूटर अनुवाद जैसे कार्य साथ-साथ हो पाना संभव है। यानी यह सॉफ्टवेयर सबसे पहले अंग्रेजी में बोले गए शब्दों आदि को ग्रहण करता है, ग्रहण किए गए शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी भाषा में लिप्यंतरित करता है और फिर देवनागरी में लिप्यंतरित पाठ का कंप्यूटर द्वारा ही हिंदी भाषा में अनुवाद कर दिया जाता है। अनुवाद करते समय सॉफ्टवेयर सी-डेक पुणे द्वारा विकसित अनुवाद सॉफ्टवेयर 'मंत्र राजभाषा' की सहायता लेता है। इस तरह 'वाचांतर राजभाषा' 'थ्री-इन-वन' सॉफ्टवेयर के रूप में काम करता है।

कंप्यूटर पर हिंदी के प्रौद्योगिकीय विकास जैसी ही स्थिति इंटरनेट पर हिंदी अनुप्रयोग की भी है। इंटरनेट सूचनाओं का कोषागार (रिपॉजिटरी) है। केवल क्लिक करने मात्र से इसके जरिए सूचनाओं का अंबार लग जाता है। आवश्यकता केवल अपने लिए जरूरी सूचना तक पहुँचने और उन्हें पहचानने की होती है। लेकिन इसका प्रयोग तभी संभव हो पाता है जब आपके पास इंटरनेट कनेक्शन, टेलीफोन आदि जैसी आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध हों।

आज इंटरनेट के जरिए हिंदी में अपेक्षित सूचनाएँ प्राप्त करना संभव है। यूनिकोड जैसे फोंट के विकास के कारण इंटरनेट से दुनिया के किसी भी कोने में हिंदी में ई-मेल किया जा सकता है। यूनिकोड के विकास से पहले इंटरनेट पर हिंदी में काम करना मुश्किल होता था क्योंकि फोंट की विविधता की स्थिति बनी हुई थी। जिस व्यक्ति को हिंदी की सामग्री भेजी जाती थी उसकी कंप्यूटर प्रणाली में यदि समान हिंदी फोंट नहीं होता था सामग्री को पढ़ पाना संभव नहीं होता था, कंप्यूटर उसे गारबेज दर्शा देता था। यही स्थिति एक ऑपरेटिंग प्रणाली से किए गए कार्य को दूसरी ऑपरेटिंग प्रणाली में ले जाने पर भी होती थी। लेकिन अब यूनिकोड ने इस समस्या से भी निजात दिला दी है। आज हिंदी में मंगल जैसे यूनिकोडीकृत फोंट हैं। हिंदी में अनेक वेबसाइट तैयार हो चुकी हैं, कई समाचार-पत्र आदि भी नेट पर उपलब्ध हैं।

कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के जरिए हिंदी में विशेष तौर पर वर्तनी और व्याकरण जाँच तथा मशीनी अनुवाद जैसे कार्य तब तक संभव नहीं है, जब तक कंप्यूटरों को हिंदी शब्दावली-वर्तनी आदि से समृद्ध-सम्पन्न न कर लिया जाए। यह कंप्यूटर कोश की सहायता से ही संभव हो पाता है। आज कंप्यूटरों के लिए अनेक इलेक्ट्रॉनिक कोश भी तैयार हो चुके हैं। कंप्यूटर पर ये दो रूपों में मिलते हैं - ऑनलाइन और ऑफलाइन। ऑनलाइन कोशों को तभी व्यवहार में ला पाना संभव होता है जब कंप्यूटर पर इंटरनेट सुविधा उपलब्ध हो, अन्यथा ऑफलाइन कोश का इस्तेमाल किया जा सकता है। ऑफलाइन कोश सॉफ्टवेयर के रूप में उपलब्ध कोश होते हैं। इन्हें कंप्यूटर में इंस्टाल करने के बाद ही उपयोग में लाया जा सकता है। कंप्यूटर कोश के जरिए वर्तनी और व्याकरण जाँच जैसे कार्य तो संभव हैं ही, मशीनी अनुवाद के संदर्भ में भ्ज्ञी ये उपयोगी सिद्ध होते हैं। आज, इलेक्ट्रॉनिक कोश,

मोबाइल फोन पर भी उपलब्ध हो जाते हैं। स्वाभाविक है कि इससे हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है। वस्तुतः इलेक्ट्रॉनिक कोशों के जरिए हिंदी भाषा का विकास हो रहा है।

(2) भाषा का मानकीकरण और कोश:

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में नई-नई शब्दावली गढ़ने आदि प्रयासों का परिणाम यह रहता है कि भाषा में शब्द वैविध्य, निर्धारित शब्द में अर्थ के धरातल पर संदिग्धता आदि की स्थिति बन जाती है। असल में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में भाषा के स्तर पर औपचारिक संदर्भों में विविधता की स्थिति बन जाती है। इस स्थिति से निपटने और एकरूपता स्थापित करने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि भाषा का मानकीकरण किया जाए। जब हम भाषा के मानकीकरण की बात करते हैं तो इसका अर्थ है - विविधता कम करना और एकरूपता स्थापित करना। उदाहरण के लिए, राजनीति विज्ञान के संदर्भ में अक्सर 'Head of State' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए हिंदी में 'राष्ट्राध्यक्ष' शब्द को व्यवहार में लाया जाता रहा। लेकिन, इसके जरिए यह बोध नहीं हो पाता कि क्या 'राष्ट्राध्यक्ष' देश का 'राष्ट्रपति' है, 'प्रधानमंत्री' है या फिर 'चांसलर' आदि। इसलिए अर्थ के स्तर पर इस संदिग्धता को दूर करने के लिए कहीं-कहीं पर 'राष्ट्राध्यक्ष और शासनाध्यक्ष' शब्द भी व्यवहार में लाए जाते रहे। भाषा विकास की दृष्टि से इस प्रकार का प्रयोग भले ही भाषा का आधुनिकीकरण करना है, किंतु इससे अर्थ संबंधी संदिग्धता की स्थिति भी बन जाती। इसलिए मानकीकरण की प्रक्रिया अपनाते हुए 'Head of State' के लिए 'राष्ट्राध्यक्ष' और 'Head of Government' के लिए 'शासनाध्यक्ष' जैसे शब्द निर्धारित किए गए।

वस्तुस्थिति यह है कि मानकीकरण को अपनाकर हम भाषिक स्तर पर विविधता को कम करते हैं। इससे जहाँ भाषा मानक रूप धारण करती चलती है, वहीं उसमें एकरूपता स्थापित होने की स्थितियाँ भी बनती हैं। उदाहरण के लिए, सूचना प्रौद्योगिकी के आगमन से जहाँ हम कंप्यूटर जैसी प्रौद्योगिकी से जुड़े, वहीं इसके लिए हिंदी शब्द प्रयोग की स्थिति भी बन गई। इस कारण आरंभिक दौर में अंग्रेजी के शब्द 'Computer' के लिए 'अभिकलित्र', 'संगणक' और 'कंप्यूटर' जैसे शब्द चलन में नजर आए। लेकिन, आगे चलकर मानकीकरण की प्रक्रिया में इसके लिप्यंतरित रूप वाले शब्द के प्रयोग को ही स्वीकार कर लिया गया। इसलिए अब केवल 'कंप्यूटर' शब्द ही प्रयोग किया जाता है। यही स्थिति अंग्रेजी के 'Engineer' शब्द की भी है, जिसके लिए 'अभियंता', 'यंत्री', 'इंजीनियर' आदि शब्दों के चलन के मूल में जहाँ भाषा के आधुनिकीकरण का परिप्रेक्ष्य जुड़ा है वहीं मानकीकरण की प्रक्रिया अपनाकर और विविधता की स्थिति को कम करते हुए अब केवल 'इंजीनियर' शब्द ही व्यवहार में लाया जा रहा है।

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के क्षेत्र में मनमानापन रोकने और मानकीकरण करने के लिए भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' को शब्दावली निर्माण का कार्य सौंपा हुआ है। आयोग ने विभिन्न विषय क्षेत्रों के पारिभाषिक शब्द संग्रह, पारिभाषिक शब्दावलियाँ और परिभाषा कोश तैयार करके हिंदी भाषा का विकास किया है। वहीं, विधि संबंधी शब्दावली का निर्माण करने का दायित्व विधि और न्याय मंत्रालय के विधायी विभाग के राजभाषा खंड द्वारा निभाया जा रहा है। इसने भी 'विधि शब्दावली' तैयार करके हिंदी भाषा में विधि संबंधी शब्दों को निर्धारित करके हिंदी के आधुनिकीकरण और मानकीकरण रूपी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्ष 2002 तक इस शब्दावली के छह संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा, भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के 'केंद्रीय हिंदी निदेशालय' का भी विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है जिसने हिंदी भाषा संबंधी अनेक प्रकार के सामान्य कोश तैयार किए हैं। वहीं, हम भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तैयार की गई बैंकिंग शब्दावली और सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय द्वारा निर्मित आकाशवाणी शब्दावली का भी उल्लेख किया जा सकता है।

'हिंदी के विकास में कोशों की भूमिका और महत्व' के संदर्भ में अब तक की गई के आलोक में यही कहा जा सकता है कि कोश, भाषा और साहित्य की समृद्धि के वे सूचक हैं जिनसे भाषा के विकास का बोध होता है। कोशों ने हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने में भाषिक कोश - भले ही वे एकभाषिक हों, द्विभाषिक या फिर बहुभाषिक, साहित्यिक कोश, पर्याय कोश, मुहावरा-लोकोक्ति कोश, कृति कोश, कृतिकार कोश, उपन्यास कोश, नाटक कोश, बोली कोश, ज्ञान कोश आदि विभिन्न प्रकार के कोशों का महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी ही भूमिका भाषेतर कोशों की भी रही है, जिन्होंने हिंदी को शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में सार्थक भूमिका निभाने में विशेष योगदान दिया। इससे हिदी भाषा का आधुनिकीकरण हुआ। लेकिन हम वास्तविकता को भी नहीं नकार सकते कि भाषा के विकास के लिए जहाँ यह जरूरी है कि उसका आधुनिकीकरण हो, वहीं उसका मानकीकरण भी होना चाहिए। केवल एक ही गतिविधि को करने मात्र से भाषा का विकास नहीं हो सकता। इसलिए भाषा विकास में आधुनिकीकरण और मानकीकरण, इन गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका एवं स्थान है। भाषा संबंधी इन दोनों गतिविधियो में कोशों का स्थान विशिष्ट है। इसका मूलभूत कारण यह है कि कोश भाषा के आधुनिकीकरण और मानकीकरण के संचयन-संशोधन एवं संरक्षण का उपयोगी तथा सार्थक साधन बनते हैं। हिंदी भाषा में कोशों के संदर्भ में इस दिशा में सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। लेकिन इन प्रयासों की निरंतरता को बनाए रखना भी जरूरी है ताकि हिंदी में तैयार कोश अद्यतन और स्वयं में मानकीकृत रूप वाले बने रहें।

(लेखक इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर हैं।)

तेलुगु की प्रसिद्ध लेखिका वासिरेड्डी सीतादेवी की कहानियों में नारी

डॉ० पी०के० जयलक्ष्मी

वासिरेड्डी सीतादेवी वास्तविक जीवन के धरातल पर आधारित साहित्य सृजन करनेवाली तेलुगु की प्रसिद्ध लेखिका थीं। वे अपनी लेखनी के माध्यम से आंध्र प्रांत में अत्यंत कीर्ति अर्जित कर चुकी थीं। उनकी जीवन यात्रा अनेक संघर्षों से भरी रही है और उन्होंने जीवन के विभिन्न संदर्भों को अपने विचारों से एक नयी दिशा दी है। सीतादेवी के अनुसार नारी का मानसिक विकास पुरुषों के मानसिक विकास से पृथक होता है। परंतु उन में भावों का विस्तार अधिक तीव्र होता है। उनके लेखन केंद्र में स्त्री के सुदीर्घ संघर्ष की महागाथा विद्यमान है। उनकी कहानियों के नारी पात्रों में परंपरागत मूल्य, मान्यताओं में टकराव और उनकी बदली हुयी सोच उन्हें आधुनिकता की ओर ले जाती हैं।

गरीबी रेखा से नीचे सांस लेनेवाले दलितों तथा साधनहीनों के हृदयहीन शोषण का चित्रण करना इनके लेखन का असली आशय है। सीतादेवी की पहली कहानी ‘‘सांबय्या की शादी’’ का नायक सांबय्या जो बदसूरत तथा चेचक की बीमारी से ग्रस्त एक अत्यंत दरिद्र और काना आदमी था। कोई भी उससे प्यार नहीं करते और अच्छा नहीं बोलते। ऐसे में जब उसकी शादी तय होती तो वो बहुत खुश हो जाता है। सबको बता देता है। उनकी मालकिन भी खुशी से कुछ पैसे उसके हाथों में थमा देते हुये ऐसा पूछती है कि क्या लड़की लंगड़ी या अंधी तो नहीं है न? सुनकर सांबय्या सुन्न हो जाता है। बाद में पता चलता है कि लड़की गूंगी है। अंधी हो तो अच्छा है कि वह उसे देख न पाएगी और घृणा न करेगी। लेकिन उसे गूंगी जानकर गुस्से से वह उस लड़की को धक्का देकर घर से बाहर निकाल देता है। समाज में चाहे पुरुष कैसे भी हो पीढ़ियों से उसके अंदर अहंकार किस कदर घर बनाकर रहा? सीतादेवी ने ये दिखाने की कोशिश की थी। संबय्या मात्र एक निर्धन व्यक्ति था जो पढ़ाई और खूबसूरती से वंचित भी था। लेकिन पुरुष का अहंकार उसमें कूट कूट कर भरा हुआ था। आखिर ऐसे मदमस्त व्यक्ति में लेखिका परिवर्तन ला सकती है। ‘‘न्याय देवी की अंधी आँखें’’ कहानी में सीतादेवी ने मद्रास नगर के पेवमेंट्स पर नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त गरीब लोगों की व्यथा कथा का सजीव चित्रण किया है।

‘‘पीढ़ियों का अंतराल’’ कहानी में लेखिका ने यह स्पष्ट दिखाया कि शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन द्वारा स्त्रियाँ किस प्रकार समाज में परिवर्तन ला सकती हैं? पुराने जमाने में व्यर्थ बातों से समय बिताने वाली महिलाएं आजकल निर्माणात्मक कार्यों में हाथ बंटा रही हैं। एक दूसरे से भिड़ने के बदले काम करके पैसे कमाने की ओर मन लगा रही हैं... कहते हुये सीतादेवी ने पीढ़ियों के अंतराल को समझाने की चेष्टा की। सीता देवी के नारी पात्र परिस्थितियों के सामने झुकते नहीं बल्कि व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपना लेते हैं। वे स्थिति के अनुकूल खुद को

ढालना तथा उन्हें अपने हित में मोड़ना भी जानते हैं। नारी का यह परिवर्तित रूप मात्र शिक्षित होने तथा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत नज़र आती हैं तथा पुरुष प्रधान समाज में अपना स्थान निर्धारित करते हुये दिखती हैं।

नौकरी पेशा नारियों पर कार्यालयों में होनेवाले यौन शोषण के बारे में सीतादेवी ने "वह हंसी" कहानी में बताया। इसमें नायिका ने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुये पुरुष प्रधान समाज की मान्यताओं का समय समय पर विरोध करती है। "विभ्रमा" कहानी में उन्होंने ये समझाया कि किस प्रकार अकेलापन स्त्रियों को विक्षिप्त बना देता है? इस प्रकार उनके नारी पात्र मात्र विषम परिस्थितियों में जीवन जीते ही नहीं अपितु मानसिक तनाव, द्वंद्व, संत्रास,अकेलापन,अजनबीपन और अन्तः कलह को झेलते हुये तथा अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक रहते अपनी अस्मिता को बनाए रखते हैं।

स्त्रियों की हीनग्रंथि को दिखाने वाली कहानी है "सहानुभूति" और स्त्रियों के अज्ञान को प्रकट करती है "भय" नामक कहानी। "दद्दाम्मा" कहानी के माध्यम से दाम्पत्य जीवन में नारी पर होने वाले अत्याचरों का पर्दापाश किया गया। सीतदेवी की कहानियों में नारियों का संघर्ष, व्यक्तित्व की खोज, अस्मिता की पहचान तथा उनकी महत्वाकांक्षा के कारण एक अनिश्चित अनियोजित दौड़ चित्रित हुई है। ये आधुनिक नारी कहीं परिवेश से तो कहीं अपने आप से लड़ाई लड़ रही हैं। वे कहीं संघर्ष रत हैं तो कहीं समझौते की जिंदगी जी रही हैं। वे घर और बाहर दोनों स्थितियों में छटपटा रही हैं। उनकी नारी इन स्थितियों को झेलते हुये भी पराजित या हताश नहीं हैं, वह इन स्थितियों में भी मार्ग तलाशती हैं तथा सहज होने का प्रयत्न करती हैं।

कुछ ऐसे नारी पात्र भी सीतादेवी की कहानियों में चित्रित हुये हैं जो सामाजिकता के संस्कार को आजीवन ढोने के लिए बाध्य नहीं हैं। "जजमेंट" कहानी में नारी के अंतरमंथन का चित्रण बखूबी से किया गया। सीतादेवी की कहानियों के स्त्री पात्र जीवंत होते हैं, कहीं कृत्रिमता का आभास नहीं दिखता। ये आधुनिक स्त्री पात्र कहीं परिवेश से तो कहीं अपने आप से लड़ाई लड़ रहे हैं। वे कहीं संघर्षरत हैं तो कहीं समझौते की ज़िंदगी जी रहे हैं। कुल मिलाकर उनकी कहानियों में मानवीय मूल्यों के प्रति गहरी आस्था है। सामाजिक बंधनों के द्वारा शोषित नारी को अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व को बचाने के लिए विद्रोही होना पड़ता है।

समाजवादी संवेदनशील सीतादेवी ने नारी जीवन के विविध पक्षों का हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी अंकन किया है। साथ ही उन्होंने ये बताने की चेष्टा भी की है कि जब तक हमारे समाज की नारियां पूर्णरूप से चेतना सम्पन्न नहीं बन जातीं , तब तक समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर नहीं किया जा सकता।

(लेखिका संत जोसफ महिला महाविद्यालय, विशाखापत्तनम में प्राध्यापिका हैं।)

भारत में उत्तर-दक्षिण संपर्क का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और हिंदी- मलयालम साहित्यिक अनुवाद परम्परा

डॉ० राम प्रकाश यादव

भारत में उत्तर- दक्षिण संपर्क के मोटे तौर पर तीन प्रमुख चरण निर्धारित किए जा सकते हैं- पहला- अखिल भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य गतिविधि, दूसरा- भक्ति आंदोलन एवं तीसरा- राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम। अखिल भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य गतिविधि ने परस्पर संपर्क की आधारभूमि तैयार की व सही मायनों में भारतीय उपमहाद्वीप की एकता को उद्घाटित किया। भक्ति आंदोलन एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को व्यापक तौर पर प्रभावित किया। इस समय जिस प्रकार के आमूल-चूल परिवर्तन हुए, जनता में चेतना का जो संचार हुआ, उसमें आत्माभिव्यक्ति एवं आत्मविश्वास का जो विकास हुआ वह पहले कभी नहीं देखा गया था। भक्ति आंदोलन ने जहाँ भक्त और भगवान के बीच की दूरी को मिटा दिया वहीं राष्ट्रीय आंदोलन ने मानसिक जड़ता और हीनता बोध को समाप्त कर नवीन जीवनी शक्ति का संचार किया।

'भक्ति द्राविण उपजी लाए रामानंद' इस पंक्ति में 'लाए' शब्द से भक्ति विचारधारा के संवहन का भाव दृष्टिगोचर होता है। यह लाना भारत जैसे बहुभाषाभाषी राष्ट्र में अनुवाद के माध्यम से ही संभव हुआ होगा। यह मात्र संयोग नहीं है कि तमाम संतों-भक्तों की वाणियों में एक जैसे तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। आंडाल, मीरा, रामानुज, रामानंद, रैदास एवं कबीर आदि अन्यान्य संत-भक्त उस प्रगतिशील चेतना के द्योतक हैं, जिसने अब तक की स्थापित मान्यताओं पर अत्यंत तर्कपूर्ण ढंग से कुठाराघात किया। खतरे उठाए पर सच का साथ नहीं छोड़ा। यह चेतना सम्पूर्ण भारतवर्ष के अलग-अलग हिस्सों में भाषा की सीमाएं तोड़कर एक साथ प्रवाहित होती है। जाति, भाषा, पात्रता व प्रशिक्षण के खांचों से मुक्त होकर यह चेतना सदियों की शोषण तथा दमनकारी शक्तियों का प्रतिकार करते हुए अपना विकास करती है। यदि उत्तर-दक्षिण सम्पर्क को इन संत-भक्त कवियों के संदर्भ में देखा जाय तो बोलचाल की भाषा में रचना कर रहे कवियों की वाणी से परिचय का कार्य इनके द्वारा ही सम्पन्न हुआ।

दक्षिण से निकली भक्ति आंदोलन की यह प्रगतिशील धारा मध्य भारत को व्याप्त करते हुए उत्तर भारत तक प्रवाहित हुई। उस दुर्गम विन्ध्य को पार कर जिसके दर्प को कभी अगस्त्य ने चूर किया था। अगस्त्य का यह प्रस्थान उत्तर- दक्षिण सम्पर्क का पहला प्रमाण है। कहने का आशय यह कि यह प्रक्रिया अचानक प्रारम्भ नहीं हुई, बल्कि इसके बीज प्राचीन काल से चली आ रही संस्कृत शास्त्रार्थ पद्धति में छिपे हैं। यहीं से उत्तर-दक्षिण साहित्य

व विचारधारा के परस्पर आदान-प्रदान की बेल पल्लवित व पुष्पित हुई। कन्याकुमारी, कृष्णा व गोदावरी से लेकर गंगा के मैदान तक तथा उससे भी आगे हिमालय व तिब्बत तक शिष्ट व लोक के रूप में समानांतर आदान-प्रदान की प्रक्रिया सतत रूप से प्रवाहमान थी।

विन्ध्य को पार कर अगस्त्य व परशुराम से प्रारम्भ हुआ उत्तर-दक्षिण का यह परस्पर सम्पर्क और समन्वय व्यापारिक मार्गों के विकसित होने के साथ-साथ और भी फला-फूला। कारवां में व्यापरियों के साथ तीर्थयात्री, संत-कवि, विद्यार्थी, शिल्पकार, कलाविद आदि भारत के विभिन्न भागों में आने-जाने लगे। चूँकि दक्षिण भारत अपने व्यापार-वाणिज्य के लिए भी महत्वपूर्ण रहा, इसलिए अखिल भारतीय स्वरुप के इस व्यापार-वाणिज्य के लिए हिंदी-उर्दू या दक्खनी का प्रयोग होता था। डॉ. आरसु ने राकेश कालिया को दिए एक साक्षात्कार में मलयालम के महान कवि कुजन नांबियार का स्मरण करते हुए कहा है कि 'कुजन नांबियार ने अपने 'सत्यकम' नामक तुल्लल काव्य में यह उल्लेख किया है कि 17 वीं- 18 वीं सदी में गोसाईं साधुओं की टोलियाँ केरल में घूमती थीं। इनकी भाषा हिंदी की विभिन्न बोलियाँ ही थीं'।[10] इसी साक्षात्कार में उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि 19वीं सदी के आरम्भ में महाराजा स्वाति तरुनाल के हिंदी पद सूरदास की याद दिलाते हैं।

व्यापारिक मार्गों के विकास ने पारस्परिक संपर्क की इस प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया। चूँकि इन मार्गों के विकास से राज्य के हित सीधे जुड़े थे, इसलिए उनकी सुरक्षा भी राज्य का दायित्व थी। कतिपय राज्य अनुवाद कार्य को संस्थागत प्रोत्साहन भी देते रहे। शंकराचार्य ने देश के चारों कोनों में चार पीठ स्थापित कर इस प्रक्रिया को एक संस्थागत स्वरुप दिया। फलस्वरूप तीर्थयात्राओं के माध्यम एकीकरण और पारस्परिक संपर्क की इस प्रक्रिया को और भी बल मिला। अपरिचय से परिचय की यह प्रक्रिया निःसंदेह उत्साहजनक थी। इन परिस्थितियों में उत्तर- दक्षिण का यह संपर्क सहज और स्वाभाविक बनता गया। इसी का परिणाम था कि भक्ति आंदोलन की यह प्रक्रिया भौगोलिक सीमाओं को लांघते हुए दक्षिण से प्रवाहित होकर महाराष्ट्र व गुजरात से होते हुए उत्तर भारत तक प्रवाहित होती रही।

भक्ति आंदोलन के बाद भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के समय यह प्रक्रिया अपने चरमोत्कर्ष पर थी। गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका से भारत आने के बाद भारत भ्रमण के निर्णय को हमें इसी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। गांधीजी यह देखना चाहते थे कि भारत आजादी की इस लड़ाई हेतु कितना तैयार है। पारस्परिक संपर्क और देश प्रेम की जड़ें कितनी मजबूत हैं। यदि मार्क्स ने यह कहा कि रेलवे के आगमन ने उपनिवेशवाद को भारत में चोट पहुंचाई, ग्रामीण आत्मनिर्भरता की उनकी संरचना को खंडित किया तो साथ ही इसने अंतर्राज्यीय संपर्क द्वारा

[10] आरसु, डॉ॰ (2003). अनुवादक पराई सम्पत्ति का पहरेदार- डॉ. आरसु से राकेश कालिया की बातचीत: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 131

सांस्कृतिक बहुलतावाद की स्थिति से परस्पर संपर्क को बढ़ावा दिया। इससे भाषाई विकास को भी बल मिला और इस प्रक्रिया ने अनुवाद गतिविधि को भी प्रोत्साहित किया।

राष्ट्रीय आंदोलन की परिस्थितियों में उत्तर- दक्षिण के राजनीतिज्ञ, बुद्धिजीवी, साहित्यकार, व्यापारी, वकील, किसान सभी एक मंच पर इकट्ठा हुए। परिचय की नई प्रक्रिया नए संदर्भों में प्रारम्भ हुई और स्वाधीनता का यह संदर्भ ऐसा था जहां तमाम दूरियां मिट गयीं, भाषाई भेद खत्म हो गए। हिंदी का वर्तमान रूप इसी समय अस्तित्व में आया। राष्ट्रीय नवजागरण की प्रतिनिधि भाषा के रूप में इसे स्थान मिला। महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस समेत उस समय के तमाम बड़े नेताओं ने सभी भारतवासियों को हिंदी पढ़ने-लिखने पर जोर दिया। इसे राष्ट्रीय आंदोलन का एक हिस्सा बनाया। इसी समय दक्षिण भारतीय भाषाओं और हिंदी में परस्पर अनुवाद कार्य बड़े पैमाने पर आरम्भ हुए। बाद में जब हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिला तो वह रोजगार से भी जुड़ गयी। हिंदी एक सम्पर्क भाषा के रूप में देश को दक्षिण भारत की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संपन्नता से परिचित कराने का माध्यम बन गयी। साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अनुवाद ने एक संपर्क सेतु का कार्य किया।

महात्मा गाँधी ने 1920 ई० में देवदास गाँधी को दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना के लिए भेजा।[11] इस सभा की पत्रिका 'हिंदी प्रचारक पत्रिका' ने दक्षिण भारतीय भाषाओँ से हिंदी में अनुवाद करने हेतु एक मंच उपलब्ध कराया। 'हंस' पत्रिका में भी प्रारम्भ से ही अन्य भाषाओं की रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित होते थे। इस पत्रिका में अनुवादक ए० चंद्रहासन, पी० के० केशवन नायर, सी० आर० नागप्पा, पी० नारायण, सी० जी० गोपालकृष्णन आदि के अनुवाद छपे।[12] फिर तो पूरे देश में अनुवाद से संबंधित पत्रिकाओं की लहर चल पड़ी।

हिंदी- मलयालम साहित्यिक अनुवाद परंपरा का विहंगावलोकन-

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'गबन' और 'गोदान' का मलयालम में अनुवाद ई० के० दिवाकरन पोट्टी ने किया है। 'गबन' शीर्षक के अनुवाद की समस्या पर उन्होंने लिखा है कि- " 'गबन' के लिए मलयालम का 'वंचना' शब्द पूर्णतः ठीक नहीं था, किन्तु इससे उपयुक्त शब्द न ढूंढ़ पाया"।[13] कुछ हिंदी मुहावरों व लोकोक्तियों

---

[11] आरसु, डॉ० (2003). अनुवादक पराई सम्पत्ति का पहरेदार- डॉ. आरसु से राकेश कालिया की बातचीत: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 131

[12] अय्यर, एन० ई० विश्वनाथ (2003). संस्थाओं और पत्रिकाओं का योगदान: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 39-40

[13] पोट्टी, ई० के० दिवाकरन (2003). प्रेमचंद- कृतियों के अनुवाद: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 87

का मलयालम में शब्दानुवाद भी ई० के० दिवाकरन पोट्टी ने किया है। पात्रों की बातचीत में ग्राम्य भाषा के प्रयोग के अनुवाद की कठिनाई की चर्चा भी इन्होंने की है। प्रो० पी० माधवन पिल्लै ने तमस, मय्यादास की माड़ी, त्यागपत्र को मलयालम में अनुदित किया है। 'तमस' के अनुवाद के संदर्भ में इनका कहना है कि- "उपन्यास का कथ्य साम्प्रदायिकता संबद्ध होने के कारण बहुत सतर्कता बरतनी पड़ी। इस उपन्यास में भिन्न धर्मावलम्बी और भिन्न सामाजिक स्तर पर रहने वाले लोगों की बोलियाँ प्रयुक्त की गयी हैं। भाषा का यह वैविध्य- संस्कृतनिष्ठ, उर्दू-अरबी मिश्रित, पंजाबी मिश्रित, अंग्रेजीयुक्त, गँवारू प्रयोग-अनुवाद में पूर्ण रूप से उतारना मुश्किल था, फिर भी जहाँ तक हो सका उसका पालन किया गया है"।[14] भीष्म सहनी की 'मय्यादास की माड़ी' का अनुवाद करने में प्रो० पी० माधवन पिल्लै ने पंजाबी लोकगीतों के अनुवाद में आई कठिनाई की चर्चा की है जिसका निराकरण उन्होंने मूल लेखक की सहायता से उसका गद्यानुवाद करके किया।[15] इससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार अनुवाद के मान व मूल्यों को समक्ष रखकर अनुवादक सजग होकर अनुवाद कार्य कर रहे थे।

साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित श्री एम० एन० सत्यार्थी ने फणीश्वरनाथ रेणु के आंचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' का इसी नाम से अनुवाद मलयालम में किया। नेशनल बुक ट्रस्ट ने इसका नाम बदलकर 'चेलत्तुम्बु' रख दिया और प्रकाशित किया।[16]

एम० श्रीधर मेनोन ने प्रसाद की 'कामायनी', दिनकर की 'उर्वशी' और प्रेमचंद की कहानियों को मलयालम में अनूदित किया है। कुर्रतुल ऐन हैदर का 'आग का दरिया' का मलयालम में अनुवाद भी उन्होंने किया है। कामायनी का अनुवाद साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया है। उर्वशी संभवतः अभी तक अप्रकाशित है।[17]

मलयालम से हिंदी अनुवाद पर चर्चा की जाय तो प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त मलयालम कवि जी० शंकर कुरुप्प का स्वाभाविक रूप से स्मरण हो आता है। इनके 'ओटक्कुषल' का अनुवाद 'बांसुरी' नाम से जी० नारायण पिल्लै एवं लक्ष्मीचंद्र जैन ने सम्मिलित रूप से किया। इस कृति के अपने अनुवाद अनुभव के सम्बन्ध में लक्ष्मीचंद्र जैन का कथन है- "अनुवाद का मुख्य तथ्य यह था कि मूल का भाव यथासंभव अक्षुण्ण रूप में आ जाय ताकि कवि के शब्दों में रिद्म (लय) की अपेक्षा कंटेंट परर अधिक ध्यान दिया जाय। जिस तरह मूल कविता संस्कृतनिष्ठ मलयालम में रचित है, अनूदित पाठ में भी वही शब्दावली प्रयुक्त हुई है। इसमें काव्यात्मकता का

---

[14]पिल्लै, प्रो० पी० माधवन (2003). मेरी अनुवाद साधना- क्यों और कैसे: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 91

[15]पिल्लै, प्रो० पी० माधवन (2003). मेरी अनुवाद साधना- क्यों और कैसे: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 91

[16]चंद्रन, डॉ० पी० के० (2003). सत्यार्थी की अनुवाद साधना: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 91

[17]मेनोन, प्रो० एम० श्रीधर (2003). केन्द्रीकृत संस्थाओं का अभाव (एम० श्रीधर मेनोन से डॉ0 आरसु की बातचीत): अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 122-123

वांछित निर्वाह नहीं हो पाया, फिर भी कवि की ओजस्वी एवं उदात्त कविता की ध्वनि अनुवाद के उन अंशों में विद्यमान है, जहाँ अनुवाद पैराफ्रेज जैसा नहीं है"।[18]

तकषी शिवशंकर पिल्लै मलयालम के एक अन्य सशक्त उपन्यासकार हैं। उन्हें उनकी रचना 'चेम्मीन' के लिए वर्ष 1984 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मनित किया गया। 'चेम्मीन' का हिंदी अनुवाद भारती विद्यार्थी ने 'मछुवारे' नाम से किया जिसको साहित्य अकादमी ने प्रकाशित किया। इन्हीं के एक अन्य उपन्यास 'रटिटंङ्षी' का भी हिंदी अनुवाद 'दो सेर धान' नाम से भारती विद्यार्थी ने किया है। तकषी के एक उपन्यास 'कयर' का हिंदी अनुवाद डॉ. सुधांशु चतुर्वेदी ने 'रस्सी' नाम से किया है और इसे साहित्य अकादमी द्वारा 1992 ई० में प्रकाशित किया गया है।

आधुनिक मलयालम साहित्य में एक नई काव्यधारा- काल्पनिक प्रस्थानम के प्रवर्तक महाकवि कुमारन आशन द्वारा रचित 'वीणपूव' (1909) से मलयालम क्षेत्र में एक नई काव्यप्रवृत्ति का आरम्भ माना जाता है।[19] 'वीणपूव' का हिंदी अनुवाद कवि कोकिल चेलप्पन ने किया है। इसका एक अन्य अनुवाद चात्रुकुट्टि मास्टर ने भी किया है। आशन के एक अन्य खंडकाव्य 'नलिनी' का हिंदी अनुवाद अभयदेव ने किया है। आशन की काव्यरचना 'करुणा' का अनुवाद कवियूर शिवराम अय्यर ने किया है। 'चिन्ताविष्टयाय सीता' खंडकाव्य का हिंदी अनुवाद छः अनुवादकों ने किया। इनकी तीन प्रसिद्ध काव्यरचनाओं- 'चिन्ताविष्टयाय सीता', 'चांडालभिक्षुकी' और 'करुणा' का रोचक गद्यानुवाद श्रीधर मेनोन ने 'तीन कविताएं' शीर्षक से किया और साहित्य अकादमी ने इसे प्रकाशित किया।

वल्लतोल की कविताओं का अनुवाद श्रीमती रत्नमयी देवी दीक्षित ने किया और इसे साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया। वल्लतोल मलयालम की रोमांटिक काव्यधारा के कवि हैं। इन्हें मलयालम का राष्ट्रीय कवि भी कहा जाता है। वल्लतोल का मलयालम साहित्य में वही स्थान है, जो तमिल साहित्य में महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती का है।[20] रत्नमयी देवी ने इनकी कुल सत्रह कविताएँ संकलित की हैं। वल्लतोल प्रगतिशील विचारधारा के कवि थे। इस संग्रह की पहली कविता 'मग्द्लन मरियम' है। वल्लतोल के खंडकाव्यों में यह रचना प्रमुख है। 'कोच्चु सीता' (छोटी सीता) नामक काव्य में देवदासी प्रथा की आड़ में चल रही सामाजिक कुरीति का भंडाफोड़ इन्होंने किया है। कथासरित्सागर को आधार बनाकर रचित 'चित्रयोगम' वल्लतोल द्वारा रचित महाकाव्य है। इस संग्रह में महाकाव्य के आठवें सर्ग 'चंद्रसेन का समुद्र पात' का हिंदी अनुवाद दिया गया है।

---

[18] खन्ना, संतोष (2003). भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत कृतियाँ: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 161

[19] त्रिपाठी, ब्रजेन्द्र (2003). साहित्य अकादमी का अवदान- मलयालम कृतियों के हिंदी अनुवाद: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 165

[20] त्रिपाठी, ब्रजेन्द्र (2003). साहित्य अकादमी का अवदान- मलयालम कृतियों के हिंदी अनुवाद: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 167

‘अच्छनुं मकलुम’ (पिता और पुत्री) आकार में छोटी रचना होने के बावजूद उनकी काव्यकृतियों में सबसे महत्वपूर्ण है। वल्लतोल की कल्पनाशक्ति और कलापटुता उनकी कविता ‘किलिकोंचाल’ (चिड़ियों की चहक में) दिखाई देती है। ‘कर्मभूमियुटे पिंचुकाल’ (कर्मभूमि का नन्हा चरण) कविता द्वारा इन्होंने देशवासियों में कर्म और वीरता की भावना भर उनकी जड़ता और किंकर्तव्यविमूढ़ता को तोड़ने का प्रयत्न किया। ‘एण्टे गुरुनाथ’ (मेरे गुरुदेव) कविता में महात्मा गांधी को उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।[21]

प्रो० ए० अरविंदाक्षन के संपादकत्व में केरल हिंदी साहित्य मंडल ने ‘आधुनिक मलयालम कविता’ नाम से एक काव्य सकलन का प्रकाशन किया है, जिसमें मलयालम के सत्रह कवियों की एक-एक कविता संकलित है।

मलयालम के नए कवियों की रचनाओं से हिंदी जगत को परिचित कराने में प्रो० जी० गोपीनाथन, डॉ० एन० षणमुखन, प्रो० ए० अरविंदाक्षन, डॉ० वी०के०एस० नंपूतिरि, डॉ० एस० षाजहान, के० जी० बालकृष्णन पिल्लै आदि का योगदान विशेष स्मरणीय है।

संदर्भ ग्रंथ

आरसु, डॉ (2003) अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3

पुनियानी, राम (2016) धर्म का आधुनिक संदर्भ भारत. बहुवचन (51 वां अंक). अशोक मिश्र (संपा.). वर्धा. म.गा.अ.हि.वि. ISSN 2348-4586

(लेखक महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के अनुवाद अध्ययन विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं।)

[21] त्रिपाठी, ब्रजेन्द्र (2003). साहित्य अकादमी का अवदान- मलयालम कृतियों के हिंदी अनुवाद: अनुवाद- अनुभव और अवदान. डॉ. आरसु एवं डॉ. एम. के. प्रीता (संपा.). इलाहबाद. जयभारती प्रकाशन ISBN 81-85957-22-3 पृष्ठ सं- 168

साहित्य और सिनेमा

अपराजेय कथाशिल्पी शरतचंद्र और देवदास

(देवदास के प्रकाशन के सौ वर्ष के संदर्भ में)

डॉ० एम० वेंकटेश्वर

बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ और शरतचंद्र, भारतीय साहित्य के तीन अनमोल धरोहर हैं। ये तीनों ही भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के ऋषि तुल्य मनीषी हैं। भारतीय चिंतन को मध्ययुगीन रूढ़िग्रस्त परंपराओं से मुक्त कर आधुनिकता बोध की नवीन सरणियों से सिंचित करने वाले महापुरुष हैं। बंगाल के नवजागरण के वैतालिक थे, राममोहन राय। मध्याह्न के चारण हुए बंकिमचंद्र (1838-1894) और उसकी परिणति हुई रवीन्द्रनाथ के साहित्य में। शरतचंद्र इसी रवीन्द्र युग के उज्ज्वल नक्षत्र थे। बंकिम मातृभूमि और भारती देवी के उपासक हैं, रवीन्द्र में अतींद्रिय अनुभूति है, पर शरत ने इस धरती की धूल को ही महिमामय किया। इस देश में ऐसे बहुत कम साहित्यकार हुए हैं जिनका वरण केवल समकालीन साहित्य चिंतकों ने ही नहीं, बल्कि राजनीतिज्ञों, वैज्ञानिकों, विधि-विशेषज्ञों और धर्म तत्व के ज्ञाताओं ने सहज भाव से किया। वास्तव में बंकिमचंद्र नवयुग के प्रेरक थे किन्तु वे मूलत: आदर्शवादी मूल्यों और महत्तर संस्कारों के पक्षधर थे। परंपरा को वे पुनीत मानते थे पाप से उन्हें घृणा थी। शरत पाप का प्रचार नहीं करते, परंपरा से भी उन्हें घृणा नहीं है, पर वे मनुष्य को देवता के नाते नहीं, मनुष्यता के नाते ही प्यार करते हैं। उनकी दृष्टि में कोई शास्त्र, श्लोक, मंत्र-तंत्र मनुष्य से बड़ा नहीं है। उन के पात्र विशिष्टता रखते हुए भी इसी धरती की मिट्टी से निर्मित हाड़-मांस के पुतले हैं। शरत साहित्य में भीषण भावुकता के बावजूद विपरीत चित्तवृत्तियों का आंतरिक संघर्ष मौजूद है।

रवीन्द्रनाथ (1861-1841) ने जिस नवयुग का सूत्रपात किया शरतचंद्र (1876-1938) ने उसमें माटी की गंध बसाकर उसे जन जन में प्रसारित किया। रवीन्द्रनाथ मानवीय घटनाओं को विश्व-प्रकृति के साथ जोड़कर देखते थे। उनका अंतर्द्वंद्व निर्वेयक्तिक है। उनके शास्त्र विचारों के मानवीय संस्करण हैं। उनका लक्ष्य है – देशातीत-कालातीत मानव। उन्होंने जीवन के वास्तविक सुख-दुःख को अस्वीकार नहीं किया, पर दुखातीत महाजीवन की वाणी ही उनकी रचनाओं में प्रकट हुई। रवीन्द्रनाथ ने जो कुछ किया शरत ने उसे आगे बढ़ाया। कविगुरु रवीन्द्र जहां केवल उस समय के सामाजिक नियमों से वर्जित बहुत से विषयों को, जैसे विधवा (चोखेर बालि) में प्रेम-लिप्सा को, स्वाभाविक बताकर रह गए वहाँ शरत ने उसे आगे बढ़ाकर समाज के सामने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। जिस प्रतिभा के बल पर उन्होंने रवीन्द्र युग में, बरगद के वृक्ष तले, न केवल अपना स्थान बनाया बल्कि समूचे देश को अपनी ओर आकर्षित भी किया। उनके साहित्य का क्षेत्र रवीन्द्रनाथ की तुलना में सीमित अवश्य है पर अपूर्व

है। वे प्रेम के चित्रण में अद्भुत सृजनात्मक शक्ति का परिचय देते हैं। उन पर चरित्रहीनता का आरोप लगाया गया, पर उस चित्रण में अश्लीलता खोजे भी नहीं मिलती। मिलता है अद्भुत संयम। यही संयम शरत की विशेषता है, जो अपने आप में अद्वितीय है। इलाचन्द्र जोशी के शब्दों में, " उनमें न तो रवीन्द्रनाथ की बौद्धिक ऊँचाई और व्यापकता है और न अतलस्पर्शी रहस्यानुभूति की वह निगूढ़ता और निविड़ता। पर उनमें एक बड़ी विशेषता है, जो दूसरों को सहज में प्राप्त नहीं हो सकती। जीवन को सरल, सुस्पष्ट और सुलझी हुई दृष्टि से देखकर, उसकी यथार्थता के भीतर सहज ही डुबकियाँ लगाकर, बिना किसी जटिल बौद्धिक प्रयास के उसके सच्चे स्वरूप को हृदयंगम कर लेना और उस सच्चे रूप का चित्रण बिना किसी कृत्रिम काव्यात्मक कौशल के, केवल अपनी सहज अंतरानुभूति की सहायता से करके, उसके भीतर छिपी मार्मिकता को प्रस्फुटित कर देना। यह इतनी बड़ी देन उन्हें प्राप्त है जो अक्सर बड़े-बड़े लेखकों को भी सुलभ नहीं होती। "

भारतीय साहित्य में बंकिम, रवीन्द्र और शरत अपने अपने स्थान पर अप्रतिम और अनिवार्य हैं। परंपरा की कड़ियों की तरह एक दूसरे से जुड़े हैं और प्रत्येक आगे आने वाले की तरह शरतचंद्र अपने दोनों महान पूर्ववर्तियों के ऋणी हैं। रवीन्द्रनाथ के तो वे परम शिष्य हैं। रवीन्द्र न होते तो शरत भी न होते। अपराजेय कथाशिल्पी शरत जीवन के अंतिम क्षण तक उन्हें गुरु ही मानते रहे।

जिस समय शरत का जन्म हुआ था (15 सितंबर 1876) वह चहुंमुखी जागृति और आंदोलनों का काल था। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम की असफलता और सरकार के तीव्र दमन के कारण कुछ समय तक शिथिलता अवश्य दिखाई दी थी, परंतु वह तूफान से पूर्व की शांति जैसी थी। शीघ्र ही क्रान्ति का स्वर फिर से फूटने लगा। साहित्य में इस स्वर की सबसे पहले अभिव्यक्ति हुई बंकिमचंद्र के ' आनंदमठ ' में। इसी उपन्यास ने आधुनिक बंगाल को जन्म दिया जो कालांतर में सारे देश की प्रेरणा बन गया। लेकिन इस असफलता का परिणाम यह भी हुआ की लोगों का ध्यान राजनीतिक उथल-पुथल से हटकर सामाजिक क्रान्ति की ओर उन्मुख हुआ। सामाजिक क्रान्ति के बिना राजनैतिक क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, यह सत्य स्पष्ट होने लगा। इसी पुनर्जागरण के फलस्वरूप 19वीं सदी के उत्तरार्ध में सारा देश सामाजिक क्रान्ति की पुकार से गूंज उठा। इस क्षेत्र में भी बंगाल सबसे आगे रहा। यही कारण है की भारतीय नवजागरण को प्रारम्भ करने का गौरव बंगाल की भूमि को प्राप्त है। राजा राममोहन राय भारतीय राष्ट्रीयता के जनक माने जाते हैं और नवजागरण के पुरोधा भी। परंतु सबसे पहले उनकी दृष्टि धर्म की ओर ही आकृष्ट हुई थी। उस समय धर्म ही व्यक्ति और समाज का मूलाधार था। उसके बिना समाज सुधार की कल्पना नहीं की जा सकती थी। इसीलिए राममोहन राय ने धर्म संस्कार की ओर ध्यान दिया। उन्होंने निराकार ब्रह्म की साधना, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद को हिंदू धर्म का शुद्ध रूप प्रमाणित करने की चेष्टा की और इसी उद्देश्य से उन्होंने 'आत्मीय सभा ' की स्थापना की। इस सभा में धर्म तत्वों के अतिरिक्त जाति-भेद-समस्या, कुलीन प्रथा, सहभोज, बाल विधवा, बहुविवाह और सती प्रथा आदि सामाजिक कुप्रथाओं पर भी

विचार किया जाता था। यही समाज सुधार का प्रारम्भ था जो बाद में सारे भारत में व्याप्त हो गया और ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज तथा थियोसोफ़िकल सोसाइटी आदि संस्थाओं के रूप में प्रकट हुआ। स्वामी विवेकानंद के गुरु रामकृष्ण परमहंस की जीवन दृष्टि सहित ये सब इस काल के निर्णायक तत्व हैं।

शरत का जन्म राजा राममोहन राय की मृत्यु (1833) के 43 वर्ष बाद हुआ था और जब वह दिशाहारा होकर मार्ग की खोज में भटक रहा था तथा उसकी साहित्य साधना प्रेम की पीड़ा के भीतर से उन्मुख हो रही थी।

शरत का सारा जीवन भीषण बिखराव और भटकाव की यंत्रणा से भरा था। बाल्यावस्था से ही वह दरिद्रता निराश्रय और दीनता का शिकार रहा। पिता मोतीलाल के अपने परिवार के भरण-पोषण की अक्षम आर्थिक स्थितियों ने माता भुवन मोहिनी को अपने पिता के घर देवानंदपुर में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। शरत की बाल्यावस्था देवानन्दपुर, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, पटना आदि स्थानों पर टुकड़ों टुकड़ों में गुजरी। उनके जीवन में कभी स्थिरता नहीं रही। आर्थिक निर्धनता और अभावों ने उनके जीवन के अंतिम समय तक उनका पीछा नहीं छोड़ा। वे स्वयं उन स्थितियों के लिए जिम्मेदार थे। शरत स्वभाव से बचपन से साहसी, पराक्रमी, निर्भीक, नास्तिक, सेवापरायण और अत्यंत भावुक प्रकृति के व्यक्ति थे। उनमें उत्पीड़ित और शोषित जनों के लिए अपार प्रेम और स्नेह का भाव सदैव जागृत रहता था। तत्कालीन बंगाली समाज स्त्रियॉ के प्रति विशेष रूप से निर्दयी और रूढ़ियों से ग्रस्त था। शरत, दीन-हीन, निराश्रित और पतित स्त्रियों के प्रति सदैव समर्पित था।

रात-रात जागकर रोगियों की सेवा करना, समय-असमय श्मशान जाकर दाह संस्कार करना, विवाह-पूजा आदि में आगंतुकों की सेवा करना, इन सब कामों में वह पटु था।

बचपन में कई बार पैसे के अभाव में उसकी पढ़ाई बाधित हुई और समाप्त भी हो गई। नाटक-थियेटर, गाना-बजाना और साहित्य सृजन, इन्हीं में उसका मन रमने लगा। उसके दीन-दुखियों की सेवा के अभियान और ज़ोरों से चलने लगे। उसके लिए वेश्याओं के घर तक जाना भी वर्जित नहीं था। कहा जाता है कि उन्नीस वर्षीय शरत और उसके बालसखा राजू दोनों का संपर्क कालीदासी नामक एक नर्तकी से हुआ था। कालीदासी इन दोनों से स्नेह करती थी। कंठ के माधुर्य और वाक्पटुता के कारण नारियों का उसके प्रति विशेष आकर्षण रहा है। ऐसे ही कुकर्मों के कारण कुलीन समाज में शरत की मान-मर्यादा नष्ट हो चुकी थी। इसीलिए अकुलीनों के समाज में ही उसे शरण लेनी पड़ती थी। वहीं पर उसने मनुष्य की खोज की, और जाना कि मनुष्यत्व सतीत्व से बड़ी वस्तु है। इन्हीं दिनों (1901) चोरी-चोरी 'देवदास' का सृजन चल रहा था। यद्यपि प्रौढ़ावस्था में शरतचंद्र ने इस रचना की निंदा की है। बार-बार कहा है, " वह अच्छा नहीं है, अश्लील है, और भी बहुत कुछ है। बचपन की मेरी इस रचना को मत छापो।" 2 लेकिन उस समय निश्चय ही उसने अपने प्रेम के दर्द को देवदास के माध्यम से स्वर देने का प्रयत्न किया था। अतिशय भावुकता के बावजूद यह रचना शरत के अपने असफल पर उत्कट प्रेम की

आत्मस्वीकृति ही है। इस उपन्यास के सभी चरित्रों का आधार वास्तविक है। जो उसे बहुत अधिक प्यार करती थी, स्कूल की वह साथिन धीरू , देवदास में 'पार्वती' के रूप में अवतरित हुई। धर्मदास के चरित्र का आधार बना, नाना के घर का सेवक 'मुशाई ' और चन्द्रमुखी का उपादान जुटाया एक नर्तकी ने। स्वयं शरतचंद्र ने नर्तकी के इस आभार को स्वीकार किया है। उन्होंने यह कहानी अपने मित्रों को कई बार, कई रूपों में सुनाई।

शरतचंद्र ने व्यक्तिगत अनुभव की एक रोचक कहानी अपने परम भक्त संगीतज्ञ मित्र दिलीप कुमार राय को सुनाई जो 'देवदास' उपन्यास का प्रेरक बना। शरत को नाच गाने का शौक तो बचपन से ही था। अपने इस शौक को पूरा करने के लिए वे किसी भी लांछित एवं कुख्यात जगह पर पहुँचने से परहेज नहीं करते थे। वे गाँजा, अफीम और शराब का सेवन भी करने के आदी थे जिस कारण उन्हें कुलीन समाज अपने निकट भटकने नहीं देता था। किन्तु शरत को कथित सभ्य एवं संभ्रांत समाज के द्वारा ऐसा अवमाननापूर्ण व्यवहार प्रिय था और वे जानबूझकर ऐसी स्थितियों को स्वयं निर्मित करते थे। यह शरत के चरित्र का विचित्र लक्षण था। समाज के उपेक्षित,उत्पीड़ित, दलित, तिरस्कृत और पतित, दुःखी जनों के प्रति ही उनमें प्रेम और आत्मीयता का भाव कूटकूट कर भरा था। वे मनुष्यत्व के पुजारी थे तथा इसकी रक्षा के लिए अपने आप को चरित्रहीन सिद्ध करने में उन्हें कोई गुरेज नहीं था।

उनका एक मित्र किसी जमींदार के यहाँ काम करता था। शरत इस मित्र के साथ गाना सुनने के लिए एक नर्तकी के विलास मंदिर में गया था। उस दिन उस मित्र के पास कई हजार रुपये थे। उस विलास मंदिर में शरत और उसके मित्र ने शराब और नाच-गाने का खूब आनंद लूटा। मित्र पर शराब का नशा ऐसा चढ़ा की वह अपने होश खो बैठा। शरत भी होश गंवा बैठे थे। दूसरे दिन सुबह जब दोनों मित्रों को होश आया तो मित्र ने अपने पैसे लुट जाने का हल्ला मचा दिया। मित्र की आंखों में आँसू आ गए क्योंकि वह पैसे उसके जमींदार के थे और उसके खो जाने से उसकी नौकरी जा सकती थी। मित्र को विश्वास हो गया कि उसके पास की वह धन राशि नर्तकी ने ही चुराए हैं। किन्तु ठीक उसी समय नर्तकी उनके बीच पहुँचकर पैसों की थैली उन्हें सौंप देती है। साथ ही वह उन्हें नसीहत देती है कि ऐसी जगहों पर बड़ी धन राशि लेकर कभी न जाएँ। क्योंकि ऐसी जगहों पर तो थोड़े से रुपयों के लिए भी खून खराबा हो जाया करता है। जब नर्तकी ने वे रुपये वापस कर दिए तो शरत उसकी ओर देखता रह गया। सोचने लगा, वह चाहती तो उस धन को हड़प भी सकती थी। कितनी महान है वह ! पथभ्रष्ट हो जाने पर भी मनुष्य के अंतर की सद्वृत्तियाँ नष्ट नहीं होतीं। बाहरी रूप ही मनुष्य का असली परिचय नहीं है। अनेक सती नारियां कुकर्म करती हैं, इसके विपरीत दुराचारिणियों के हृदय में भी दया-माया बनी रहती है। लोगों के अनुमान के अनुसार यह नर्तकी कालीदासी ही हो सकती है जो शरत के प्रति स्नेह और ममता का भाव रखती थी। 'देवदास' के सृजन के समय शरत उसी के पास जाता था, यही देवदास की चन्द्रमुखी बनकर उभरी। उसका चरित्र भी इस नर्तकी से मिलता है। सब कुछ दान करके वह संन्यासिनी हो गई थी, लेकिन उसके बाद भी पूजा के अवसर पर

लोगों के घर गीत सुनाने वह जाती रही। यही कालीदासी चन्द्रमुखी के रूप में अवतरित हुई, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

शरतचंद्र के जीवन में बाल्यपन से ही कई नारियां कई रूपों में आईं, माता और बहनों के अतिरिक्त धीरू, नीरदा, कालीदासी, विलासी, निरुपमा, शांति, मोक्षदा (हिरण्मयी) तथा और भी कई पीड़ित स्त्रियों ने उसके जीवन को प्रभावित किया। शरत के स्कूल की संगिनी धीरू, जिससे शरत के मन में बाल-सुलभ अवस्था में ही गंभीर किन्तु अव्यक्त प्रेम का अंकुरण हुआ था और जो अचानक उनके गाँव देवानन्दपुर छोड़कर अपने माता-पिता के संग कहीं और चली गई। शरत के बाल मन का यही विरहाकुल घाव उसके जीवन को सदैव त्रस्त करता रहा। शरत अपनी बालसखी और चिर प्रेमिका धीरू को कभी नहीं बुला पाया था। यही धीरू ' देवदास ' में पार्वती के रूप में प्रकट हुई।

शरतचंद्र का जन्म बंगाल के देवानंदपुर गाँव में15 सितंबर 1876 में हुआ। वे उनके पिता मोतीलाल और माता

भुवन मोहिनी की दूसरी संतान थे। देवानंदपुर, बंगाल का एक साधारण गाँव है। हराभरा, ताल-तलैयों, नारियल और केले के वृक्षों से पूर्ण। नवाबी शासन में यह फारसी भाषा की शिक्षा का केंद्र था। इसी गाँव में शरत का बाल्यकाल अभावों के बीच शुरू हुआ। शरत जब पाँच वर्ष का हुआ तो उसे विधिवत गाँव के पंडित बंदोपाध्याय की पाठशाला में भर्ती कर दिया गया, लेकिन शब्दश: वह शरारती था। प्रतिदिन वह कोई न कोई कांड करके ही लौटता। जैसे जैसे वह बड़ा होता गया उसकी शरारतें भी बढ़ती गईं। पाठशाला में चुपके से पंडित जी की चिलम में तंबाखू के स्थान ईंट के टुकड़े भरकर रख देना और भले लड़के की तरह अपने स्थान पर जा बैठना। पंडित जी का क्रोधवश शरारती बालक को बेंत उठाकर मारने के लिए दौड़ने के उपक्रम में शरत का छलांग लगाकर कक्षा से निकल भागने का प्रसंग, शरत ने स्वयं 'देवदास ' में लिखा है। उपन्यास में देवदास का बाल्यकाल का चित्रण, शरत के देवानंदपुर की पाठशाला की शरारतों के यथावत चित्रित से भरा पड़ा है। उसी कक्षा में शरत की बालसखी धीरू भी पढ़ती थी जिस पर शरत स्नेह-वश अपना अधिकार जताता था। धीरू भी शरत के अधिकार को स्वीकार करती थी। पंडितजी स्वयं कई बार शरत की शरारतों को अनदेखा कर जाते। एक तो वह पढ़ने में तेज था, दूसरे उनके बेटे काशीनाथ का परम मित्र भी था। काशीनाथ उसी स्कूल में पढ़ता था धीरू उसी की बहन थी। न जाने कैसे शरत की उससे मित्रता हुई। वे दोनों अकसर एक साथ खेलते हुए दिखाई देते। वे दोनों जितना एक दूसरे को चाहते उतना ही आपस में लड़ते झगड़ते भी थे। गाँव के निकट के नदी या तालाब में मछली पकड़ना, नाव लेकर नदी में सैर करना, बाग़ से फल चुराना, पतंग उड़ाना, वन-उपवन में घूमना, इन सब प्रकार के बालसुलभ चेष्टाओं में धीरू शरत की संगिनी थी। उसका असली नाम क्या था, किसी को पता नहीं परंतु सभी लोग उसे धीरू के नाम से जानते थे। धीरू को एक शौक था, वह निकट के करौंदे के झुरमुट से उसकी माला

तैयार करती और शरत को भेंट कर देती। शायद माल्यार्पण का अर्थ वह तब तक नहीं जानती थी। 'देवदास' के बाल्य जीवन के सभी प्रसंग शरत के देवानंदपुर में अध्ययन काल के ही वास्तविक प्रसंग हैं। देवदास उपन्यास में वर्णित कक्षा के प्रमुख को चूने के ढेर में गिराकर पाठशाला से पलायन का दृश्य, इसे देखकर पार्वती का हँसते हँसते लोटपोट हो जाने वाले दृश्य आदि सभी शरत के जीवन की घटनाएँ ही तो हैं। धीरू की नादानी पर शरत उसे बहुत मारता भी था जिसे वह सहज भाव से सह लेती थी, कभी-कभार वह शरत के घर में शिकायत भी करती लेकिन शरत उसे फिर मना लेता। इन प्रसंगों से उन दोनों की मित्रता में कभी कोई अंतर नहीं पड़ा। वह निरंतर प्रगाढ़ ही होती गई। शरत को धीरू के अपने प्रेम का अहसास तब होता है जब वह उससे दूर चली जाती है। उपन्यास में शरत ने अपनी इसी व्याकुलता को देवदास के माध्यम से व्यक्त किया है। विछोह की परिस्थिति में ही प्रेम के मूल्य का पता चलता है इसे देवदास में शरत ने सिद्ध किया है किन्तु इस विछोह का मूल्य दु:सह था। बहुत दिन बाद शैशव की इस संगिनी को आधार बनाकर देवदास के साथ साथ शरत ने अपने अन्य कई उपन्यासों की नायिकाओं का सृजन किया। देवदास की पारो,'बड़ी-दीदी की माधवी और श्रीकांत की राजलक्ष्मी, ये सब धीरू ही का तो विकसित और विराट रूप हैं। विशेषकर 'देवदास' में तो जैसे शरत ने अपने बचपन को ही मूर्त कर दिया।

शरतचंद्र का समस्त कथा साहित्य, असफल प्रेम की विडंबनाओं से भरा है। शरत का यह दृढ़ विश्वास था कि प्रेम में सफलता ही उसके अस्तित्व का प्रमाण नहीं है। मन ही मन किसी के लिए अपने को विसर्जित किया जा सकता है। इस वेदना को स्नेह कहें, प्रेम कहें, आयु का दोष कहें, पर इसके अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। शरत में प्रेम की भूख अपार है लेकिन तृप्ति का कहीं कोई साधन नहीं है। यह अतृप्ति दर्द के रूप में उसके अंतर में रम गयी और उसकी अभिव्यक्ति 'देवदास और बड़ी दीदी ' आदि रचनाओं में तीव्रता के साथ अभिव्यक्त हुई। इन रचनाओं में असफल प्रेम का वही दर्द परिव्याप्त है। काल्पनिक पात्र नीरदा हो या अपने सहपाठी मित्र की विधवा बहन-निरुपमा, देवदास की पारो हो या बड़ी दीदी की माधवी, वे सब एक ही हैं – असफल प्रेम की प्रतिमाएँ। प्रेम में असफल होकर भी शरत न तो आत्महत्या कर सका और न संन्यासी बन सका लेकिन स्रष्टा बनने का मार्ग उसे अवश्य मिल गया। इस मार्मिक अनुभूति ने साहित्य में प्रतिबिंबित होने का मार्ग पा लिया। वियोग ने एक शक्तिशाली कलाकार को जन्म दिया। उसके उच्छृंखल जीवन की जो अतृप्ति थी, वही उसके साहित्य-सृजन का मूलधन बनी। प्रेम की पीड़ा और साहित्य यात्रा एक साथ चलने लगी। विरह बोध ही जीवन का आवेग है, बुद्धि इसकी थाह नहीं पा सकती, ह्रदय से ही इसका स्वरूप माना जा सकता है। शरत के साहित्य में यही विरह बोध मुखर हुआ है। आदर्श और यथार्थ, समस्या और समाधान, सब कुछ ह्रदय-रस की संजीवनी में डूबे हुए हैं। शरत, अपनी जीविका की तलाश में देवानन्दपुर से भागलपुर, पटना, मुजफ्फरपुर होते हुए बर्मा (रंगून) पहुंचे जहां वे कई वर्ष रहे। भटकाव ही उनके जीवन का स्थायी भाव रहा है। मानव जीवन के दुर्वह से दुर्वह रूपों को शरत ने बहुत निकट से देखा और उसके साथ जुडते चले गए। " साधारण व्यक्ति के लिए जो जीवन अप्रतिष्ठा

और कलंक का कारण हो सकता है वही भावुक साहित्यकार के लिए बड़ी शक्ति बन जाता है।" यह कथन शरत के लिए चरितार्थ होती है। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ने लिखा है–

"जीवन-मंथन से निकला विश, वह जो तुमने पान किया।

और अमृत जो बाहर आया, उसे जगत को दान किया।"

शरत का मानना था कि " मनुष्य से किसी भी अवस्था में घृणा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति खराब दिखाई देते हैं उन्हें सुधारने की चेष्टा करनी चाहिए। यह बहुत बड़ा काम है। भगवान की इस सृष्टि में मनुष्य जितना शक्तिशाली है उतना दुर्बल भी है।" शराब पीकर जीवन नष्ट करने वालों के प्रति शरत के हृदय में करुणा का भाव जागता था। उसे क्रोध आता था किन्तु वह उन लोगों से घृणा कभी नहीं करता था, क्योंकि वह मानता था कि बुद्धि और हृदय की विशालता के मामले में शराब पीने वाले न पीने वालों से क्षुद्र हैं, यह किसी भी तरह से सत्य नहीं है।" कदाचित देवदास के पात्र को गढ़ने में शरत की यही सोच रही है।

"क्या यह आश्चर्यजनक नहीं लगता कि जो स्वयं शराब पीने और नाना प्रकार के दूसरे कुकर्म करने के लिए बदनाम हो वह दूसरों के ये ही दुर्गुण छुड़ाने का प्रयत्न करे। अपने मित्रों को समय समय पर लिखे गए पत्रों में उसने अपने इन दुर्गुणों का रस ले-लेकर बखान किया है और इसी के आधार पर बहुत से लोगों ने बहुत-सी अविश्वसनीय घटनाओं की सृष्टि कर ली। लेकिन ये सब अतिरंजित ही नहीं झूठ भी हैं। सत्य यही लगता है कि उसके अंतर में कई शरत आसान जमाये बैठे थे और इसलिए वह अपने चारों ओर एक रहस्यमय वातावरण बनाए रखना चाहता था। अपने को छिपाए रखने और अवचेतन में विद्यमान वीभत्स और क्रूर समाज से बदला लेने की भावना उससे यह सब काम करवाती रहती थी। शरत कि यही प्रतिहिंसात्मक और प्रतीकारात्मक मानसिकता उनके सारे उपन्यासों में व्याप्त है।" जहां तक शराब का प्रश्न था, पीते और लोग भी थे। शरत भी पीता था लेकिन इसी कारण लक्ष्यभ्रष्ट वह कभी नहीं हुआ। उसका सबसे बड़ा अपराध यही था कि वह तथाकथित छोटे और चरित्रहीन लोगों के बीच में रहता था। यही नहीं, अवसर पाकर वह जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि बदनाम द्वीपों में घूमने निकला जाता और वहाँ के लोगों के बीच में उनका होकर जीवन जीता। इस प्रवृत्ति के कारण उसने बहुत कुछ खोया पर बहुत कुछ पाया भी। उसका शरीर एकदम जर्जर हो गया परंतु उसकी अभिज्ञता का कोश बढ़ता ही गया। "

शरत के सभी उपन्यासों में वह स्वयं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्यमान है। 'देवदास ' उपन्यास में भी शरत के जीवन की अनेकों छवियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। शरत के जीवन की यायावरी, अनिश्चितता, दुविधात्मक मानसिक गुत्थियों का आत्मसंघर्ष और बारंबार पलायन की प्रवृत्तियाँ सभी कुछ तो देवदास के चरित्र में पूरी तरह से समा गई हैं। देवदास उपन्यास शरत के जीवन के प्रारंभिक दौर का उपन्यास है जब उनमें युवावस्था का प्रेमिल

उन्माद हिलोरें मार रहा था और उसका बचपन के असफल प्रेम का दंश ताजा था। सहज ही शरत की प्रेम की पीड़ा देवदास में अभिव्यक्त हुई है। 'देवदास' एक विफल प्रेम की त्रासद कहानी है जिसका नायक देवदास, जमींदार घराने का चंचल चित्तधारी द्वन्द्वात्मक मानसिकता का विचित्र पात्र है। अनिश्चितता, द्वंद्वात्मकता, पलायनवादिता और सबसे बढ़कर कायरता, उसके चरित्र का प्रधान लक्षण है। देवदास के प्रति शरत के मन में अपार करुणा भरी हुई है जिसे वे उपन्यास के अंत में अभिव्यक्त करते हैं और पाठकों से भी देवदास की त्रासदी के लिए करुणा के अश्रु बिन्दुओं को समर्पित करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

देवदास उपन्यास की कहानी उन्नीसवीं सदी के पुनर्जागरण काल के बंगाल की कहानी है। उस समय के बंगाल में एक ओर जहां तेजी से आधुनिक शहर में बदलता हुआ कलकत्ते जैसा बड़ा कस्बा है, वहीं दूसरी ओर अपने पतनशील सामंती मूल्यों और संस्कारों में जकड़ा ग्राम समाज है। यह समाज उपनिवेशवादी अंग्रेज़ शासकों की जमींदारी व्यवस्था से नियमित और नियंत्रित होने को ही अपनी नियति मानता है।

देवदास और पारो एक ही गाँव में बचपन से पलकर बड़े हुए थे। देवदास बंगाल के ताल सोनापुर गाँव के जमींदार नारायण मुखर्जी का लाड़ला छोटा बेटा था। उसका बड़ा भाई द्विजदास, जिसकी किशोरावस्था में शादी कर दी गई थी। जमींदार के पड़ोस में ही नीलकंठ का मध्यवर्गीय परिवार रहता था जिसकी सुंदर बिटिया पार्वती (पारो) देवदास की बालसखी थी। दोनों में बचपन से ही बहुत प्यार और हमजोली थी। देवदास मानो पारो को परोक्ष रूप से अपना ही समझता था, और उस पर अपना पूरा अधिकार जमाता रहता था। खेलकूद, पाठशाला में शरारतें और फिर भागकर पोखर के किनारे वाले झुरमुट में छिपकर बैठ जाना, उसे मनाने के लिए जमींदार का विश्वासपात्र नौकर धर्मदास का पारो की मदद से उसे ढूंढकर वापस घर ले जाने का सिलसिला चलता था। गाँव में देवदास की शरारतों से तंग आकर, एक दिन जमींदार नारायण मुखर्जी देवदास को कलकत्ता पढ़ने के भेज देते हैं। कलकत्ता जाकर वह अपनी पढ़ाई में लीन हो गया। गाँव में पारो पीछे छूट गई। छुट्टियों में कभी-कभी देवदास गाँव आता तो पार्वती से उसकी भेंट हो जाती, कभी देवदास पार्वती के घर आ जाता या दोनों गाँव के बाहर पोखर के निकट पेड़ों के झुरमुट में बैठकर खूब बातें करते। छुट्टियाँ खत्म होते ही देवदास कलकत्ता लौट जाता।

पारो के मन में देवदास बस गया था। वह मन ही मन उसकी पूजा करने लगी थी। उसके लिए देवदास ही जीवन का सर्वस्व बन चुका था जिसकी खबर किसी को न हुई। पारो देवदास को अपना ही समझ बैठी थी।

देवदास के मन में पारो के लिए प्रेम तो बचपन से ही पौजूद था किन्तु उसे इसका आभास नहीं हुआ था। उसमें प्रेम सहज भाव से अनायास अंकुरित हुआ था जिसे उसने कभी गंभीरता से नहीं लिया था। उसका कारण था, पार्वती पर उसके एकाधिकार का विश्वास।

पार्वती के तेरहवें वर्ष में प्रवेश करते ही, उसके विवाह के बारे में घर में बातें चलने लगती हैं। उसका सौन्दर्य दिनों-दिन निखरने लगा था। पार्वती के घर वाले बड़े आदमी न थे, पर संतोष यही था कि लड़की देखने में बहुत ही सुंदर थी। पार्वती की माँ की धारणा थी कि दुनिया में अगर रूप की मर्यादा और कदर है, तो पार्वती के लिए फिक्र करने की जरूरत नहीं। चक्रवर्ती परिवार में इसके पहले लड़की के विवाह में रत्ती भर चिंता नहीं करनी पड़ी थी, चिंता लड़के के विवाह में करनी पड़ती थी। उनके परिवार में लड़की के विवाह में दहेज लिया जाता था और लड़के के विवाह में दहेज देकर लड़की लाई जाती थी, लेकिन नीलकंठ खुद इस रिवाज से घृणा करते थे। उनकी ज़रा भी इच्छा न थी कि पार्वती को बेचकर रुपये कमाएं। पार्वती की माँ के मन में एक दुराशा पल रही थी कि किसी उपाय से देवदास से पार्वती का ब्याह हो जाए। उसे यह असंभव नहीं लगता था। क्योंकि देवदास और पार्वती, दोनों के परिवार इस सत्य से अनभिज्ञ न थे कि पार्वती और देवदास दोनों बचपन से एक दूसरे को चाहते हैं।

पार्वती की दादी (नीलकंठ की माँ) एक दिन देवदास की माँ से पारू और देवदास के विवाह की चर्चा छेड़ती है। देवदास की माँ इस प्रस्ताव को सुनकर आगबबूला हो उठती है। देवदास की माँ वैसे तो मन ही मन पार्वती को बहुत चाहती थी किन्तु उसे 'लड़की खरीद-बिक्री वाले ' घर की बेटी से रिश्ता मंजूर नहीं था।, विवाह के प्रस्ताव को ठुकराने का उनका यह तो एक बहाना था। वास्तव में उन्हें अपने उच्च कुल और जमींदारी का घमंड था, जिस कारण वह पार्वती की माँ को अपमानित कर विदा कर देती है।

इस संबंध में जमींदार मुखर्जी बाबू का भी यही विचारा था कि वे कभी बेटी-बेचवा के यहाँ की लड़की को अपने घर की बहू नहीं बना सकते। इससे उनके खानदान की नाक जो कट जाएगी ! यह घटना पार्वती के घर में तूल पकड़ लेती है। जमींदार नारायण मुखर्जी और उनकी पत्नी के अपमानजनक व्यवहार से क्रोधित होकर नीलकंठ चक्रवर्ती, पार्वती के लिए वर ढूँढने के लिए निकल पड़ते हैं। इन घटनाओं के बीच पार्वती क्षोभ और दुःख से व्याकुल हो उठती है। शरत ने कहानी के इस मोड़ पर पार्वती के अंतर्द्वंद्व को बहुत ही बारीकी से उकेरा है।

"छुटपन से ही उसका ऐसा खयाल था कि देवदास पर उसका थोड़ा अधिकार है। ऐसा नहीं कि किसी ने यह अधिकार उसे हाथ से दिया था ! अनजाने ही, अशांत मन ने धीरे-धीरे इस अधिकार को ऐसे चुपचाप, लेकिन इतनी दृढ़ता से, जमा लिया कि बाहर से यद्यपि आज तक उसकी कोई शक्ल नज़र नहीं आई, तथापि आज उसे खोने की बात उठते ही उसके सारे हृदय में भयानक आंधी उठने लगी।"

नीलकंठ चक्रवर्ती अपनी ज़िद से मिथ्या स्वाभिमान की रक्षा के लिए चालीस वर्ष से अधिक उम्र के हाथीपोता गाँव के विधुर जमींदार भुवन चौधरी से पार्वती का रिश्ता निश्चित कर आते हैं। घटनाचक्र बहुत तेजी से पार्वती के जीवन को अज्ञात दिशा में धकेलकर ले जाता है। देवदास को इन बातों की खबर तक नहीं थी। देवदास

इन्हीं दिनों जब गाँव आता है तो उसे उसकी माँ, पार्वती के ब्याह की चर्चा करती है। वह बताती है कि पार्वती के घर वाले उनके ही घर में रिश्ता करना चाहते थे। तब देवदास, माँ की प्रतिक्रिया जानना चाहता है। माँ उसे साफ शब्दों में पिता के प्रतिकूल विचारों से उसे अवगत करा देती है। देवदास का मन खिन्नता से भर उठता है।

एक रात पार्वती स्त्री सुलभ लाज और शर्म को त्यागकर निर्भीकता के साथ जमींदार के भवन में प्रवेश कर, गहरी नींद में सोए हुए देवदास को जगाकर अश्रुपूरित नेत्रों से वह उसके चरणों पर सिर रखकर रुँधे स्वर में कहती है –

" मुझे यहाँ थोड़ा सा स्थान दो, देव भैया!" देवदास अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं था, यही वह पारू को उस रात समझाकर विदा कर देता है। दूसरे दिन देवदास अपने पिता से पारू के संबंध में पूछना चाहता है किन्तु उसके पिता उसे धिक्कार देते हैं। उसी दिन देवदास घर छोड़कर कलकत्ता चला जाता है। कलकत्ता से वह पार्वती को पत्र लिखता है। यह पत्र उपन्यास का वह केंद्र बिन्दु है जो पार्वती और देवदास के विनाश कारण बनाता है। यह पत्र देवदास के आत्मभीरु और पलायनवादी चरित्र को उद्घाटित करता है। यह वह निर्णायक पत्र था जिससे देवदास हमेशा के लिए पारू को खो बैठता है। पत्र में देवदास विवाह के मामले में अपनी अशक्यता को प्रकट करता है। वह लिखता है कि उसके माता-पिता पारू के कुल को नीच मानते हैं और वे बेटी-बेचवा के घर की लड़की को अपने कुल की वधू कभी नहीं बना सकते। पत्र के अंत में वह पारू से निवेदन करता है कि वह उसे हमेशा के लिए भूल जाए।

पत्र को डाक में डालते ही देवदास को अपनी भूल का अहसास होता है। उसकी अस्थिर मानसिक स्थिति उसे व्याकुल कर देती है। उसे पार्वती की दयनीयता का स्मरण हो आता है। उसकी तर्क बुद्धि एकाएक जाग उठती है और वह आत्मविश्लेषण करने लगता है। अंतर्द्वंद्व देवदास की मनोदशा का मुख्य लक्षण है जो इस स्थिति में व्यक्त होती है। " डाकघर से लौटते हुए हर कदम पर उसे यही याद आ रहा था। वह सोच रहा था कि जब पार्वती का कोई कसूर नहीं तो माता-पिता इस विवाह के लिए मना ही क्यों कर रहे हैं ? वह यह समझ रहा था की सिर्फ दिखावे की कुल-मर्यादा और छोटे खयाल के चलते, नाहक किसी की जान लेना ठीक नहीं। अगर पार्वती जीना न चाहे, अगर जी की जलन छुड़ाने के लिए वह नदी में कूद पड़े, तो विश्वपिता के चरणों पर एक महापातक का दाग उस पर नहीं लगेगा क्या ? "

वह उद्विग्न अवस्था में पुन: पारू से मिलने और अपनी गलती को सुधारने के उद्देश्य से फौरन गाँव लौट जाता है। वह पारू से पोखर किनारे बाग़ में मिलता है और अधिकारपूर्वक पारू को स्वीकार करने की मनोकामना व्यक्त करता है। किन्तु तब तक देर हो चुकी थी, पारू का स्वाभिमान जाग उठा था, वह भी अपने माता-पिता की मान मर्यादा का वास्ता देकर देवदास के अहंकार पर चोट करती है। पार्वती के स्वाभिमान का दर्प देवदास को

भस्म कर देता है। “ क्यों न हो अहंकार ! तुम कर सकते हो, मैं नहीं कर सकती? तुममें रूप है, गुण नहीं। मुझमें रूप है, गुण भी। तुम बड़े आदमी हो, मगर मेरे पिता भी भीख नहीं मांगते फिरते। फिर इसके बाद खुद मैं भी किसी प्रकार तुमसे हीन नहीं रहूँगी, पता है ? “ इस बार पार्वती देवदास को ठुकरा देती है क्योंकि वह निर्णय ले चुकी थी। अपने माता-पिता के निर्णय को वह स्वीकार कर चुकी थी, क्योंकि देवदास ने उसे ठुकरा दिया था। पारू के स्वाभिमानी तर्क से क्रोधित होकर देवदास हाथ में थामे हुए बंसी की मूठ को जोर से घुमाकर पार्वती के सिर पर मार देता है जिससे पार्वती के माथे पर गहरी चोट लगती है और वह जख्मी हो जाती है। उसका चेहरा लहू से लाल हो जाता है। देवदास आत्मग्लानि और आवेश भरे स्वर में पार्वती से बोलता है – “ सुनो पार्वती, इतना रूप भी रहना ठीक नहीं। अहंकार बढ़ जाता है। देखती नहीं, चाँद इतना खूबसूरत है, इसीलिए उसमें कलंक का काला टीका है। कमल कैसा सफ़ेद होता है, इसीलिए उसमें काला भौंरा बैठा रहता है। आओ तुम्हारे पर भी कलंक की कुछ छाप छोड़ दूँ।”

उपन्यास का यह प्रसंग मार्मिक और चिरवेदना की छाप छोड़ जाता है। देवदास शिथिल और पराजित होकर अपने प्रेम के संसार को अनजाने में लुटाकर निराशा और उदासी के अंधकार में खो जाता है। उसकी कायरता और अस्थिर मानसिकता उसे बेसहारा बनाकर छोड़ देती है।

पार्वती का विवाह हो जाता है वह अपने ससुराल चली जाती है। भुवन चौधरी के परिवार में उनकी पहली पत्नी की पाँच संताने थीं। पार्वती विवाह से ही पाँच बच्चों की माँ बन गई। अब वह जमींदारनी थी। उसका अपने पति की हवेली में बहुत सम्मान था।

देवदास निराश होकर अंतर्वेदना से व्यथित होकर कलकत्ता चला जाता है। कलकत्ता पहुँचकर वह निश्चेष्ट और अन्यमनस्क स्थिति में दारुण मानसिक क्लेश का शिकार हो जाता है। उसे कुछ भी नहीं सूझता। इसी विषम और व्याकुल मन:स्थिति में उसके वियोग जनित तप्त हृदय को शीतलता पहुंचाने का उपाय सुझाता है उसका मित्र, चुन्नीलाल। चुन्नीलाल देवदास के ही बसेरे में रहने वाला एक स्वच्छंद स्वभाव का व्यक्ति था जो पढ़ाई के लिए कलकत्ता आया था किन्तु वह इतर दुर्व्यसनों में ही अपना समय बिताया करता था। उससे देवदास की व्यथा नहीं देखी जाती। वह देवदास का हितैषी मित्र होने के नाते उससे उसके दुःख का कारण पूछता है किन्तु देवदास उसे अपने निजी जीवन के संबंध में कुछ नहीं बताता। उसने देवदास की अमिट प्यास बुझाने और मानसिक शांति हासिल करने के लिए शराब लाकर दी। शराब के नशे में देवदास अपनी व्यथा को कुछ देर के लिए भूलने लगा। अपनी बेचैनी और दारुण यंत्रणा से मुक्ति का यह उपाय देवदास को प्रिय हो गया। देवदास की असह्य पीड़ा को देखकर चुन्नीलाल उसे चन्द्रमुखी के कोठे पर ले जाता है जहां चन्द्रमुखी अपने रूप और यौवन से रसिक जनों को लुभाकर उनका दिल बहलाती थी। चन्द्रमुखी, देवदास का स्वागत करती है लेकिन चन्द्रमुखी के व्यवहार से देवदास क्रोध और आक्रोश से भर उठता है। उसे उस क्षण समस्त नारी जाति से ही मानो नफरत सी होने लगती है।

वह चन्द्रमुखी को पतित और चरित्रहीन कहकर उसके मुंह पर रुपये फेंककर कोठे से क्रोध से बाहर निकल आता है। देवदास के इस आकस्मिक आवेग से चन्द्रमुखी के हृदय को गहरी चोट लगती है। देवदास उसकी चेतना को एक ही पल में झकझोर देता है। देवदास वापस अपने बसेरे में लौट आता है। उसकी अशांति तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। उसके हृदय की आग और वियोग की मर्मांतक वेदना को कुचल डालने का एक मात्र उपाय उसे शराब में उपलब्ध था। वह शराब को ही व्यथा से मुक्ति का मार्ग मान लेता है और उसी में डूब जाता है। यहीं से देवदास के अध:पतन का अध्याय प्रारम्भ होता है। उसे नशे में ही चैन मिलता था। वह पल भर के लिए भी होश में नहीं रहना चाहता क्योंकि चेतन अवस्था में उसे पार्वती की याद आती, जो उसे पार्वती के साथ हुए अन्याय की याद असह्य पीड़ा देती। इन्हीं स्थितियों में चुन्नीलाल एक बार फिर देवदास को चन्द्रमुखी से भेंट कराने के लिए लेकर जाता है। इस बार उसे चन्द्रमुखी बहुत बदली हुई सी दिखाई देती है। वह अपने वैभव और विलास को त्याग चुकी थी। बहुत सादगी के साथ वह देवदास के सम्मुख उसमें नारीत्व के स्वाभिमान को जागृत करने के लिए कृतज्ञता प्रकट करती है। चन्द्रमुखी देवदास से शराब छोड़ने की प्रार्थना करती है और उसकी पीड़ा का कारण जानना चाहती है। उसी समय चन्द्रमुखी में देवदास के प्रति प्रेम का भाव जागता है। देवदास और चन्द्रमुखी के आत्मिक संबंध इस उपन्यास को नई दिशा देते हैं। नशे की स्थिति में देवदास के मुख से पार्वती का नाम सुनकर चन्द्रमुखी को पार्वती और देवदास के प्रेम का अनुमान हो जाता है। उसे प्रतीत होता है कि देवदास ने प्रेम में बहुत गहरी चोट खाई है। वह इसका कारण जानने का प्रयत्न करती है। चन्द्रमुखी का संवेदनशील मन देवदास की अंतर्वेदना को को पहचान लेता है। चन्द्रमुखी स्वयं देवदास से प्रेम करने लगी थी किन्तु उसे मालूम था कि देवदास उससे नफरत करता है। देवदास उसे एक नीच और गिरी हुई औरत समझता है। वह पार्वती को, जिसे वह अपनी ही चंचल चित्त वृत्ति और कायरता के कारण खो बैठा है, उच्च कोटि की शीलवती कुलवधू मानता है।

चन्द्रमुखी कहती है - " सच बताऊँ, तुमको दुःख होता है तो मुझे भी पीड़ा पहुँचती है। फिर मैं शायद बहुत बातें जानती हूँ। जब तुम नशे में होते थे, तुम्हारे मुंह से मैं बहुत कुछ सुनती रही हूँ। लेकिन तो भी मुझे यह विश्वास नहीं होता कि पार्वती ने तुम्हें ठगा है, बल्कि मेरा खयाल है, तुमने ही अपने को ठगा है। देवदास ! उम्र में मैं तुमसे बड़ी हूँ, दुनिया में बहुत कुछ देखा है। मुझे क्या लगता है, बताऊँ ? लगता है तुमसे ही गलती हुई है। लगता है, चंचल और अस्थिर चित्त के नाम से स्त्रियों की जितनी बदनामी है, हकीकत में उतनी वे होती नहीं। बदनाम करने वाले भी तुम्हीं लोग हो, सुनाम करने वाले भी तुम्हीं लोग हो।"

'देवदास, जो प्यार करती है, सब कुछ बर्दाश्त करती है। जिसे यह पता है कि केवल हृदय से प्यार करने में कितना सुख कितनी शांति है, वह नाहक दुःख और अशांति को खींचकर नहीं लाना चाहती। लेकिन मैं जो कहना चाहती थी, दरअसल पार्वती ने तुम्हें रत्ती भर भी दगा नहीं दिया, तुमने खुद अपने आपको दगा दिया है। जानती हूँ, आज बात समझने की जरूरत नहीं है मगर जब समय आयेगा तो समझोगे कि मैंने सच ही कहा था'।

देवदास के संग उसका विश्वासपात्र सेवक धर्मदास सदा उसके साथ उसकी देखभाल करने के लिए रहता था। जब भी देवदास को रुपयों की जरूरत होती तो वह गाँव जाकर रुपये ले आता। देवदास को रुपयों की जरूरत केवल शराब के लिए ही पड़ती थी। शहर में रहते हुए देवदास शराब में इस कदर डूब जाता है कि उसका स्वास्थ्य पूरी तरह नष्ट होकर वह केवल हड्डियों का ढांचा भर रह जाता है।

उसके पिता जमींदार नारायण मुखर्जी की मृत्यु हो जाती है। वह गाँव जाता है। अपने भाई द्विजदास और माँ के साथ कुछ समय गुजारता है। जमींदार मुखर्जी की मृत्यु की खबर पाकर पार्वती देवदास से मिलने ताल सोनापुर आती है। वह देवदास की हालत देखकर व्यथित हो जाती है। धर्मदास से वह सच्चाई जानना चाहती है। धर्मदास पार्वती से देवदास से शराब छुड़ाने का आग्रह करता है।

पार्वती, देवदास से विवाह के बाद पहली बार मिलती है। एक शाम वह देवदास से मिलने उसके घर जाती है। देवदास, पार्वती को अपने पास बिठाकर उसका हालचाल पूछता है। बचपन की बातों को वे दोनों याद कर भावुक हो उठते हैं। देवदास बहुत बदल गया था। उसकी क्षीण काया पार्वती को किसी अशुभ का संकेत दे रही थी। वह देवदास के चरणों में झुककर उसकी सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना करती है। पार्वती को बचपन से देवदास की सेवा करने की उत्कट अभिलाषा थी जिसे वह इस जनम में पूरा करना चाहती थी। वह उससे शराब छोड़ने के लिए कहती है लेकिन वह पार्वती की इस विनती को स्वीकार नहीं करता। वह कहता है कि पार्वती के लिए जितना उसे भुला देना असंभव है उसके लिए भी शराब छोड़ना उतना ही कठिन है, क्योंकि शराब ही उसे जीवित रखे हुए है। अंत में देवदास से विदा लेते हुए वह देवदास को एक बार उसके पास उसके गाँव हाथीपोता आने की प्रार्थना करती है। वह पार्वती को वचन देता है कि एक बार (देह छोड़ने से पहले) वह अवश्य पार्वती के घर आएगा।

कलकत्ता पहुँचकर वह चन्द्रमुखी के पास जाता है। उसे पता चलता है कि चुन्नीलाल कलकत्ता छोड़कर कहीं चला गया। चन्द्रमुखी भी किसी छोटे से गाँव में रहते हुए परोपकार में अपना शेष जीवन बिताने के लिए शहर छोड़ने की तैयारी कर रही थी। देवदास उसके पास कुछ दिन ठहरता है और उसे कुछ रुपये देकर विदा करता है। चन्द्रमुखी नामक अश्वथझूरी गाँव में दो साल तक निवास करती हुई ग्रामवासियों में मग्न हो जाती है।

कलकत्ता में रहते हुए देवदास का स्वास्थ्य गिरने लगता है। बीच बीच में वह रुपयों के लिए अकसर गाँव जाया करता था। एक बार पार्वती की सहेली मनोरमा उसे नशे की हालत में गाँव में भटकते हुए देखकर, पार्वती को पत्र लिखती है जिसमें वह देवदास की दुर्दशा का वर्णन करती है। मनोरमा का पत्र पाते ही, पार्वती फौरन देवदास को अपने साथ लिवा ले जाने के लिए ताल सोनापुर पहुँचती है लेकिन उससे पहले ही देवदास वहाँ से शहर जा चुका था। दुःखी मन से पार्वती अपने घर लौट आती है।

इधर चन्द्रमुखी निकट के गाँव में रहते हुए एक बार देवदास से भेंट करने ताल सोनापुर आती है किन्तु उसे भी देवदास के दर्शन नहीं होते, तब वह देवदास की खोज में दुबारा कलकत्ता जाती है। देवदास को ढूँढने के लिए ही वह कलकत्ते में फिर से एक घर किराये पर लेकर रहने लगती है। उसे आशा थी कि एक न एक दिन देवदास उसके पास अवश्य आयेगा। वह देवदास को ढूँढना शुरू करती है। उसे कलकत्ता आए डेढ़ महीना बीत जाता है। एक रात जब वह हताश होकर घर वापस लौट रही थी कि उसने देखा, एक घर के सामने कोई आप ही आप कुछ बोल रहा था। चन्द्रमुखी के लिए यह पहचानी आवाज थी। करोड़ों में भी वह उस स्वर को पहचान लेती थी। जगह अंधेरी थी, फिर नशे में चूर वह आदमी औंधा पड़ा था। वह देवदास ही था। चन्द्रमुखी की आँखों से अविरल आंसू बहने लगे। देवदास कुछ गा रहा था। चन्द्रमुखी एक गाड़ी रोक कर उस पर देवदास को किसी तरह चढ़ाकर अपने घर ले आती है।

धर्मदास गाँव से रुपए लेकर देवदास को ढूँढता हुआ चंद्रमुखी के पास आता है। चन्द्रमुखी, देवदास के शरीर पर पट्टी बंधी हुई पाती है जो ऑपरेशन की निशानी थी। उसे देखकर वह घबरा जाती है। सुबह जब देवदास होश में आता है तो वह अपने को चन्द्रमुखी के पास पाकर आश्वस्त हो जाता है। वह अपने मन में चन्द्रमुखी के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त कर देता है। वह उससे पूछता है कि क्यों वह उसकी इतनी सेवा करती है? उसका क्या रिश्ता है उसके साथ ? क्यों उसे वह इतनी आत्मीय लगती है। उसके साथ कितने जन्मों का बंधन है यह? देवदास चन्द्रमुखी से विदा होकर कहीं दूर चला जाना चाहता है। चन्द्रमुखी देवदास की देखभाल करने के लिए उसी के साथ जाना चाहती है किन्तु देवदास उसे मना कर देता है। वह कहता है कि यदि पार्वती को यह बात मालूम होगी तो वह क्या सोचेगी ? और फिर यह उचित भी नहीं है। वह चंद्रमुखी से कहता है -

“पार्वती और तुममें कितना फर्क है, फिर भी कितनी समानतना ! एक है स्वाभिमानिनी, उद्धत, दूसरी कितनी शांत,कितनी संयमी। वह कुछ भी बर्दाश्त नहीं कर सकती, और तुम्हारी सहनशक्ति की हद! उसका कितना नाम है, कितनी बड़ाई, और तुम्हारी कितनी बदनामी ! उसे सब प्यार करते हैं, तुम्हें कोई नहीं। मगर मैं करता हूँ, बेशक करता हूँ प्यार ! “ देवदास ने भारी निश्वास छोड़कर फिर कहा,“ पाप-पुण्य का विचार करने वाले जाने तुम्हारा क्या फ़ैसला करेंगे, लेकिन मृत्यु के बाद फिर कहीं मिलना हुआ तो मैं तुमसे दूर हर्गिज न रह सकूँगा।”

इस अवसर पर चन्द्रमुखी विह्वल होकर मन ही मन प्रार्थना करने लगी कि ‘ कभी किसी जन्म में अगर इस पापिन का प्रायश्चित्त हो तो हे भगवान मुझे यही पुरस्कार देना।’

देवदास को आभास हो चुका था कि वह कुछ ही दिनों का मेहमान है, उसकी हालत गिरती जा रही थी। शराब ने उसे खोखला कर दिया है, उसे कई तरह के रोगों ने जकड़ लिया है, ऐसी स्थिति में वह चन्द्रमुखी से अंतिम बार विदा हो रहा था। चन्द्रमुखी के यह पूछने पर कि “ फिर कब भेंट होगी? “ देवदास ने कहा, “ यह तो

नहीं कह सकता, मगर जीते जी तुमको भूलूँगा नहीं, तुमको देखने की प्यास मिटेगी नहीं।" प्रणाम करके चन्द्रमुखी हट गई। मन ही मन बोली – 'मेरे लिए यही बहुत है। इससे ज्यादा की आशा नहीं करती।'

चन्द्रमुखी के घर की चौखट से बाहर निकलते हुए देवदास, चन्द्रमुखी को दो हजार रुपये देयकर कहता है, "इन्हें रख लो। मनुष्य के शरीर का क्या ठिकाना ! आखिर को तुम मझधार में डूबोगी ?"

जैसे जैसे उपन्यास अंत की ओर बढ़ता जाता है देवदास के जीवन की त्रासदी तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। वह अपने मन में चन्द्रमुखी के निश्छल और निस्वार्थ प्रेम के प्रति नतमस्तक हो जाता है। उसे भी चन्द्रमुखी से प्रेम हो जाता है। किन्तु उसे उस पतनोन्मुख मानसिक अवस्था में भी पार्वती के लाज और स्वाभिमान की चिंता बनी रहती है। उसे पार्वती के प्रेम पर विश्वास है। वह परोक्ष रूप से भी पार्वती के प्रेम की रक्षा करना चाहता है, किन्तु उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी।

देवदास के शरीर को शराब ने क्षत-विक्षत कर दिया था तो उसकी आत्मा को उसकी कायरता, भीरुता और अनिश्चय ने रौंद डाला था। उसने स्वयं अपनी आत्मा का हनन किया था। जीवन के अंतिम क्षणों में वह अपने ही किए हुए का प्रायश्चित्त करना चाहता था किन्तु उसके पास इसका कोई उपाय नहीं था। वह सारा जीवन पार्वती को अपने ही हाथों खो देने के मर्मांतक दुःख और पीड़ा से मुक्त नहीं हो सका और न ही पार्वती को भूल सका था।

देवदास, चन्द्रमुखी के पास से धर्मदास के साथ चुन्नीलाल का पता लगाकर उससे मिलने लाहौर चला जाता है। वहाँ कुछ समय रहने के उपरांत इलाहाबाद, पटना, काशी आदि शहरों में घोर अशांति और व्याकुलता के बीच भटकने के बाद वह बंबई में धर्मदास के साथ एक साल गुजर देता है। भादों के महीने में एक दिन सवेरे धर्मदास के कंधे का सहारा लेकर देवदास बंबई के अस्पताल से निकलकर गाड़ी पर बैठता है। धर्मदास उसे माँ के पास चलने की विनती करता है। लेकिन देवदास माँ को शर्म से अपना मुंह नहीं दिखाना चाहता।

"देवदास की दोनों आँखें छलछला उठीं। इधर कई दिनों से माँ की बेहद याद आ रही थी। अस्पताल में पड़े पड़े देवदास यही सोचता रहा, दुनिया में उसके सब हैं, मगर कोई नहीं। माँ हैं, बड़े भाई हैं, बहन से भी बढ़कर पार्वती है, चन्द्रमुखी है; उसके सभी हैं पर वह किसी का नहीं।"

देवदास की काया स्याह हो गई थी। शरीर में हड्डियाँ ही शेष रह गई थीं, आंखे एकबारगी धंस गई थीं, सिर्फ एक अस्वाभाविक चमक चेहरे पर विद्यमान थी। माथे के बाल रूखे और छिछले, चाहे तो गिन लिए जाएँ। हाथ की उँगलियाँ देखकर घृणा होती- एक तो दुबली, फिर घिनौने रोग के दाग पड़े हुए थे। "स्टेशन पहुँचकर धर्मदास ने देवदास से पूछा – कहाँ का टिकट कटाऊँ? सोच विचार कर देवदास बोला, ' चलो घर चलें, फिर देखा जाएगा।' वे हुगली का टिकट लेकर गाड़ी में सवार हुए। धर्मदास उसके पास ही रहा। देवदास बुखार से बेहोश पड़ा

रहा। उसे कहीं भीतर से विश्वास हो गया कि अब उसका अंत निकट आ गया है। गाड़ी जब पंडुआ स्टेशन पर पहुंची, सवेरा हो रहा था। सारी रात बारिश होती रही। देवदास उठकर खड़ा हुआ। धर्मदास नीचे सो रहा था। देवदास ने हल्के हल्के उसके ललाट का स्पर्श किया, शर्म से उसे जगा न सका। उसके बाद दरवाजा खोलकर धीरे धीरे गाड़ी से उतर पड़ा। गाड़ी सोए हुए धर्मदास को लेकर चली गई। थरथराते हुए वह स्टेशन से बाहर आया। वह जल्द से जल्द पार्वती के गाँव हाथीपोता पहुंचना चाहता था। उसने एक बग्घीवाले से पूछा – भैया हाथीपोता ले चलोगे? बरसात में बग्घी उस रास्ते नहीं जा सकेगी कहकर बग्घी वाले उसे बैलगाड़ी से जाने की सलाह देते हैं। एक बैलगाड़ी वाला उसे हाथीपोता ले जाने के लिए तैयार हो जाता है लेकिन वह कहता है कि दो दिन लगेंगे। रास्ता बहुत दुर्गम और बीहड़ था। देवदास अपने मन में विचारने लगा कि क्या वह दो दिन तक जीवित रह सकेगा? लेकिन उसे किसी हाल पार्वती के पास जाना ही पड़ेगा। उसे पार्वती को दिए वचन को निभाना था। चाहे जैसे भी हो उसे अंतिम दर्शन देना ही था। लेकिन उसे अपने जीवन की लौ बुझती हुई प्रतीत हुई, जिसका उसे डर था। उसे आसन्न मृत्यु का आभास होने लगा था।

जीवन के शेष क्षणों में एक और स्नेह और आत्मीयता से भरा कोमल मुखड़ा अत्यंत पवित्र सा होकर उसे दिखाई पड़ा, यह मुखड़ा था चन्द्रमुखी का। जिसे पापिन कहकर वह सदा घृणा करता रहा, जो उसके लिए फूटफूटकर कर रोई थी, उसकी याद आते ही उसकी आँखों से आँसू झरने लगे। शायद बहुत दिनों तक उसे इसकी खबर भी न मिल सकेगी। रास्ता ठीक नहीं था। कहीं कहीं बरसात का पानी जम गया था, कहीं रास्ता टूट गया था, कीचड़ ही कीचड भरा पड़ा था। बैलगाड़ी चली तो कहीं कहीं उतरकर गाड़ी के पहिये ठेलने की नौबत आई। जैसे भी हो सोलग कोस की दूरी तय करनी थी।

रास्ते में बारिश शुरू हो गई। बीच बीच में बैलगाड़ी दलदल में फंस जाती तो गाड़ीवान के साथ देवदास भी उसी जर्जर अवस्था में उतरकर गाड़ी को दलदल से निकालने में मदद करता। सारा दिन चलने चलते बारिश और तेज हवा के थपेड़ों के बीच गाड़ी में कराहते, खाँसते, खून उगलते हुए देवदास की अंतिम इच्छा, किसी भी हाल पार्वती की शरण में पहुँच जाने की थी। रात बढ़ती जाती है, थोड़ी-थोड़ी देर में देवदास क्षीण और करुण स्वर में गाड़ीवान से ‘ और कितनी दूर है भैया ‘ कहकर पूछता रहता। वह गाड़ीवान से मनुहार करता –“ जल्दी पहुंचा दो भैया, तुझे काफी रुपए दूंगा।उसके जेब में सौ रुपये का एक नोट था। उसको दिखाकर बोला, एक सौ रुपये दूंगा, पहुंचा दो। ”

दिन भर गाड़ी चलती रही। बारिश होती रही। देवदास रह-रहकर गाड़ीवान से कराहते हुए डूबती आवाज़ में गाँव की दूरी पूछता जाता। शाम होते होते देवदास की नाक से लहू टपकने लगा। जी जान से उसने नाक को दबाये रखा, फिर उसे लगा कि दाँत के बगल से भी जहरीला लहू निकल रहा है, सांस लेने में भी कष्ट महसूस हो रहा है। उसने हाँफते हुए पूछा- ‘और कितनी दूर है भैया?’

गाड़ीवान बोला, ‘ बस दो कोस और। रात के दस बजे तक पहुँच जाऊंगा। देवदास ने बड़ी मुश्किल से रास्ते की तरफ देखते हुए कहा, “भगवान “ ! गाड़ीवान ने पूछा, “ ऐसा क्यों कर रहे हैं बाबूजी ?”

देवदास इसका जवाब न दे सका। गाड़ी चलने लगी, और रात दस की बजाए बारह बजे हाथीपोता के जमींदार भुवन चौधरी की हवेली के सामने चौतरा वाली पीपल के नीचे गाड़ी जा लगी। गाड़ीवान ने आवाज दी “बाबूजी उतरो। “कोई आवाज नहीं। फिर पुकारा, फिर कोई जवाब नहीं। उसे डर लगा। उसने मुंह के पास लालटेन ले जाकर पूछा, “सो गए, क्या बाबूजी ?”देवदास देख रहा था। होंठ हिलाकर कुछ बोला। क्या बोला, समझ में नहीं आया। गाड़ीवान ने फिर पुकारा- बाबूजी।“देवदास ने हाथ उठाने की कोशिश की, लेकिन न उठा सका। आँखों से सिर्फ आँसू की दो बूंदें ढुलक पड़ीं। गाड़ीवान ने अपनी अक्ल लगाई। पीपल के चौंतरे उसने पुआल का बिछावन लगाया, और बड़ी मुश्किल से देवदास को गाड़ी पर से उतारकर उस पर सुला दिया। बाहर कोई न था। जमींदार की सारी हवेली सोयी पड़ी थी। देवदास ने किसी तरह से सौ रुपये वाला नोट निकालकर दिया। लालटेन की रोशनी में गाड़ीवान ने देखा कि बाबू ताक रहे हैं, पर बोल नहीं पाते। रात भर गाड़ीवान लालटेन की रोशनी में देवदास के पाँव के पास बैठा रहा।

सुबह होते ही उजाले में जमींदार के घर से लोग बाहर निकले और पीपल के चौतरे पर पहुंचे तो देखा कि एक भला आदमी जिसके बदन पर कीमती ऊनी चादर, पाँव में कीचड़ से सने महंगे जूते, उँगली में नीले नग की अंगूठी , धारण किए हुए दम तोड़ रहा था। डॉक्टर, जमींदार, उनका बेटा महेंद्र और गाँव वाले सभी इकट्ठा हो कर उस बेबस, बेज़ुबान, मरणासन्न व्यक्ति को घेरे खड़े हो जाते हैं। सबके मुंह से आह निकलती है। भीड़ में से कोई दया करके मुंह में बूंद भर पानी दाल देता है। देवदास ने एक बार उसकी ओर करुणा दृष्टि से देखा और आँखें मूँद लीं। कुछ देर और ज़िंदा था, फिर सब कुछ खत्म। इस तरह देवदास पार्वती के चौखट पर ही दम तोड़ देता है, वह पार्वती तक पहुँचकर भी उसे नहीं देख पाता। यह उसकी नियति थी।

लाश की शिनाख्त की जाती है, पुलिस जांच पड़ताल करके उसे ताल सोनापुर का देवदास घोषित कर देती है। महेंद्र और भुवन बाबू दोनों वहाँ मौजूद थे। महेंद्र कहता है कि यह छोटी माँ के मैके का है। वह अपनी माँ पार्वती को बुलाना चाहता है किन्तु भुवन बाबू उसे फटकार कर रोक देते हैं।

ब्राह्मण लाश थी, फिर भी गाँव के किसी ने छूना नहीं चाहा। देवदास की लावारिस लाश को गाँव के डोम उठाकर ले गए और किसी सूखे पोखर के किनारे अधजला डाल दिया। कौए, गिद्ध, सियार लाश को नोचनोचकर छीना झपटी करने लगे। यही देवदास का करूँ और दुर्भाग्यपूर्ण अंत था। एक हारे हुए प्रेमी का अंत। हवेली में पार्वती अपनी नौकरानी से, हवेली के द्वार पर ताल सोनापुर के देवदास नामक व्यक्ति की मृत्यु की खबर सुनती है

तो वह हवेली के बाहर जाने के लिए बेतहाशा दौड़ती हुई मूर्छित होकर गिर पड़ती है। मूर्छा टूटने पर वह उन्माद की अवस्था में सिर्फ इतना पूछती है कि " रात में वे आए थे न ? सारी रात .... ।"

पार्वती के आगे के हाल के बारे में जानने और बताने की तनिक भी इच्छा लेखक को नहीं है। उपन्यास की अंतिम पंक्तियाँ देवदास को लेखक की करुणापूरित श्रद्धांजलि है। लेखक पाठकों से इस प्रकार निवेदन करता है–

"आप लोग जो भी इस कहानी को पढ़ेंगे, हम जैसे ही दुःखी होंगे। फिर भी अगर देवदास जैसे बदनसीब, असंयमी और पापी से कभी परिचय हो जाए तो उसके लिए प्रार्थना कीजिए कि और चाहे जो भी हो, उसके जैसी मौत किसी की न हो। मरने का कोई दुःख नहीं, लेकिन कोई स्नेह स्पर्श उस समय उसके ललाट तक पहुंचे, एक भी करुणा-विगलित, स्नेहमय मुखड़ा देखते हुए उस जीवन का अंत हो। मरते वक्त जिससे वह किसी की आँख में आँसू की एक बूंद देखकर मर सके। "

देवदास उपन्यास की रचना शरतचंदर ने सन् 1901 में कर दी थी। यह उपन्यास उन्हें कदाचित प्रिय नहीं था। उनकी दृष्टि से इस उपन्यास में कई दोष थे। देवदास, पात्र के प्रति भी वे बहुत आश्वस्त नहीं थे, क्योंकि इसके नायक (देवदास) में चारित्रिक दृढ़ता का अभाव था और साथ ही यह एक आत्महंता शराबी पात्र था जिसके प्रति पाठक वर्ग की संवेदना का अनुमान लगाना कठिन था। इसीलिए शरत ने इस उपन्यास को महत्व नहीं दिया। किन्तु सन् 1917 में इस उपन्यास की पाण्डुलिपि उनके मित्रों के हाथ लगी जो उसी वर्ष प्रकाशित हुई। शरत को इस उपन्यास की अपेक्षा 'चरित्रहीन और श्रीकांत ' अधिक प्रिय थे। शरत के देवदास के प्रति विमुखता का एक कारण यह भी हो सकता है कि देवदास का स्वभाव और चरित्र दोनों, शरत के अपने स्वभाव और व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता। शरत जुझारू, निर्भीक और दृढ़-निश्चयी थे। उन्होंने संकटग्रस्त पतित स्त्रियों को हृदय से अपनाया था। उन्होंने प्रथम पत्नी के मरणोपरांत दूसरा विवाह किया, दोनों ही विवाह उन्होंने संकटग्रस्त असहाय स्त्रियों की रक्षा और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए किए थे और सुखी और सुदीर्घ वैवाहिक जीवन जिया।

देवदास उपन्यास का सिनेमाई रूपान्तरण :

'देवदास' उपन्यास ने फिल्म जगत को इसके प्रकाशन काल से ही न केवल अभिभूत किया बल्कि इसे फिल्म के रूप में रूपांतरित करने के लिए भी प्रेरित किया। भारतीय सिनेमा के आरंभिक दौर में उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों पर आधारित कथाओं पर ही फिल्म निर्माण की स्वस्थ परंपरा रही है। इसी क्रम में शरचन्द्र की कालजयी कृति 'देवदास' पर भी दर्जनों फिल्में बनी हैं। 'देवदास' उपन्यास 1917 में पहली बार बांग्ला में छपा था हालाकि शरतचंद्र ने इसे 1901 में ही लिख लिया था, इसीलिए इसमें 1900 ई॰ के आरंभ का सामाजिक परिवेश चित्रित हुआ है। प्रकाशन के दस साल बाद, सन् 1928 में पहली बार नरेश मित्र के निर्देशन में इस पर एक फीचर फिल्म

बनी, जो मूक थी। तब से अब तक 'देवदास' उपन्यास पर आधारित सोलह फिल्में बंगाली और हिंदी ही नहीं असमिया, तेलुगु, तमिल, उर्दू आदि में बन चुकी हैं। यह एक साहित्यिक कृति की शक्ति है जो हर युग के फ़िल्मकारों की पहली पसंद और चुनौती भी रही है। सन् 2010 में इकबाल कश्मीरी ने पाकिस्तान में और हाल ही में बांग्लादेश में भी चाशी नज़रुल इस्लाम ने इस पर फिल्म बनाई। वर्तमान युवा पीढ़ी के फ़िल्मकारों में सन् 2002 में संजयलीला भंसाली ने 'देवदास' निर्देशित किया। जिसमें निर्माता-निर्देशक ने अपने ढंग से सामयिक सामाजिक परिवेश के अनुकूल, मूलकथा में परिवर्तन करके पार्वती के बरक्स चन्द्रमुखी के चरित्र को उभारने का प्रयास किया। दर्शकों ने इसे पसंद किया और इसके तकनीकी पक्ष की सराहना की। रंगीन प्रारूप में भव्य और महंगे सेटों के सहारे शास्त्रीय नृत्य शैली में चन्द्रमुखी के पात्र को अधिक विस्तार देकर इसे मनोरंजक ही बनाया गया। इसी साल शक्ति सामंत ने 76 वर्ष की उम्र में बंगाली भाषा में 'देवदास' बनाई। इस कृति ने हिंदी फिल्मों के युवा निर्देशक अनुराग कश्यप को भी आकर्षित किया और उन्होंने सन् 2009 में 'देव डी' बनाई। दरअसल शरतचंद्र का नायक देवदास पिछले सौ वर्षों से हर काल खंड में हर वर्ग को आकर्षित करता रहा है।

देवदास एक सीधी-सादी प्रेमकथा है, लेकिन अपने कारुणिक अंत से वह सबका दिल छू लेती है। हिंदी में इस प्रेमकथा को नरेश मित्र ने 1927 मे, पी सी बरुआ ने 1935 में, बिमल रॉय ने 1955 में संजयलीला भंसाली ने 2002 में, और अनुराग कश्यप ने 2009 में इसे फिल्म में रूपांतरित किया। यह भी गौरतलब है कि देवदास उपन्यास का हिंदी अनुवाद पी सी बरुआ की फिल्म प्रदर्शित होने के बाद प्रकाशित हुआ। 1935 में पीआईआई सी बरुआ के देवदास का छायांकन बिमल रॉय ने किया था। बिमल रॉय ने बीस साल बाद 1955 में अपनी देवदास बनाई। इस देवदास के लिए बिमल रॉय ने नवेन्दु घोष से पटकथा (स्क्रीन-प्ले) लिखवाई और राजेंद्रसिंह बेदी से संवाद। बंगाल के ग्रामाञ्चल की विश्वसनीयता के लिए एस डी बर्मन के संगीत को चुना। पीसी बरुआ के 'देवदास' को कुन्दन लाल सहगल, जमुना और राजकुमारी ने पर्दे पर पुन:सृजित किया, वहीं बिमल रॉय ने देवदास के पात्र के लिए दिलीप कुमार, पार्वती के लिए सुचित्रा सेन और चन्द्रमुखी के लिए वैजयंतीमाला का चयन किया। सन् 1979 में बंगाली में दिलीप रॉय के निर्देशन में सौमित्र चटर्जी, सौमित्रा मुखर्जी और सुप्रिया चौधरी के साथ देवदास का निरमा न किया गया।

शरत के उपन्यास देवदास का तेलुगु अनुवाद, तेलुगु भाषियों में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। यह प्रकाशन काल में और कालांतर में भी आज तक साहित्य और सिनेमा प्रेमियों की पहली पसंद है और सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। इसके अनगिनत संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और आज भी यह लोकप्रिय कथा साहित्य की श्रेणी में अग्रगण्य है। सन् 1953 में (26 जून 1953) में तेलुगु के सुविख्यात निर्माता डी एल नारायण और वेदांतम राघवैया के सशक्त निर्देशन में 'देवदासु ' नाम से फिल्म बनी जिसे तमिल में भी ध्वन्यांतरित (डबिंग) किया गया। इस फिल्म के पटकथा भी लेखक भी वेदांतम राघवैया ही थे। इस फिल्म की प्रमुख भूमिकाएँ अक्कीनेनी

नागेश्वर राव (देवदास), सावित्री (पार्वती) और ललिता (चन्द्रमुखी) ने निभाई थीं। इस फिल्म का संगीत सी आर सुबबुरामन और विश्वनाथन-राममूर्ति ने दिया था। इस फिल्म की अवधि 190 मिनट है। भारतीय सिनेमा में तेलुगु में निर्मित ‘देवदास ‘ का एक विशेष स्थान है और इसने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। इस फिल्म की अनेकों विशेषताओं में कलाकारों का अभिनय कौशल, काथानुकूल गंभीर और दार्शनिक संवेदनाओं से भरपूर मर्मस्पर्शी संगीत से सजे गीतों की शृंखला और सशक्त संवाद प्रमुख हैं। ध्यातव्य है कि तेलुगु भाषा में देवदास का निर्माण हिंदी के बिमल रॉय के देवदास (1955) से पहले हुआ था। अकसर लोग हिंदी और तेलुगु के ‘देवदास ‘ फिल्मों की तुलना करते हैं। सभी ने हिंदी से अधिक तेलुगु – देवदास को पसंद किया और सराहा है। कहा यह भी जाता है कि स्वयं अभिनय सम्राट दिलीप कुमार ने तेलुगु के कथानायक अक्कीनेनी नागेश्वर राव के अभिनय से प्रभावित हुए थे और उनके अभिनय की खुलकर प्रशंसा की। सन् 1974 में तेलुगु सिनेमा के प्रयोगधर्मी अभिनेता जी कृष्णा ने अपने ही बैनर तले पत्नी (अभिनेत्री) विजय-निर्मला के निर्देशन में तेलुगु में पुन: देवदास का निर्माण किया जिसमें मुख्य भूमिकाओं में क्रमश: कृष्णा स्वयं, विजय-निर्मला और जयंती ने अभिनय किया। यह फिल्म बुरी तरह विफल हुई। इसे दर्शकों ने नकार दिया।

हिंदी (बिमल रॉय) और तेलुगु (वेदांतम राघवैया) भाषाओं में निर्मित देवदास की तुलना करने पर यह स्पष्ट दिखाई दे जाता है कि अभिनय कला की दृष्टि से अक्कीनेनी नागेश्वर राव ने देवदास के पात्र को तेलुगु देवदास में जिस तरह सहजता के साथ जीवंत कर दिया वैसी स्वाभाविकता दिलीप कुमार के अभिनाय में नहीं दिखाई दी।

उनमें नाटकीयता और कृत्रिमता का पुट स्पष्ट दिखाई देता है। हिंदी फिल्म की तुलना में तेलुगु फिल्म की पटकथा अधिक सशक्त और मर्मस्पर्शी है। तेलुगु में संवादों में गहराई, देवदास की निराश, हताश और नियतिवादी दार्शनिकता फिल्म को अधिक गंभीर बना देती है। अक्किनेनी नागेश्वर राव ने स्वयं को इस भूमिका में ढालने के लिए अथक परिश्रम किया था। देवदास की अंतिम अवस्था के अभिनय के लिए नागेश्वर राव ने अपना पूरा कायाकल्प कर देवदास के उस मरणासन्न रूप को धारण कर पात्र को अमर कर दिया।

किन्तु यह तुलनात्मक भेद हिंदी और तेलुगु दोनों फिल्मों के दर्शकों को ही आभास होगा। तेलुगु फिल्म के सारे गीत बहुत ही अर्थगर्भित और निराशावादी दार्शनिकता को लिए हुए हैं। हिंदी फिल्म की गति भी अपेक्षाकृत धीमी है जब कि तेलुगु में यह गति धीमी होते हुए भी रोचकता को बनाए रखती है। आज भी तेलुगु भाषी दर्शक देवदास को पुन: पुन: देखने के इच्छुक दिखाई देते हैं। यह एक कालजयी फिल्म के रूप में तेलुगु सिनेमा जगत में ख्याति प्राप्त कर चुकी है।

शरत के उपन्यास देवदास की तुलना जब फिल्मों से की जाती है तो कई परिवर्तनों की ओर ध्यान आकर्षित होता है। चन्द्रमुखी के पात्र को फिल्मों में नर्तकी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। वह अपने नाच गाने से मनचले अमीर पुरुषों का दिल बहलाती है। उपन्यास के विस्तार को फिल्म में समेत लिया गया है। जैसे चन्द्रमुखी के देवदास के गाँव ताल सोनापुर जाने का प्रसंग फिल्म मे नहीं शामिल किया गया वैसे ही देवदास की यात्राएं, लाहौर, बंबई, इलाहाबाद, पटना, काशी आदि जगहों में उसके भटकाव को भी शामिल नहीं किया गया है। भाषिक अनुवादों में स्थानों और पात्रों के नामों में परिवेशगत परिवर्तन किए गए हैं जो की अनुवाद को सार्थक और प्रभावशाली बनाते हैं। शरतचंद्र के कथ्य का पी सी बरुआ (हिंदी), बिमल रॉय (हिंदी) और वेदांतम राघवैया (तेलुगु) ने फिल्मों में सफलतापूर्वक निर्वाह किया और फिल्म में उपन्यास की मूलकथा को ही फिल्माया । संवेदनाओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति को उभारने के लिए सिनेमा माध्यम में पार्श्व संगीत और गीतों की आवश्यकता होती है। इन सभी फिल्मों में देवदास पार्वती और चन्द्रमुखी के मनोभावों अंतर्द्वंद्वों और मानसिक पीड़ा को परदे पर प्रभावशाली बनाने के लिए पार्श्व संगीत के साथ सार्थक गीतों को प्रभावशाली पृष्ठभूमि के साथ फिल्माया गया है। वास्तव में देवदास उपन्यास पर बनी फिल्मों ने देवदास उपन्यास को सभी भारतीय भाषाओं में लोकप्रियता प्रदान की। शरतचंद्र को अपनी रचना देवदास के प्रति चाहे जैसी भी भावना रही हो किन्तु भारतीय साहित्य में 'देवदास' उपन्यास और इस पर बनी फिल्में चिरकालिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता को प्राप्त हुई।

आधार ग्रंथ : 1 विष्णु प्रभाकर कृत आवारा मसीहा

2 शरतचंद्र कृत देवदास

(लेखक उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद के हिंदी विभाग से सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं।)

ईश्वर की पुकार

कहानीकार: सितारा

अनुवादक : शान्ति नायर

मेरा पुरना घर कुंदुर* की सुगन्ध से भरा हुआ होता था। घर के चारों ओर गहरे हरे रंग के अरबी के पौंधे, केले के पेड़ और रबड के छोटे-छोटे पौधे भरे हुए थे। घर के भीतर माँ हमेशा दौड़-दौड़ कर काम करती रहते थी। पापा अरबी पौधो की देख- भाल करते अथवा भण्डार की दुकान के हिसाब जोड़ते रहते। रसोई के माँस की गन्ध में गायें बाहर गोशाला में खड़ी सिर हिला रही होती। घर की ऊपरी मंजिल पर मैं अंगूर की लताओं में नयें पत्तों के आने या अनार के फूल जाने जैसे कौमार्य के स्वप्न देखती दोपहर को लेटी-लेटी सो जाती। तब मेरा नाम षर्ली था।

धर्म परिवर्तन कर हिन्दू बन जाने के पश्चात कभी भी मैं अपने घर नहीं गई। आज एक वर्ष बीत चुका है। मेरे पति हरी की माँ बिलकुल भी एरे मम्मा की तरह नहीं हैं। वे घर भीतर भाग- भाग कर काम करती हैं। वे न तो नारियल के टुकड़ो के साथ माँस भुनती है, न तो रसोई घर में गुनगुनाती है और ना ही षर्ली बेटी कह कर विशेष अनुतान में मुझे बुलाती है। वे मुझे सीता नाम से पुकारती है। इस बीच उन्होंने मेरे लिए बहुत- सी रेशमी साड़ियाँ, माथे पर लगाने के लिए बिन्दियाँ और माँग में भरने के लिए सिन्दूर और ये सब रखने लिए छोटी-छोटी डिब्बियाँ खरीद कर दी है। घर के पूजागृह को साफ कर के संध्या के समय दीपक जलाने की ज़िम्मेदारी उन्होंने मेरे ऊपर सौंपी। दीपक जलाने के बाद जो मंत्र उच्चारित उच्चारित करने हैं, वे भी उन्होंने मुझे सिखाए हैं।

कभी-कभी बिना हवा के ही दीपक बुझ जाता है। देवताओं के रंगीन चित्र,कपूर की कटोरी, दीपक जलाने के लिए पास रखी माचिस, अगरबत्ती सब मिल कर मानो बेआवाज नृत्य करने लगते हैं। तब मन से हूक सी निकलती है " ईशु " और भय का बलगम छाती में गाढ़ा होने लगता है।

धर्म परिवर्तन के उपरान्त मैं अपराधबोध के साथ ही ईशु का स्मरण करती थी। फिर भी जब भी मैं ईशु का स्मरण करती मेरे मन में ऐसी सिहरन और मृदुलता का एहसास होता है जैसे किसी विशाल वृक्ष से आने वाली हवा का स्पर्श पा लिया हो। अचानक अनजाने ही एक बैचेनी मुझे धकेलती हुई आती तब पूजा घर के देवताओं के चेहरें, मन्दिर के कपाट खुलने पर दिखने वाले तीक्ष्ण दृश्य के समान मेरे सामने उभरने लगते।

जहाँ मैं नौकरी करती थी, उस मृदा शोध संस्थान की कैन्टीन की मेज पर एक कप चाय के सामने बैठ कर मैंने यह सब अपने सहकर्मी मुहम्मद को बताया। मृदा शोध संस्थान शहर से दूर पेड़ों से भरी एक तराई में था। बड़ी

दीवारों के भीतर फीके रंग वाली लम्बी इमारतें, पेड़ों से छिपी हुई थी। सभी के बीच से चमकती काले तारकोल की सड़क। उस सड़क के दोनों ओर से बह निकलने वाली छोटी-छोटी सड़के अलग-अलग इमारतों की तरफ जाती थी।उन रस्तों में से एक के आखरी छोर पर था छोर पर था खपरैल छाया हुआ कैन्टीन। मैं मैं मुहम्मद और संस्थान के अन्य अनेक इसी कैन्टीन से भोजन, चाय आदि लेते थे। चमकती काली सड़क से हर बार जब हम आए तब बीच से आ पहूँचने वाली धूप ने उन्माद के साथ हमारा स्पर्श किया। हम शायद थके हुए थे या अलसाए हुए थे।

मुहम्मद ने मुझे तसल्ली देते हुए कहा कि बचपन से हम जिन विश्वासों के अभ्यस्त होते चले आए हैं उनके अचानक बदल जाने पर ऐसी छोटी छोटी समस्यांए महसूस होती हैं। लगभग एक वर्ष पहले भी उसने यही बात कही थी। पर उस समय हमारे साथ हरी भी था। धर्म परिवर्तन पर ही मां शादी के लिए राजी होंगी वैसे भी दूसरे ढंग से होने वाली शादी घर की दूसरी लडकियों पर असर करेगी और हमारे भी बच्चे जब बडे हो जाएगे तो क्या करेंगे आदि बातें हरी ने कहीं थी।

मैंने प्रतिवाद नहीं किया था। हम पांच वर्षों से प्रेम कर रहे थे। मुझे सब कुछ बड़ा ही सरल लगा। लगा एक ऐसा मजा़क है जो दूसरों के लिए है और उसका कोई असर मेरे दिल दिमाग और जीवन पर नहीं पड रहा है।

गरम चाय में फूंक मार कर मैने एक घूट पी ली और खांस दी। कुछ दिनों से मुझे दमा और खासी है। बचपन से ही मुझे दमा हो जाता था। बलगम के धागे उलझकर गाढे हो जाते और मेरी सांस की नली बन्द हो जात, मेरी छाती हवा शून्य हो जाती थी। एक बूंद ऑक्सीजन की प्यासी मैं रात भर खांसती रहती। मम्मा उठकर सोठ,काली मिर्च और कटी प्याज डालकर काफी बना कर पिलातीं। फिर पापा ओर मम्मा मुझे लेकर प्रार्थना के कमरे में चले जाते। रोग के शमन के लिए की जाने वाली प्रार्थनाओं का उच्चारण मैं भी उनके साथ-साथ अटक-अटक कर करती। कुछ समय बाद ईशु के करुणा भरे हाथ लम्बे हो जाते और मेरी छाती का सारा बलगम खींच लेते।

शादी के बाद हरी मुझे ले कर कई डॉक्टरों के पास गया। पर उनमें से किसी में मुझे करुणा भरी आंखे दिखाई नहीं दीं। रात को सोते हुए हरी के पास जब मैं दमा की तकलीफ के साथ बैठी होती तो मुझसे छिप छिप कर जाने वाल आक्सीजन की तरह रोग के निवारण के लिए की जाने वाली ईसाई प्रार्थनाएं भी मेरे गले में लुका छिपी खेलती रहती।

“षर्ली सीता थक गई न?” मुहम्मद ने पूछा। नाम बदल कर पुकारने से कहीं मुझे बुरा तो नहीं लगा? यह भाव उसके चेहरे से झलक रहा था। यह शंका मैने अपने कई मित्रों और सह कर्मियों के चेहरों पर देखी है। पर यह बात मेरी खुद के जेहन में नहीं आती थी कि पिछले एक वर्ष से मेरा नाम षर्ली नहीं सीता है। कोई अगर सीता कह

कर पुकारता तो मैं भीतर ऐसे चैंक जाती जैसे कोई अपरिचित भाषा के शब्द सुन रही हूं। मानो किसी चीज के खो जाने के डर से मन बार-बार षर्ली-षर्ली मेरी मांग से सिंदूर के कुछ कण मेज पर रखे मेरे हाथ पर गिर पडे। मांग में सिंदूर भरे बिना हरी की मां मुझे बाहर नहीं निकलने देती थी। घर के भीतर भी अगर भूल जाती कभी तो एक घृण्ति सी आज्ञा उनकी आंखो में तैरने लगती। एक दिन उन्होने गदगद भाव से कहा-''लाल रंग का सिंदूर शक्ति और ऐश्वर्य का प्रतीक है उसे धारण कर हिंदू स्त्री गौरव अनुभव करती है''। तब मुझे याद आया- कहीं मैने पढा था कि अभिसार की सजा के रुप में लाल रंग धारण कर किसी स्त्री को लोगों के मध्य घुमाया गया था। फिर भी माथे पर वह अतिरिक्त कतरन धारण करनी ही पडी।

हमारी चाय तब तक खतम हो चुकी थी। मुहम्मद ने कहा हम थोडी देर पैदल चल लेते है। कैन्टीन के पीछे के गेट से निकल कर उपर चलने लगे।

हर कहीं पेड थे। वे पत्तियों को बिना हिलाए स्तब्ध खडे थे। पहाडी के उपर के छोटे से रास्ते पर हरी घास झुकी हुई थी। रास्ते के दोनों ओर हरियाली के पार कुछ घरों की चिमनियां दिख रही थी।

सबसे उपर पहुंच कर एक बडे से पेड के नीचे हम बैठ गए। चढाई चढते हुए मेरी सांस बहुत अधिक फूलने लगी थी। छाती में फफून्द की तरह ढंक गए बलगम की वजह से मेरा बदन कांपने लगा था। सांस से शून्य हो चली छाती की नालियों कोष्टो में एक भयावह शून्य को मैने अनुभव किया। मेरी आंखे भर आई औ बह चलीं। छाती पर जोर देकर कांपते गले से आंखे बंद कर मैं बुदबुदाने लगी-

''ईशु तुम्हारे मार्ग में व्यधियां नहीं

दोष कोई इस मार्ग में दीख पडते नहीं

रक्षा करों, शक्ति दो, हे ईशु नाथ''

सांझ हो आई थी। पापा दूकान से घर आ गए थे। ''षर्ली बेटी जरा उठो'' मम्मा पुकार रही हैं। छोटे चैपल में मोम बत्ती जला कर सभी घुटनों पर खडे हैं। जो नन बन गई थी वे लिसी दीदी भी पहुंच गई हैं। लिसी दीदी ऐसी आवाज में प्रार्थना कर रही है जिसे सुन कर लगता है हृदय गल जाएगा। दबी और खुरदरी आवाज में मम्मा और पापा भी प्रार्थनाएं दोहरा रहे हैं। पूरे कमरे में कुन्दर की गंध फैली है। सामने रखे ईशु के चित्र पर मोमबत्तियां प्रतिबिंबित हो रहीं है। ईशु के मुस्कुराते चेहरे पर स्वच्छ स्नेह का प्रकाश है।

आंखे खोली तो सामने मुहम्मद की करुणा भरी नजर आई। ''कोई बात नहीं सीता'' उसने कहा। ''सीता नहीं षर्ली'' मैं उसे देख मुस्कुराई। उसकी हथेली मेरी हथेलियों के भीतर आ गई मेरे गले की फंसी हुई नली में उसके होटों का स्पर्श हुआ। मेरी सूखी आंखों से उसकी आंखे सटकर मुंद गई मेरे कांपते माथे से बिंदी का जीभ

की नोक से उसने निकाल दिया। मेरी मांग के सिंदूर को उसने होंटों से झाड दिया। बलगम के सौकडों धागों से जकडे मेरे सीने का उसने करुणा के साथ सहलाया। उसकी बाहों में मै अपने जीवन की सांस का इंतजार करती थकी सी पड़ी रही।

हमारे चारों ओर आकाश को चूमते घने पेड़। मिट्टी की मातृक शक्ति से पोषित मुकुल फूट पड़े। पत्तियां लोहे के समान चमकने लगीं। पेड शाखाओं से मर्मर ध्वनि निकलने लगे। अचानक उनमें से हवा भी बह निकली। पर्वतों से बह कर निकलने वाली नदी के समान शुद्ध हरी आक्सीजन। मैने लालच के साथ उसे अपनी श्वासन की नली में खींच लिया। उसके स्पर्श से मेरे भीतर के बलगम के ढेले गल गए। मेरा हृदय झटके से जग पडा। मेरा मन थिरकन से भरी एक नृत्यशाला में बदल गया।

काफी समय बाद जब हम पहाड़ी से नीचे उतर रहे थे तब मैने मुहम्मद से कहा- सुपरीटेंडेंट से कह कर मुझे एक हफ्ते की छुट्टी लेनी है। हरी के साथ घर हो कर आउंगी। फिर उसके साथ से मोबाइल लेकर मैने हरी के घर पर फोन किया। मैने कहा कि ‘‘मैने तय किया है कि मै पुनः धर्म परिवर्तन कर षर्ली बन रही हुं कल तुम्हें मेरे साथ मेरे घर चलना है’’ हरी की प्रतिक्रिया सुने बगैर मैंने मोबाइल आफ कर दिया।

पहाड़ी की पगडण्डी के छोर से गुजरते हुए मुहम्मद रुका। वह ऐसा कुछ दिखाना चाहता था जिसे मैने अब तक नहीं देखा था। शायद कभी पर्वतों के टूटने से पैदा हुआ हो यह एक बहुत बडी सी दरार देखने से लगता था मानो पृथ्वी फट गई है। मुहम्मद का हाथ कस कर पकड कर मैंने उसमें झुक कर झांका। भूगर्भ की ओर जाने वाला अंधकार पूर्ण रास्ता। किसी पुरानी याद से मेरा हृदय कसैला हो गया। बलगम का एक गोला जा गले में ठहर गया था खंखार कर मैने पृथ्वी की उस दरार में थूक दिया।

*एक पदार्थ जिसे सुलगाकर उसका सुगंधित धुआ घर भर में फैलाया जाता है ईसाई घरों में उसे पवित्र माना जाता है।

(लेखिका मलयालम की प्रसिद्ध कथाकार हैं और अनुवादक श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कलादी के हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं।

The seminar

Mamta Kalia

She was amazed at the invitation. She did not respond, thinking that if the offer was dispatched by mistake, there will be no next letter through which the conveners usually write, ‘please do come, the seminar will be incomplete without your active and thought provoking participation’. When such letter was also received, Pakhi had to decide to go or not to go.

Delhi was boiling under 48’0 celcius. The mercury was still rising. The Seminar was to be held in Shimla. Writing the word Shimla on the reply envelope imparted a relief. The room was occupied by a decent cooler and a fan – both were lifeless because aof load shedding of four hours daily schedule. It was impossible to relax or read or write.

As it was Pakhi’s life was quite hard. There was no space for blessings like holiday, sightseeing, te’te a te’te and peace. She had received letters from three or four magazines whose editors insisted that she should send them her contribution. She had written to all of them on the basis of this single short story, ‘I’ll be sending the story posthaste. Pakhi always hoped that given better weather, electric supply and home-front, she should be able to keep her promise. This invitation from Shimla could relieve her from all that traumas, albeit for a few days. She sent her consent.

After acceptance, Pakhi was overcome by a sense of regret. She felt she was becoming too cunning, like a cat. She knows she will not meet like- minded writers and thinkers in the seminar. Instead there will be people whose thinking will be quite the antithesis. Then way should she be going. Immediately, a skunk like head of compromise rose from within her and announced, ‘You have agreed to go because it is needed to get close your enemy to know it fully well. If you do not know your opponent, how will you

fight?' This agreement pacified Pakhi. She felt she could participate in the seminar without losing her identity.

Pakhi and other delegates of the seminar were put up in hill side guesthouse. The rooms had heavy curtains on three sides of the wall and the fourth was left bare for a panel view of the Shivalik range. The pine and cedar trees looked too good and green as if they were paper-made. The room was conditioned. You could sense the botanical grandeur of forests up to the foothills of the Shivalik range. Pakhi's eyes were unaccustomed to so much of greenery what with years of stay in crowded colonies of her town. She looked at the landscape for a long to convince herself.

After a shower, Pakhi gave a good shake to her head to get out of her domestic mindset. She took great care to dress up and went to the dining hall. It dawned upon her that this place was agog with such finer fiction fabricators who had been crafting the short story genre for a long time, though their fiction remained where it was. For these craftsmen, literature outside their own parameters was no more than a dustbin.

There were twenty participants who had come from far flung destinations. They dazzled like the queen's necklace in which Pakhi's presence was like a black-bead string. She was here as per design or stupidity. Also present were a poet and a literary critic who were at the height of their honour, hence they were above sanction. Their works found favour with publishers and were into every text book.

There were four other women writers besides Pakhi. Two were young and who were pushing hard to look mature and other two were older who were struggling to look younger. Pakhi was familiar with the elderly two because they too belonged to Delhi University. They were at the centre of the capital's literati. There would never be a book-launch, conference or seminar without them. During discussion if they fell out, they pounced upon their victim. Their arguments were aggressive though without logic. They used pedantic terminology that made every seminar seem somber and selective.

There was this Surekhaji, who was in writing very individual sort of stories. Her fiction reflected her personal life, her love, and lost loves, her frustration and fetishes. The readers would know from her fiction when Sunekhaji was to go abroad, when she was getting out of one love affair to get into another, when she was going to build a house and when she was to buy a pup of a rare pedigree. In the beginning Surekhaji used to write 5 lyrics etc. but she was soon influenced by some foreign magazines to become real mod. Not only she cut and dyed her hair, she did the same with her writing. She had a small band of admirers who looked upon her as an A-one artist and intellectual. It added to the fan-mail in whichever magazine Surekhaji was published. Shurekhaji regarded this fan fare as a top-ranking writer because of this fan fare.

The other woman was an art-critic with an eminent daily – Veena Jaitly. Veena was tall, slender and pretty. Her age oscillated from 25 to 45. She wrote in Hindi but she spoke English. Her short stories were midway between fantasy and symbolism. Her lips appeared purple as a result of chain-smoking but her tapering fingers showed ashenness of nicotine. She had to lug quite a few things when she shifted her seat. Veena carried a big tote but she liked to hold a cigarette pack and match box in hand. The other hand often held her glass of gin and bitters. She would drag another chair near hers and put all her things thereon. She closed her eyes while listening to an argument and when no one expected, she'd open her eyes and say, 'now that was a point.' Then she spoke in detail about timeless truths that had no relevance to the point of the seminar.

The initial two sessions made it clear that writers were quite confused in their ideas. Some had not yet come out of Sartre's existentialism, while some interpret the short story as though it belonged to the red riding hood days. They would quote a few European critics, highlight Premchand's shortcomings, elaborate Prasad's creative parameters and explain how the short story can survive and revive human values by avoiding platitude, media mediocrity and political commitments.

The reading session was in the evening. Four authors were to read their short stories to a select audience. Veena Jaitly and Pakhi were in this session. The other two participants had already made a name in English by translating their Hindi stories themselves. It was rumoured that they were paid handsomely in dollars on their overseas contributions.

Chandrashekhar was dressed in a yellow kurta and blue jeans and he announced, 'I've been at the beer bar since morning to cope up and present my story in a credible manner. He read out his story which had neither characters nor action. He was recounting his views about a heap of garbage in a playground. He received applause from the audience.

The chairperson said, 'A good work of art surpasses theme and thought, character and action. In order to break a rut, the short story should get out of its framework and code.'

Veena was to read her story now. She moved to the dais with all her paraphernalia. She lighted her cigarette, drew the ash-tray closer and began on an attractive note. Pakhi was finding her fabulous, but her story was beyond her grasp. Veena's story fabricated a symbol around an eagle's droppings.

At the end of this story, there was a thunderous applause. Veenaji's art was likened to Camus and Kafka. Veena walked back to her seat and kept smoking. It seemed she was listening to someone else's compliments for some other author.

When it was Pakhi's turn to read, at the outset she apologized by saying, 'I am sorry to say, my short story speaks of real- bodied people, they have a milieu, there is some action, and it does not break free of any framework..'

Young critics and off beat listeners winced a little and wore a ginger expression during her reading. Pakhi knew she was here with wrong armour. She was hardly surprised when there was no follow-up on her short story.

Having long walks to the road, going down the hills, etching names on rocks and clicking cameras were parts of this seminar too on the final day.

They started out in a huge group but soon splitted into smaller units. Veena joined Pakhi. There was a small bazaar ahead which had everything that a small hill-town bazaar should have: two or three liquor shops, one photographer, a few stores of woolen wear and a few sundry shops like a tea stall, kerosene oil stall and a grain merchant's shop.

Chandrashekhar and Vivek paused at the liquor shope. Veena approached them, 'A quarter for me too.' 'O.K."

Veena spotted a nearby shop. It displayed wicker baskets, brooms, jute cord and hand-made fans. Veena was drawn towards a broom, 'oh! How beautiful!'

She lifted up the broom. Certainly it was a very artistically woven broom where all the wicks were up gathered in an arch. The front potion was thickset ad stunted. The broom was tied by a thin cord. Veena untied it and held it round her thin waist. 'How do I look now?'

'fabulous!' said Vivek and clicked his camera. Chandrashekhar sighed, 'Oh, I'm going to swoon.' By then two other women writers joined them. Veena showed them the broom. They all went gaga over its craftsmanship. Veedna said, "I shall use it as my central wall-piece. I will give a black velvet background and then you'll see the chrisma!"

Surekhaji said, 'one wall of my bedroom appears very glum, I'll put it over there!'

The third intellectual held her hand on her heart, 'Oh please let me Have two, how can I do with one?'

All of them tried to persuade Pakhi that she should opt for one. But Pakhi declined point blank. 'I cannot switch over from short story to a broomstick.'

'Oh Pakhiji! this is not a broom stick. It is a masterpiece awaiting a Picasso, 'Surekhaji felt quite sorry for Pakhi.

‘Perhaps, but I am not interested,’ Pakhi gave a brash retort.

All post-modern writers came back to their guest house, clinging their art objects close to their hearts.

There was still some time for dinner call. After the second peg of gin, Veena started upon her pet subject. Her voice was sensitive and she was standing by the window facing the hills. She recounted how her parents brought her up putting her in the hostel and keeping their pets Tixy and Pixy close by. Even today, when she recalls her childhood, she can only see fog and inferno. The man she loved died in car-accident. Her present paying guest accommodation is in a colony where there are at least five murders a day. She writes in order to identify better all those hazards.

Pakhi was overwhelmed to hear her solilogmy. Her own life was terribly tame, mundane and eventless. In fact she was writing to get over the monotony, melancholy and boredom of her existence.

Veena’s confession was sincere; it might have been true too, but all this was not reflected in her writing. In fact her short stories were so disguised in symbols, they read like fantasies.

Surekhaji pressed her temples, ‘Oh my past! Oh no! Who has put me to the end of the road! Oph, oh! Sukrekhaji rose to slip into the balcony.

Veena and Pakhi tiptoed there to find Surekha resting her head against the wall.

‘Please Surekhaji get over it and join us inside.’ Pakhi requested.

‘Leaved me alone, I’m very tense. Gasped Surekha.

Veena signaled Pakhi to move away, ‘Tonight Surekhaji will create some masterpiece. This is creative tension.’

Anita Jain was a new young writer. She was looking at things like Alice in wonderland. She asked Pakhi, ‘Do you also undergo such bouts of creative tension Pakhiji?’

‘Never’ said Pakhi. “I write about ideas. Tension seems pretensious to me.’

Chandershekhar intervened, ‘Literature that’s written without creative tension is usually mediocre, mundane and propaganda.’

Veena added, ‘Yes ideas and ideologies do limit a work of art.’

‘I don’t think so,’ said Pakhi. ‘If you don’t have an ideology what can you give society besides your sick psychology and complexes.

Chanddrashekhar was finding Pakhi’s presence an eyesore. He said, ‘You think society is a godown of Indian Food Corporation that had to be jam packed with your jaded ideas and faded ideologies. Writing after all is a personal and subtle art.’

Anita was getting amazed at this exchange. This was the first seminar of her creative breakthrough. Chandrashekhar and Vivek were interested in giving her a makeover whereas she was full of awe for every author.

Pakhi said, ‘If you consider writing to be so personal and subtle, why do you get them published, better leave them in your diary.’

‘Sure I don’t care to get published and read. I write for myself, not for society.’

‘So do I, so do I’ came several assents.

The seminar secretary walked in with the most literary critic of the Hindi world.

‘Ah the air is full of fire and firewood’ he commented.

Surekhaji smiled, ‘raat ka waqt hai, mahaul banaye rakhiye.’ Her tension and depression had long disappeared and now she was all giggles.

Veena pressed the call bell. Mansingh, the guest house waiter came in.

'Remove these soda bottles and glasses.' Veena said.

A bat found a entry into the room when the door opened. It hovered around the room. The shadow of its forelimbs flitted on the walls ominously. The bat kept fluttering and flying towards the ceiling only to descend again like a copter.

The room was replete with sounds of ouch and ugh. Surekhaji was covering her eyes and gasping. 'Oh God! How ominous! Veena said, 'Chhi chhi.' Just then came the secretary's command, 'Mansingh check it out!'

Mansingh was quite short in height but kept slouching his head as if to avoid the bat's contact.

Very soon the bat completed another round and ultimately collapsed in a corner.

Mansingh picked up one of the brooms and hit it with all his might.

'The bastard is dead,' saying so Mansingh picked up the dead mammal and threw it outside the balcony.

'Oh no! Oh no! Surekhaji, Veena and Vivek advanced forth but had no guts to touch the broom that accomplished this heroic act. When Mansingh came back to the room, they all screamed, 'Aiy Mansingh you have ruined such a decoration piece of ours, how mean!'

Mansingh replied smugly, 'Arre, this was merely a broomstick. If you don't kill lizard or a bat, you think you can kill a leopard or what?' he dropped all other brooms from the table top. 'A broom's place is in the bathroom. Why have you people put it on the table like God.'

Veena felt deeply hurt, 'I won't have a meal today.'

'Even I', said Surekhaji, 'I am very upset.'

The senior literary critic rested his hands upon two junior authors to stand up for dinner. He said goodnaturedly, ‘Now come on, don’t be fussy.’

Pakhi declared loudly, ‘I am famished, I must have a hearty dinner now!’

The arty authors were trudging lifelessly towards the dining hall. Their faces expressed that they were undergoing much tension.

(Mamta Kalia is a renowned Hindi stroy writer. She has the unique distiction of writing bothe in Hindi and English. This story is originally written in Hindi by her and translated in English by herself.)

Life is not all success

Prof. Laxmi Raj Sharma

Life is not all success. Non-achievers can be great as well.

The beggar’s smile is pretty too; e’en he’s worthy of an ode.

Let those who fail be welcome too, be chief guests; not just pests.

Life takes a turn; his failure can earn a politician’s eye.

Failure can be young ambition’s ladder.

The saner are often not as inviting as the madder.

The corridors of power they can ascend, while the successful lie

Low, waiting for nothing to happen; in fact waiting to die.

(Poet is a renowned English writer and Professor in Department of English, University of Allahabad.)

FROM A FARAWAY LAND-INDIA

Sumatee Karim

The land where Rivers Ganges and Yamuna flow

Came our fore-fathers

Crossing the might Ocean

Aboard the Fatel Razack

With fear- filled eyes and heart of sorrow

Bade farewell to loved ones

The land of their birth

Where childhood memories cannot be forgotten

And footprints left implanted

With hope in their heart

And innocent mind’s thoughts

That one day they will again

See their land of birth

On a never-ending journey
Dark nights, rough seas, sorrow and regrets
Sickness and hunger
They set foot upon unknown land

A land so strange, among strangers
They brought their culture, Way of life,
Religious Books, made many sacrifices
Stayed together and built a home
So far away from Home

They toiled and saved
Endured all hardships
A wise people, humble,
Full of Pride
We are one people
Let’s make a New Life
We must live in Unity

(Poet is a Hindi Teacher from Trinidad & Tobago and belongs to Indian Diaspora.)

लोकसंस्कृति के सन्दर्भ में प्रो० पूरनचंद टण्डन से बातचीत

गरिमा त्रिपाठी

प्रश्न-1 आपकी दृष्टि में लोक क्या है?

उत्तर- समस्त साहित्य का प्रेरणास्रोत 'लोक' है।लोक एक विशद एवं व्यापक शब्द है जिसमे जीवन का सारतत्व और जनसमूह का अस्तित्व विद्यमान है।इसके विशाल फलक में समस्त मानव जाति की अनुभूतियाँ संचित हैं।शब्दकोशों की दृष्टि से देखा जाय तो 'लोक'स्थान विशेष,संसार,प्रदेश विशेष,सामान्यजन य लोग समाज प्राणी,यश आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है किन्तु इनमे से भी लोक के दो अर्थ विशेष रूप से प्रयोग में आते रहते हैं_एक स्थान विशेष रूप में और दूसरा जनसामान्य रूप में किन्तु पाश्चात्य शब्द फोक ने भी लोक शब्द के स्वरूप और अस्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।पाश्चात्य जगत में प्रचलित' फोक' शब्द एंग्लोसेक्सन 'folc'से विकसित माना गया है जो कि जर्मन भाषा में 'volk' के रूप में और अंग्रेज़ी में 'folk' के रूप में विकसित हुआ है। यहा इस शब्द का अर्थ आदिम, असंस्कृत और मूढ़ लोगों के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। यह संस्कृत जनों से पृथक ग्रामों और पर्वतीय प्रदेशों में बसने वाला आदिम जन का बोधक है। भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतन को समन्वित कर यह कहा जा सकता है कि लोक मानव जाति के समूह का बोधक शब्द है जिसमें अपनी प्राकृतावस्था में उदात्त संस्कृति से दूर सहज जीवन व्यतीत करने वाला समाज रहता है। ऐसे समुदाय की सत्ता ग्राम से नगर तक तथा मैदान से पर्वतीय प्रदेशों तक विद्यमान है।

प्रश्न 2- लोक तथा जन में क्या अंतर है?

उत्तर- 'फोक'शब्द पर भारतीय विद्वान जब विचार-विमर्श कर रहे थे तब कुछ विद्वानों का मानना था कि 'फोक' का हिन्दी पर्याय जन होना चाहिए। उनका मानना है कि 'जन' शब्द में फोक के समान समस्त प्राणियों को समावेश करने क्षमता है। इसी आधार पर 'जनपद','जनप्रवाह','जनपदीय' आदि शब्दों का प्रयोग आजकल हो रहा है। 'जन'शब्द से गाँव-नगर,शिक्षित-अशिक्षित,सभ्य-असभ्य आदि समस्त लोगों का बोध होता है। दूसरे शब्दों में ज शब्द में अधिक व्यापकता है जो सामान्य रूप से समस्त व्यक्तियों को आत्मसात करता है जबकि लोक शब्द में स्थान विशेष की तो व्यापकता है अर्थात इसमें गाँव-नगर, मैदान, पर्वत आदि सभी शामिल हो जाते हैं लेकिन सहज जीवन जीने वाले औपचारिक संस्कृति से दूर जनसामान्य ही लोक या फोक में समाहित रहते हैं। अतः जन और लोक में व्यापकता और सांस्कृतिक जीवन-शैली का सूक्ष्म भेद दिखलाई देता है।

प्रश्न-3 लोक और शास्त्र की परिभाषा क्या है?

उत्तर- जो कुछ भी दृश्य मात्र जगत है वह लोक है लेकिन 'फोक' से सम्बन्ध होने पर 'लोक'सहज एवं प्राकृतिक जीवन जीने वाला जनसामान्य है को औपचारिक एवं शास्त्रीय शिक्षा से दूर एक अकृत्रिम जीवन जी रहा है।शास्त्र का शाब्दिक अर्थ अनुशासन से है।शास्त्र एक ऐसा अनुशासन है जो औपचारिक रूप में किसी गुरु अथवा स्थान विशेष से गहन अध्ययन के बाद प्राप्त किया जाता है।शास्त्र एक नियम प्रणाली है जो विवेक उत्पन्न कर ज्ञान प्रसार का माध्यम बनती है।लोक जीवन का सहज एवं व्यवहारिक रूप है जबकि शास्त्र जीवन का विशिष्ट , आदर्श पूर्ण, सैद्धांतिक एवं औपचारिक रूप है। शास्त्र से ही समस्त प्रकार के साधन एवं ज्ञान के विशिष्ट रूप विश्लेषित होते हैं। लोक यदि जीवन की सहजता का नाम है तो शास्त्र जीवन के आदर्श, मूल्य एवं परंपरा की समन्वित धारा से युक्त जीवन का नाम है।

प्रश्न-4 लोकसंस्कृति की क्या विशेषता है?

उत्तर- लोक संस्कृति का मूल आधार लोक- जीवन है। लोक जीवन में ही लोक संस्कृति पल्लवित,पुष्पित और संवर्धित होती है। लोक संस्कृति लोक जीवन और मानव-संस्कृति का जीवंत रूप है। इसके अंतर्गत उस समस्त संस्कृति का समावेश माना जा सकता है जो पौरोहित्य,धर्म और इतिहास में परिणत नही हुई बल्कि सदैव स्वसंवर्धित होती रही हैं।यही नही लोक संस्कृति लोक-मानस का ऐसा जीवंत रूप है जिसके व्यापक कलेवर में लौकिक विश्वास,परम्पराएं,रीति-रिवाज़,खान-पान,रहन-सहन आदि अभिव्यक्ति पाते हैं। इसके व्यापक कलेवर में लोक-गीत, लोक-गाथा, सुभाषित आदि से परिपूर्ण समस्त लोक-साहित्य और दार्शनिक चिंतन से परिपूर्ण धर्म और आध्यात्मिक विचारधाराएं भी अभिव्यक्ति पाती हैं। इतनी व्यापक अवधारणा होने के कारण लोक संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता नवयुवकों एवं नई पीढ़ी की शिक्षा में सहयोगी बनना है। लोक संस्कृति देश की संस्कृति और सभ्यता का समन्वित रूप होने के कारण इसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व सामने आता है। लोक संस्कृति की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके माध्यम से देश-विदेश की सांस्कृतिक परम्परा को बल मिलता है तथा इसी के माध्यम से समाज में प्रचलित आचार-व्यवहार की स्वीकृत शैली या रीति की एकरूपता को स्थिरता और दृढ़ता मिलती है। इसप्रकार शिक्षा का माध्यम, सभ्यता के विस्तार, विधि-विधानों के औचित्य और आचार-व्यवहार की एकरुपता का सशक्त माध्यम लोकसंस्कृति ही है।

प्रश्न-5 लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य क्या है?लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य में क्या अंतर है?

उत्तर- लोकसाहित्य वास्तव में मौखिक परम्परा युक्त एक ऐसा साहित्य है जिसमे लोकजीवन की सहज अभिव्यक्ति की गई है इस साहित्य का रचनाकार प्रायः अज्ञात रहता है तथा समस्त भाषागत अभिव्यक्तियाँ

अंतर्निहित रहती है। यह पोथी ज्ञान या औपचारिक शिक्षा से अलग रहने वाले लोक मानस की अभिव्यक्ति का साहित्य है। वहीं दूसरी ओर लोक-संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है जिसकी परिसीमाओं में औपचारिक शिक्षा से पृथक रहने वाले असंस्कृत लोगों के लोक-विश्वास,रीति-रिवाज़, खान-पान, संस्कार, रहन-सहन, आचार-विचार आते हैं। इस व्यापक संकल्पना के अंतर्गत भूत-प्रेत, जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र जैसे विचार और अंध-परंपराएं भी समाहित होती हैं। इसप्रकार लोक-संस्कृति एक व्यापक संकल्पना है जबकि लोक साहित्य लोक सांस्कृतिक चेतना को व्यक्त करने का साधन माना जा सकता है।वास्तव में दोनो ही अवधारणाओं में मूल अंतर नहीं बल्कि अंग-अंगी सम्बन्ध है। लोक साहित्य लोक संस्कृति का एक विशिष्ट एवं जीवंत अंग है।भारतीय विद्वानों का तो यहां तक मानना है कि लोक संस्कृति की उपमा यदि किसी विशाल वट-वृक्ष से दी जाय तो लोक साहित्य को उसकी एक शाखा मात्र समझना चाहिए।यदि लोक संस्कृति शरीर है तो लोक साहित्य उसका एक अवयव विशेष। लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है जबकि लोक साहित्य का विस्तार संकुचित है। लोक संस्कृति की व्यापकता जन-जीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है लेकिन लोक साहित्य जनता के गीतों ,कथाओं, गाथाओं, नाटकों, मुहावरों, कहावतों तक सीमित है। इसप्रकार लोक साहित्य और लोक संस्कृति में अंतर होते हुए भी उनमें अंग-अंगी सम्बन्ध है।

प्रश्न-6 क्या लोक संस्कृति और लोक साहित्य की काल सापेक्ष व्याख्या हो सकती है?
उत्तर: जी लोक संस्कृति और लोक साहित्य दोनों की काल सापेक्ष व्याख्या की जासकती है।लोक संस्कृति जन जन की संस्कृति है जिसके मूल्य,माँ,प्रथाएं,विश्वास युगों की अगाधता को पार करते हुए हर युग में अपनी महत्ता रखते हैं।आज चाहे हम इक्कीसवीं सदी के तकनीकी युग में क्यों न हों लेकिन लोक जीवन सादगी,अकृ त्रिमता आज भी हमारा दिशा-निर्देश करती है। चाहे आज मीडिया के ज़रिये लुभावना साहित्य परोसा जा रहा है किन्तु लोक धुनों, लोक कथाओं, लोक गाथाओं की अनुगूंज आज भी जन समाज का मन मोह कर अपनी ओर खींच ही लेती है। जबतक जीवन और साहित्य रहेगा तब तक लोक सांस्कृतिक चेतना की चमक तथा लोक साहित्य की सहजता युगानुरूप अपना स्वरूप धारण कर हमारा मार्ग दर्शन करती रहेगी।

प्रश्न7- लोक साहित्य ने लोक संस्कृति से क्या और किन रूपों में ग्रहण किया है?

उत्तर: जैसाकि पूर्व के प्रश्न में स्पष्ट किया ही जा चुका है कि लोक संस्कृति और लोक साहित्य में सूक्ष्म अंतर है जो कि अंगांगी सम्बन्ध की व्याख्या करता है। वस्तुतः लोक साहित्य लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नाट्य, लोक सुभाषित अर्थात लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, मुहावरे, सूक्तियाँ आदि का समन्वित रूप है। लोक साहित्य की इन समस्त विधाओं की आधारभूमि लोक से मिलती है तथा इनका जीवंत रूप लोकसंस्कृति के माध्यम से ही विस्तीर्ण होता है। जिस प्रकार लौकिक विश्वासों, रीति-रीवाजों, प्रथाओं, धर्म, अध्यात्म दर्शन से लोक संस्कृति पूर्णता की ओर बढ़ती है ठीक उसीप्रकार जनसमाज में प्रचलित साहित्य में भी इन सबकी अभिव्यक्ति देखी जा

सकती है यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो लोक साहित्य का अस्तित्व लोक संस्कृति के कारण ही स्थापित हो पाता है जबकि लोक संस्कृति को पूर्णता लोक साहित्य की संवेदना से मिलती है। अतः लोक साहित्य ने अपना पूर्ण रूप आकार-प्रकार लोक संस्कृति से ही ग्रहण किया है।

प्रश्न8- लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में क्या अंतर है? हिन्दी के लोक साहित्य से भारत की अन्य भाषाओं में रचे जाने वाले साहित्य में मूलभूत अंतर कौन से हैं?

उत्तर: शिष्ट साहित्य से तात्पर्य औपचारिक शिक्षा से सम्पन्न अभिजात और उदात्त संस्कृति से युक्त ऐसे साहित्य से है जो अपने अंतर्जगत में बौद्धिक विकास की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ है।शिष्ट साहित्य अपनी उदात्त प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पथ-प्रदर्शक था।इसी के माध्यम से संस्कृति और सभ्यता के मायने हम समझ और स्वीकार कर सके जबकि लोक साहित्य का अर्थ जन साधारण के उस साहित्य से है जो लोक से प्रेरणा प्राप्त कर लोक मानस को अभिव्यक्ति देता है।इसके अनुयायी बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर अवस्थित थे तथा नाम रूप में नहीं बल्कि अज्ञात रूप में परम्परा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित हो रहे थे।पं बलदेव उपाध्याय बताते हैं कि ऋग्वेद और अथर्ववेद के अंतर से हम लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य के अंतर को देख सकते हैं। ऋग्वेद में जहाँ एक ओर यज्ञादि विधान,रीतिरिवाज आदि का वर्णन किया गया है तो दूसरी ओर अथर्ववेद में लौकिक विश्वासों, अंधविश्वास, टोना-टोटका, जादू-मन्त्र आदि की लोक समाज में व्याप्ति दिखाई गयी है जो लोक समाज को आधार बनाकर सहज एवं असंस्कृत जीवन जीते हुए अज्ञात रूप में साहित्य लिखता है वह लोक साहित्य है जबकि विधि-विधान के अनुरूप आदर्श रूप में रचा जाने वाला साहित्य शिष्ट साहित्य है जिसमे परम्परा, शास्त्र और नियमबद्धता महत्वपूर्ण मानी गई है।

हिन्दी का लोक साहित्य वह है जो घर -घर में लोक गीत रूप में,जनजीवन में लोक-नाट्य रूप में,जीवन शैली में लोक गाथा रूप में तथा जनमानस के मुख में लोक सुभाषित रूप में निवास करता है। इसका अस्तित्व व्यवहार मूलक है जबकि भारत की अन्य भाषाओं में रचे जाने वाले साहित्य में जातीय बोध तथा उसके अस्तित्व में चिंता भाव के साथ-साथ क्षेत्रीय जनमानस की अभिव्यक्ति मिलती है। वस्तुतः लोक साहित्य और क्षेत्र विशेष के साहित्य में अंतर आज सूक्ष्म रूप में ही प्रकट हो रहा है लेकिन यदि गहनता से विचार किया जाय तो एक के केंद्र में जनसमाज और उसकी सहज अभिव्यक्ति है तो भाषा विशेष के केंद्र में स्व अस्तित्व के साथ-साथ स्व जुड़ाव के भाव परिलक्षित होते हैं।इन दोनो साहित्य में एक अंतर पारम्परिक रूप में भी देख जा सकता है।लोक साहित्य यदि मौखिक परम्परा को अभिव्यक्ति देता है तो प्रदेश विशेष का साहित्य बदलते समाज उसकी मनोवृति,उसकी समस्या और उसके अस्तित्व को केंद्र में रख कर लिखा जाता है।

प्रश्न9 - लोक संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति को आप किस तरह देखते है?

उत्तर:- लोक संस्कृति भारतीय जीवन मूल्य, संस्कृति, संस्कार विश्वास, रीति-रिवाज़, पर्व-उत्सव, धर्म, आध्यात्म-दर्शन आदि व्यापक अवधारणाओं का समन्वित रूप है।लोक संस्कृति लोक मानस का बौद्धिक प्रतिफलन है जो अपने प्राक्रितावस्था में विद्यमान है लेकिन इसी से मिलती-जुलती लेकिन भिन्न रूप में स्थापित होती लोकप्रिय संस्कृति एक विश्वव्यापी संस्कृति है जिसके मोहजाल में कोई देश,धर्म,संस्कृति,जाति समूह स्वयं को तटस्थ नहीं रख पा रहा है।वास्तव में लोकप्रिय संस्कृति जनभाषा में जन- जन से संवाद,उसकी रुचि, उसकी आकांक्षा, उसके स्वप्न और टूटते-जुड़ते नए पैमाने रिश्तों की व्याख्या करने वाली और अपनाई जाने वाली संस्कृति का नाम है।लोकप्रिय संस्कृति जिसे प्रायः हम पॉपुलर कल्चर के नाम से जानते है वह भूमण्डलीकरण की देंन है जिसने जीवन के मूल्यों को धन सम्पत्ति,बाज़ार और जनसंचार या मीडिया के ही इर्द-गिर्द घूमने को विवश कर दिया है जहां से अधिक लाभ और धन प्राप्त हो सके तथा आपकी मार्केट वैल्यू या आर्थिक स्थिति सुधर सके तथा जिससे आप स्वयं का अधिक प्रचार कर सकें वही लोकप्रिय हो जाता है। इसी लाभ और आय की दृष्टि से रचा साहित्य लोकप्रिय साहित्य है और इसी के लिए बनाई संस्कृति लोकप्रिय संस्कृति है।यद्यपि दोनो का सम्बन्ध लोकमानस से है तथा दोनो समाज में समाज के लिए तथा समाज द्वारा रचे जाते हैं तथापि जो केवल आज में जीते हुए आज के मत की लोक मानस की अभिव्यक्ति देता है वह लोकप्रिय साहित्य है उसे परम्परा या मूल्यों के प्रति कोई लगाव नहीं होता। वही लोकसंस्कृति सामूहिकता, मूल्यों और संस्कृति पर बल देती हुई लोक मानस की ऐसी अभिव्यक्ति है जो कल, आज और कल तीनों युगों पर दृष्टि रखती हुई लोक मानस को कलात्मक अभिव्यक्ति देती है। लोक संस्कृति का एक अंश जो केवल वर्तमान पर दृष्टि रखता हो तथा मार्केट वैल्यू चाहता हो वह लोकप्रिय संस्कृति है।

प्रश्न10- पाश्चात्य और अभिजन संस्कृति ने लोक संस्कृति को किस प्रकार प्रभावित किया है?

उत्तर:- पाश्चात्य संस्कृति का मूल चिंतन बाज़ारवादी,तकनीकी प्रौधौगिकी से आरंभ होकर स्वअस्तीत्व पर आधारित है।वहीं दूसरी ओर अभिजन संस्कृति या शिष्ट संस्कृति के केंद्र में शास्त्र है जो नियमबद्धता अथवा काव्य रूढ़ियों के प्रति मूल रूप से केंद्रित रहता है।शिष्ट या अभिजात वर्ग की संस्कृति परम्परा या मूल्यों पर बल देती हुई औपचारिक शिक्षा का महत्व बताती है तथा शास्त्र और मानकता पर बल देती है। इसी के परिणाम स्वरूप लोक मानस में परम्परा के प्रति रुझान और मानकता के दर्शन होने लगते हैं तथा लोक मानस बौद्धिक धरातल पर विकसित होने लगता है वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव स्वरूप लोक मानस में भौतिकवादी चिंतन के साथ साथ बाज़ारवादी मानसिकता, तकनीकी प्रौधौगिकी का विकास, विज्ञापनों के प्रति रुझान और धनार्जन से

परिपूर्ण लाभ दृष्टि दृष्टिगत हो रही है। इसप्रकार अपनी प्राक्रितवस्था में रहनेवाला लोक मानस तथा उसमे उपजे साहित्य और उसके द्वारा विस्तीर्ण संस्कृति में शास्त्र की सी नियमबद्धता और पॉपुलर कल्चर की धूम आज कम या ज्यादा रूप में लोक संस्कृति में देखने को मिल रही है।

प्रश्न11- साहित्य के इतिहास की केंद्रीय धारा में लोक साहित्य को समुचित स्थान क्यों नहीं प्राप्त हुआ?क्या आज के समय में लोक साहित्य का इतिहास लिखा जा सकता है?

उत्तर:- लोक साहित्य लोक समाज की नब्ज़ है। यह वह ताल है जिस पर सम्पूर्ण समाज नाचता-गाता है। किन्तु इस साहित्य की सादगी, सहजता का आयाम स्पष्ट उभर कर सामने नहीं आ सका। वहीं दूसरी ओर यह साहित्य अज्ञात रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित संवर्धित हो रहा था। ऐसे साहित्य की असल पहचान कठिन थी जिसकी अस्पष्टता के कारण भारतीय पहचान से जोड़कर तो देख गया लेकिन केंद्रीय धारा में यह समुचित स्थान प्राप्त नहीं कर सका। लेकिन आज की यह आवश्यकता है कि अपना मूल रूप खोने की ओर उन्मुख यह लोक साहित्य सदैव जीवित रहे इसके लिए सभी को प्रयासरत रहना होगा तथा इसके इतिहास लेखन को आगे लाना होगा।इसी क्रम में इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह लोक साहित्य कहीं लोकप्रिय साहित्य की चमक में उलझ कर अपना प्रमाणिक एवं मूल रूप न खो दे।मेरे विचार से लोक साहित्य का धीरे-धीरे लोकप्रिय साहित्य रूप में उभरना लोक साहित्य की आत्मा के साथ खिलवाड़ साबित हो सकती है।यद्यपि समाज की माँग दोनो की है तथापि लोक साहित्य की अंतरंगता,सामूहिकता एवं विविधता में एकता की कड़ी को बनाये रखना जरुरी है।ऐसे में इस बात की आवश्यकता है कि न केवल इस साहित्य का प्रचार-प्रसार किया जाये वरन् ऐसे साहित्य का इतिहास लिख इसे एक महत्वपूर्ण आयाम दिया जाए।सावधानी एवं विवेक का आश्रय लेते हुए लोक समाज से इस इतिहास लेखन को सम्भव बनाया जा सकता है।

प्रश्न12- कुछ प्रगतिशील कविताओं का सन्दर्भ देते हुए कृपया यह बताएं कि लोक संस्कृति का प्रगतिशील कविता में क्या योगदान है?

उत्तर:- प्रगतिशील काव्य सामाजिक और भौतिक यथार्थ की परिसीमाओं से उत्पन्न हो मानवता की अवधारणा की ओर अग्रसर होता है।इसका कवि प्रकृति की नैसर्गिक सुंदरता से युक्त हो आक्रोश और विद्रोह को अपना केंद्र बनाता है।पन्त की' पल्लव','परिवर्तन'अथवा 'युगवाणी' काव्य संग्रह हो अथवा नागार्जुन की गांव की जुड़ी कविताएँ हों सब में यद्यपि प्रकृति की सुंदरता का वर्णन तो है लेकिन साथ मनुष्य की महत्ता स्थापित करने वाली मानवतावाद की अनुगूंज भी है।कवि कहीं मानव को सुंदर रचना कहता है तो कहीं मानव-मानव में वर्ग-भेद की लड़ाई से उदास दिखता है-

'सुंदर है विहग सुमन सुंदर।

मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

×   ×   ×   ×

मैंने तो चाहा बहुत कि सबसे प्यार करूँ।

सबतक अपनी आवाज़ किन्तु पहुच न सका

मानव मानव के बीच खड़ी दीवार जो

कोशिश कर भी उनकी हस्ती झुठला न सका।

वस्तुतः प्रगतिशील कविता के केंद्र में लोक समाज, लोक जीवन, लोक अथवा कहें मध्यवर्ग ही है। जो पीड़ित अभिशप्त हो अर्थव्यवस्था की मूल विषमता के कारण कष्टमय जीवन जीने को बाध्य है। इसी कारण यहां का कवि कभी 'भिक्षुक' कविता तो कभी 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताओं द्वारा आम जन जीवन को अभिव्यक्ति देता है। इस काव्यधारा में वर्ग संघर्ष से ग्रस्त दुखमय आम जीवन का गिरिजा कुमार माथुर ने बड़े कारुणिक रूप में चित्रण किया है-

'भूख बीमारी गरीबी गन्दगी

कौड़ियों के मोल बिकती ज़िन्दगी

आदमी का गिर गया सम्मान है

मनुजता का अब न गरिमा गान है।

वह नहीं इंसान की है सभ्यता।

स्वार्थ,लालच,युद्ध जिसके देवता

मूलधन हिंसा,गुलामी सुद है

आदमी बन्दूक की बारूद है।

उपरोक्त काव्याशों के आलोक में यह जा सकता है कि प्रगतिशील कविता आम आदमी के दुख- दर्द, उसके संघर्ष की व्याख्या कर मानववाद की ओर अग्रसर होने वाली एक क्रांति से परिपूर्ण काव्यधारा है। इस काव्य का सृजन करने वाला कवि लोकभूमि से सम्पृक्त नहीं रह सकता। लोक संस्कृति में रचा-बसा साहित्य ऐसे साहित्य को सम्पूर्णता प्रदान कर मूल भूमि प्रदान करती है। प्रगतिशील कवि लोक संस्कृति से न केवल आधार

ग्रहण करता है वरन् वह मानववाद की ओर उन्मुख केवल जनसंस्कृति एवं उसके मान द्वारा ही हो सकता है। अतः लोक संस्कृति का प्रगतिशील काव्य में महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

प्रश्न13- लोक पर बाज़ारीकरण तथा भूमण्डलीकरण के प्रभाव के बारे में आपकी क्या राय है?

उत्तर:- आज का दौर बाज़ारवाद और भूमण्डलीकरण का दौर है। आज सबकुछ बाज़ार पर अवलम्बित हो गया है। बाज़ारवाद आज के समाज की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। इसके माध्यम से मनुष्य और समाज के आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।आज बाज़ार के मायनों में उपभोग की कृत्रिम परिस्थितियां पैदा करता है। इसके माध्यम से पोषित-पालित उपभोक्ता संस्कृति लुभावने विज्ञापनों के माध्यम से पूरे समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है। बाज़ार केवल मुनाफे की संस्कृति का चित्रण कर सभी को अपने मोहक जाल मे उलझा रहा है जिसके कारण आज का आम आदमी अथवा लोक समाज दिशाहीन, हताशा-निराशा तथा अंधी दौड़ में शामिल हो अपनी लोक सांस्कृतिक परम्पराओं तथा प्राक्रितावस्था से दूर होता चला जा रहा है। आज भूमण्डलीकरण का दौर है जिसमे बाहरी दूरियां सिमट रही हैं, तकनीकी विकास लगातार हो रहा है तथा बाहरी दृष्टि से हम सब अपने जीवन में प्रगति की राह पर अग्रसर हैं। बाज़ार ने व्यक्ति को भौतिक सुख-समृद्धि के आधार दिए हैं। निःसन्देह इससे लोक मानस को फायदा तो हुआ है किन्तु हताशा-निराशा के साथ-साथ अकेलापन संत्रास तथा मानसिक रोगों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। लोकमानस मूल्यों से पृथक हो स्वार्थी एवं भौतिकवादी सफलता को प्राप्त करने के लिए लगातार आगे बढ़ रहा है।यह एक चिंताजनक तथा विचारणीय बिंदु है।

प्रश्न 14- आज के दौर में लोकसंस्कृति के सम्वर्धन तथा संरक्षण के लिए किसप्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता है?

उत्तर:- आज का दौर मीडिया एवं तकनीक का है।ऐसे में अपनी पहचान खोते जा रहे इस लोकभूमि के साहित्य और संस्कृति को मीडिया और तकनीकी से समृद्ध कर इसका प्रचार-प्रसार जरुरी है। यद्यपि सूर्य स्वयं प्रकाशित होता है उसे प्रसार की आवश्यकता नही होती ठीक उसीप्रकार लोकसंस्कृति की चमक स्वयं ही सहजता से अनुकरणीय बन जाती है तथापि इस संस्कृति ,संस्कार,परम्परा,प्रथा को जीवित रखना बहुत जरूरी है। इससे सम्बद्ध शोधों के माध्यम से,इससे सम्बद्ध सेमिनार द्वारा तथा इसके लेखन एवं सम्पादन को बढ़ावा मिलना जरूरी है। यदि सरकारी क्षेत्र में भी इससे सम्बद्ध कोई योजना बन सके तो इसके संरक्षण एवं सम्वर्धन को ऊंची उड़ान मिल सकती है।

प्रश्न15- आप हिन्दी साहित्य के आदरणीय विद्वान हैं।लोक संस्कृति विषय पर आपके मार्गदर्शन में अनेक छात्रों ने शोध कार्य किया है।इस क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए आपका क्या सुझाव है?

उत्तर:- लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य,लोकमानस की जीवंत,सहज एवं सादगी से परिपूर्ण अभिव्यक्ति है।लोकसंस्कृति मात्र संस्कार नहीं एक जीवन शैली एवं उदात्त भावना है।ऐसे में इस पर शोध समर्पण, सम्पूर्णता एवं सहजता से ही किया जा सकता है।लोकभूमि का बोध सम्पूर्ण रूप में व्यवहार के समर्पण के साथ जब होता है तब उसकी सहज रूप में अभिव्यक्ति ही लोकसंस्कृति को पूर्णता देती है। अतः सभी शोध छात्रों से यही कहना चाहूँगा कि लोकभूमि से जुड़े,लोकमानस से गुने तथा लोक संस्कृति से मर्यादित हों सहज जीवन शैली की ओर बढ़ें।यही गुण लोक सांस्कृतिक चेतना के मुख्य आधार हैं तथा इन्ही से लोकसंस्कृति का व्याख्या-विश्लेषण सम्भव है।

केंद्रीय हिंदी समिति के नए सदस्य

डॉ. राम प्रकाश यादव

भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा जारी संकल्प के अनुसार भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय हिंदी समिति का पुनर्गठन दिनांक: 23 जून, 2017 को किया गया है। भारत के प्रधानमंत्री इस समिति के अध्यक्ष हैं। गृहमंत्री इस समिति के उपाध्यक्ष होते हैं। यह समिति हिंदी के विकास और प्रसार के विषय में तथा सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रगामी प्रयोग के संबंध में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यों तथा कार्यक्रमों का समन्वय करेगी। यह समिति प्रत्येक तीसरे वर्ष पुनर्गठित होती है। समिति का मुख्यालय नई दिल्ली में है।

इस समिति में महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति प्रो० गिरीश्वर मिश्र सदस्य मनोनीत किए गए हैं। महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व प्रति कुलपति प्रो० ए० अरविंदाक्षन भी इस समिति के सदस्य मनोनीत किए गए हैं। प्रख्यात भाषावैज्ञानिक प्रो० कृष्ण कुमार गोस्वामी भी इस समिति के सदस्य मनोनीत किए गए हैं। प्रो० गोस्वामी महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की कार्यपरिषद (2003-2006) के सदस्य रह चुके हैं और विश्वविद्यालय के अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ एवं भाषा विद्यापीठ की कई समितियों के सक्रिय सदस्य भी रहे हैं।

इसके अतिरिक्त प्रो० निर्मला जैन एवं सुश्री प्रतिभा राय का भी मनोनयन किया गया है। प्रो० जैन महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की पिछली कार्यपरिषद की सदस्य रह चुकी हैं। समिति की एक अन्य सदस्य सुश्री प्रतिभा राय उड़िया की प्रसिद्ध कथाकार हैं और महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में अतिथि लेखिका रह चुकी हैं।

अनुसृजन परिवार, अनुवाद अध्ययन विभाग और महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की ओर से मनोनीत सभी सदस्यों को बधाई और हार्दिक शुभकामनाएं। हमें विश्वास है कि आपकी गरिमामयी उपस्थिति से यह समिति निश्चय ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करेगी। ज्ञान, शांति और मैत्री के साथ हिंदी के उत्कर्ष, उन्नयन और प्रभावी क्रियान्वयन की आप सभी से आशा है।